तालीमकी बुनियादें

[तालीम-सम्बन्धी निबन्ध]

कि० घ० मशरूवाला

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

गांधी और साम्यवाद

[श्री विनोबाकी भूमिकाके साथ]

लेखक : **कि० घ० मशरूवाला**

अिसमें लेखकने गांधीजीके सिद्धान्तों और साम्यवादके सिद्धान्तोंकी विस्तारसे तुलनात्मक चर्चा की है और अन्तमें यह भी बताया है कि दुनियामें और खासकर भारतमें साम्यवादकी बाढ़को रोकनेका सच्चा रास्ता क्या है। विनोबाके शब्दोंमें "किशोरलालभाअीने अिस पुस्तकमें गांधीजीकी सत्याग्रही नैतिक भूमिका और कम्युनिस्टोंकी रचनाग्रही क्रान्तिनिष्ठाकी तुलना की है।"

की० १–४–० डाकखर्च ०–५–०

जीवनशोधन

लेखक : **कि० घ० मशरूवाला**

अनु० **हरिभाअू अुपाध्याय**

लेखक प्रस्तावनामें कहते हैं: "जिन्दगी खा-पीकर अैश-आराम करनेके लिअे है, अिससे अधिक अुदात्त भावनाका स्पर्श ही जिन्हें नहीं हो सकता, अुनके लिअे मुझे कुछ नहीं कहना है। परंतु जिनके मनमें अुदात्त भावनाअें हैं, जिनके मनमें यह अभिलाषा निरंतर बनी रहती है कि मेरी आध्यात्मिक अुन्नति हो, मैं जीवनके तत्त्वको समझ लूं, मेरा चित्त निर्मल हो जाय, मेरा जीवन दूसरोंका सुख बढ़ानेमें किसी कदर अुपयोगी हो, अुनके लिअे यह लेखमाला लिखनेको मैं प्रेरित हुआ हूं।"

की० ३–०–० डाकखर्च १–३–०

तालीमकी बुनियादें

[तालीम-सम्बन्धी निबन्ध]

लेखक

कि० घ० मशरूवाला

अनुवादक

सोमेश्वर पुरोहित

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद
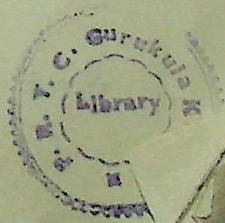
अैसा दिखाअी देता है कि मानव-जाति व्यापार, युद्ध, सुलह-शान्ति, विज्ञान और कलाके कार्योंमें तल्लीन है। परन्तु मानव-जातिके लिअे सच्चा और महत्त्वका कार्य तो अेक ही है, और वही कार्य वह करती है। वह कार्य है जिन नैतिक सिद्धान्तोंके आधार पर वह जीती है, अुनका साक्षात्कार करना। नैतिक सिद्धान्तोंका अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन कालसे चला आया है। मानव-जाति अपने लाभके लिअे अुन्हें केवल विशद (=अुनका स्पष्ट ज्ञान) कर लेती है।

— **टॉल्स्टॉय** ('तब क्या करेंगे?' से)

ॐ

न होय जें देवा असुरां।
तें तुझें करणें दातारा।
समर्थ न देखो दुसरा।
तुजवांचूनि ।।

आणिका कवणा नमस्कारूं।
कवणाचें स्तवन करूं।
जयजयाजी श्री गुरु ।
अगाध महिमा ।।

तुज विण अन्य न देखों कोणी।
म्हणोनि आणिकांते न मानी।
हा मस्तक तुझिये चरणीं।
ठेविला सत्य ।।

(परमामृत)

प्रस्तावना

लगभग १७–१८ वर्ष पहले जब मैं कॉलेजमें पढ़ता था, तब हमारे देशकी प्राथमिक तालीमके प्रश्नने पहले-पहल मुझे आकर्षित किया था। जिस तरह माननीय गोखलेजीके थोड़े मिनटके सहवासने भाईश्री करसनदास चितळियाके जीवनका रास्ता ही बदल डाला, अुसी तरह अुनका प्राथमिक ता़लीम सम्बन्धी मसौदा मेरे जीवनको शिक्षाके क्षेत्रमें ले जायगा, अैसा तो अुस समय नहीं लगता था। परन्तु अुसने मुझे अिस विषयमें विचार करनेकी प्रेरणा अवश्य दी थी।

मुझे याद नहीं आता कि अैसी ही किसी बाह्य प्रेरणासे मैं धर्ममें रस लेने लगा होअूं। धर्मके सम्बन्धमें तो यही कहना चाहिये कि धार्मिक माता-पिता और स्वामीनारायण सम्प्रदायके सन्तों द्वारा डाले हुअे संस्कार मुझमें अपने-आप खिलते और विकसित होते गये।

कॉलेजमें अुस समय संपत्तिशास्त्र और विज्ञानशास्त्र मेरे बड़े प्रिय विषय थे।

अिन सबके फलस्वरूप मेरी यह श्रद्धा हो गअी थी कि हमारे देशके सारे दुःख दूर करनेके अुपाय चार प्रकारके हैं: अनिवार्य प्राथमिक तालीम, धर्म-प्रचार, विज्ञानकी सहायतासे चलाये जा सकने-वाले छोटे-छोटे अुद्योग तथा देशकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन।

परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अिन चारोंके बारेमें मुझे कोअी तात्त्विक विचार अुस समय सूझे थे। अितना स्मरण है कि अुस समय विद्यार्थियोंकी अेक सभामें प्राथमिक तालीमके बारेमें मैंने जो निबन्ध पढ़ा था, अुसमें अभ्यासक्रमकी अेक योजना भी बताअी थी। अुसमें मातृभाषाको स्थान दिया गया था, हिन्दीको स्थान दिया गया था, धार्मिक शिक्षणको स्थान दिया गया था और अुद्योग-धन्धोंको स्थान दिया गया था। परन्तु मेरा खयाल है कि सारी योजना परम्परागत मार्ग पर ही बनाअी गअी होगी। मुझे स्वयं तो शिक्षणका

कोअी अनुभव नहीं था। अिसलिअे सारी चीज दूसरोंके विचारोंका निष्कर्ष होगी अथवा तर्कसे खोजी हुअी होगी।

अुस समय मेरा यह विश्वास था कि धार्मिक शिक्षणका अर्थ है स्वामीनारायण धर्मका प्रचार। परन्तु भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके श्रोता-वर्गके सामने अैसा कहनेकी मेरी हिम्मत नहीं थी। अिसलिअे जिन नैतिक गुणों पर स्वामीनारायण सम्प्रदायने जोर दिया था, अुन गुणोंकी तालीमको मैं धार्मिक शिक्षण कहता था। परन्तु मनमें यह धारणा रहती थी कि ये गुण स्वामीनारायण सम्प्रदायके प्रचारके बिना और किसी तरहसे समाजमें आनेवाले नहीं हैं। अतः सहजानन्द स्वामीके धर्मको मैं नैतिक गुणोंका निष्कर्ष मानता था।

अुसके बाद ८–९ वर्षका समय चला गया। अिस बीच अिन विषयोंमें मेरी कुछ दिलचस्पी तो बनी रही, परन्तु यह पता नहीं था कि अिसी क्षेत्रमें मेरे जीवनका प्रवाह घूमेगा। मैं गांधीजीके सम्पर्कमें आया और अपनी जिस चित्तवृत्तिका मुझे स्पष्ट भान नहीं था, अुसका स्पष्ट भान हुआ।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय और प्राथमिक तालीमके प्रचारकी पुरानी वासनायें फिर जाग्रत हुअीं। अिन दो प्रकारकी वासनाओंके कारण वर्षों तक मैंने यह आशा रखी कि स्वामीनारायण सम्प्रदाय द्वारा ही अेक विद्यापीठकी स्थापना की जाय, जिससे अेक पंथ दो काज सिद्ध हो जायं। लेकिन सम्प्रदायका वातावरण अैसी प्रवृत्तिके अनुकूल नहीं था। और अैसे किसी दूसरे व्यक्तिको मैं जानता न था, जो मेरी अिस काममें सहायता करता। अिसके अलावा, न तो मुझे धर्मके तत्त्वोंका अनुभव था और न तालीमका कोअी अनुभव था। अतः मैंने अिस निश्चयके साथ आश्रममें प्रवेश किया कि वहां रहकर मैं यह अनुभव प्राप्त करूंगा।

आश्रममें कुछ समय तक मैंने शिक्षकका काम किया। अभी तक मुझे तात्त्विक विचारोंकी कोअी दिशा सूझी नहीं थी। परन्तु दो बातोंका निश्चय हो गया था: (१) शिक्षकके रूपमें मैं अयोग्य

हूं; (२) धर्मशास्त्रोंके अध्ययनसे धर्म कोओी अलग ही चीज है, जिसका ज्ञान ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरुके बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

शिक्षकके रूपमें मेरी अयोग्यता आज मुझे जैसी दिखाओी देती है, वैसी अुस समय बिलकुल नहीं दिखाओी दी थी। अुन दिनों मेरा खयाल था कि मुझे शिक्षा देना नहीं आता, क्योंकि मैं बहुश्रुत नहीं हूं, मुझमें ज्ञान देनेकी कला नहीं है या मेरी आवाज तीखी है आदि आदि। लेकिन अुन दिनों मुझे अिस बातका स्पष्ट पता नहीं चला था कि शिक्षकके रूपमें मेरी अयोग्यताका असल कारण यह है कि मैं स्वयं तालीम पाया हुआ नहीं हूं।

भूतकाल पर आजकी दृष्टिसे विचार करने पर मैं देखता हूं कि प्राथमिक और धार्मिक तालीमके बारेमें मेरा अत्यन्त आग्रह होनेका कारण यह था कि मैंने स्वयं यह दो प्रकारकी तालीम नहीं पाओी थी। जब तक अपने भीतरकी अिन कमियोंका मुझे स्पष्ट भान नहीं था, तब तक अुनके प्रचारके बारेमें मेरा आग्रह भी तीव्र नहीं था; जैसे-जैसे ये कमियां मुझे अधिक खलने लगीं, वैसे-वैसे अुनके प्रचारके बारेमें मेरा आग्रह भी तीव्रसे तीव्रतर होता गया। अलबत्ता, यह ज्ञान मुझे बिलकुल नहीं था कि मेरे अन्दरकी कमियां ही मुझे बाहर दिखाओी देती हैं।

पाठकोंको लगेगा कि अेक वर्गसे दूसरे वर्गमें चढ़ते हुअे बी०अे०, अेल-अेल० बी० तक पहुंचा हुआ मैं यह क्या बकता हूं कि मैं प्राथमिक तालीमसे वंचित था। धर्मका ज्ञान मुझे नहीं था, यह बात शायद पाठक स्वीकार कर लेंगे, परन्तु यह बात वे संभवतः नहीं मानेंगे कि मैंने प्राथमिक तालीम नहीं पाओी थी। मैं पढ़ा-लिखा था, अिससे मेरा अिनकार नहीं। फिर भी मेरी प्राथमिक तालीम — सम्पूर्ण तालीमका मूल आधार, जिसके बिना सारा शिक्षण रेतमें बनाये हुअे मकानकी तरह भयंकर हो जाता है — पूरी नहीं हुओी थी। यह बात मुझे समझानी पड़ेगी।

मैं कुछ विद्यार्थियोंको अैसी आदर्श तालीम देनेका अिरादा रखता था, जिससे वे भविष्यमें देशके आदर्श सेवक बनें। मातृभाषाका ठोस

ज्ञान, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, अितिहास, भूगोल, गणित, जमाखर्च या हिसाब-नवीसी, संगीत, प्रार्थना आदि विषयोंकी शिक्षा लेकर विद्यार्थी आदर्श नागरिक बनेंगे, अैसे मेरे मुंहसे निकलनेवाले सिद्धान्त तो नहीं, परन्तु अन्तःकरणके विचार मालूम होते थे। परन्तु मैंने देखा कि ये सब तो अलग अलग विद्यायें हैं। अैसी विद्यायें तो अनंत हो सकती हैं। और यह निश्चय करना कठिन था कि अैसी कितनी विद्याओंके ज्ञानसे विद्यार्थी आदर्श नागरिक बन सकते हैं। अितने विषयोंकी गिनतीके क्या कारण हैं, यह मैंने अुन दिनों अेक लेखमें समझाया था। लेकिन आज मैं देखता हूं कि अुन कारणोंके पीछे यदि कोअी सिद्धान्त रहा हो, तो अुसे मैं अुस समय समझा नहीं था। मैं केवल अितना समझ पाया था कि शिक्षण देनेमें कड़ा परिश्रम करनेके बावजूद मुझे और मेरे विद्यार्थियोंको सन्तोष नहीं होता था। रोगी मनुष्य जिस तरह रोगकी बेचैनीमें करवट बदलकर, अिस ओरका तकिया अुस ओर रखकर, लेटा हो तो बैठकर और बैठा हो तो लेटकर, अथवा मां-बाप या भगवानको पुकार कर चैन पानेकी कोशिश करता है, अुसी तरह हम लोग वर्ग बदल कर, समयपत्र बदल कर, विषय बदलकर, अपने दोषोंके लिअे विद्यार्थियोंको दण्ड देकर और शारीरिक दण्ड देनेमें अनीति मालूम होने पर अुपवासके बहाने अुन्हें मानसिक दण्ड देकर सन्तोष पानेका मार्ग खोजते थे। परन्तु रोगकी जड़की कोअी दवा ध्यानमें नहीं आती थी।

अुस रोगकी जड़ यह थी। मुझमें और मेरे विद्यार्थियोंमें अैसा कोअी तात्त्विक भेद नहीं था, जिससे हम दोनोंमें यह फर्क किया जा सकता कि वे तालीम लेने लायक हैं और मैं तालीम देने लायक हूं। हमारे विद्यार्थी आपसमें लड़ते-झगड़ते थे, अेक-दूसरेसे अीर्ष्या करते थे, कअी बार वाग्युद्ध पर और कभी कभी मार-पीट पर भी अुतर आते थे। अुसी तरह हम शिक्षक अथवा व्यवस्थापक भी आपसमें लड़ते थे, अेक-दूसरेसे अीर्ष्या करते थे और कअी बार वाग्युद्ध पर अुतर आते थे। हमारे बीच मार-पीटकी नौबत नहीं आती थी, अुसका अेकमात्र कारण यह था कि हमारे पास अधिक तेज फलवाला बाण था; वह था मर्मभेदी वाणीका बाण। बालकोंने आपसमें जो मार-पीट की थी,

अुसका आज अुन्हें स्मरण होगा या नहीं यह शंकास्पद है। परन्तु हमारे वाग्बाणोंके घाव तो जीवन भर याद रहनेवाले थे। बालकोंकी दृष्टिसे सोचा जाय तो अुनके झगड़ोंके विषय हमारे झगड़ोंके विषयोंसे अुनके जीवनमें कम महत्त्व नहीं रखते थे। बालक अपने विषयोंकी तुच्छताको समझ नहीं सकते थे। और हमारे विषयोंको तो हम तुच्छ मान ही कैसे सकते थे?

अिसके सिवाय, बालक जिन वस्तुओंसे खुश होते थे, अुन्हीं वस्तुओंसे हम भी खुश होते थे। अुन्हें मिष्टान्न अच्छे लगते थे, तो हमें भी अच्छे ही लगते थे। अुन्हें संगीतमें आनन्द आता था, तो हमें भी अुसमें आनन्द आता था; अिसीलिअे तो हम अुन्हें संगीत सिखानेको ललचाते थे। यदि हम दोनोंके बीच कोअी भेद था तो अितना ही कि अुनमें जो विषयेच्छायें नहीं थीं वे हमारी बड़ी अुम्रके कारण हममें थीं। हमारे विद्यार्थी गर्मीके दिनोंमें भर दोपहरीमें मस्त खेलते थे; परन्तु हमारी चमड़ी बहुत नाजुक थी, वह धूप सहन नहीं कर सकती थी। काम-वासनासे विह्वल होनेका तो हमारा ही हतभाग्य था। अधिकारकी लालसा और मान-अपमानके झगड़े अुनकी अपेक्षा हमारे बीच ही अधिक तीव्र थे।

आश्रमकी सायं-प्रार्थनामें स्थितप्रज्ञके लक्षणोंवाले गीताके श्लोक बोलनेका रिवाज है। मैं देखता था कि:

१. अिन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।
२. ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
३. अिन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि।।
४. अिन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।

आदि श्लोक जितने बालकोंको लागू होते अुतने ही हमें भी लागू होते थे। क्रोध, लोभ, अीर्ष्या आदि विकार जिस प्रकार बालकोंको विवश कर देते थे, अुसी प्रकार हमें भी विवश कर देते थे। भेद विकारोंका नहीं था, केवल विकारोंके प्रत्ययों -- निमित्तों -- का था।

मैंने देखा कि अिस विषयमें अेक ओर बालक और दूसरी ओर युनिर्वासिटीकी दो-दो डिग्रियां रखनेवाले, युरोप या अमेरिकाके डिग्रीधारी, कवित्वकी ख्यातिवाले, संगीतके निष्णात, भिन्न भिन्न प्रकारकी कारीगरीमें कुशल, कलाकी दृष्टि रखनेवाले, तत्त्वज्ञानके अभ्यासी, योगके अभ्यासी, अवधानी, विधिवत् देवपूजा करनेवाले, साधुओंको भोजन करानेवाले, ब्रह्मचारी, संन्यासी, देशके लिअे या सम्प्रदायके लिअे जीवन अर्पण करनेवाले जवान, बूढ़े, स्त्री, पुरुष — सब अेक ही मिट्टीके पुतले हैं। अिन विकारोंकी गुलामीसे न तो स्वतंत्र प्रजायें मुक्त हैं, और न परतंत्र प्रजायें।

अेक बात और। आश्रमकी शालाके प्रयोगोंके दिनोंमें परिवारके कुछ बालकोंको भी हमने साथ रखा था। अुनमें आश्रमवासियोंके बालक भी थे। दूसरे लोगोंने भी कुछ बालक हमें सौंपे थे। मैंने देखा कि वहुतसे पिताओंने परेशान होकर अपने बालकोंको आश्रममें रखा था; अुन्हें अपने बालकोंसे सतोष नहीं था; वे हमारे द्वारा अुनमें सुधार कराना चाहते थे। अिस सम्बन्धमें बहुत बार वे हमारे पास आकर बालकोंके बारेमें चिंता प्रकट करते थे और हमारी 'सलाह' मांगते थे। माता-पिताके साथ हुअी बातचीतसे मुझे पता चलता था कि पिता-पुत्रके बीचके असन्तोषकारक सम्बन्धों और पुत्रोंके दोषोंका कारण घरका वातावरण ही था। भले ही पिताको बालकोंकी अुमंग, अुत्साह, खेलकूद वगैरा किसीके साथ सहानुभूति न हो, किसी दिन भी अुन्होंने बालकोंको प्रेमसे अपने पास बैठाने जितना मनको अुदार न किया हो, स्वयं कैसा भी व्यवहार करते हों और चाहे जैसी आदतें रखते हों, चाहे जैसे हलके शब्दोंसे बालकोंका अपमान करते हों, अव्यवस्थित रहते हों, स्वयं अपनी पत्नीके साथ चाहे जैसा व्यवहार करते हों, लगभग पुत्रकी आयुकी लड़की ब्याह कर लाये हों, अपने रहन-सहनमें कोअी सुधार करनेकी अिच्छा न रखते हों, फिर भी वे यह चाहते थे कि अुनका बालक विनयी, परिश्रमी, संयमी और सबको पसन्द आने लायक बन जाय। 'हमारा जीवन तो अब गया, पर हम चाहते हैं कि ये बालक सुधर जायं' — अुनकी यह मांग मुझे विचित्र मालूम होती थी और मैंने अेक-दो पिताओंसे

कहा भी था कि जब तक आप न सुधरेंगे, तब तक आपका लड़का नहीं सुधर सकता। फिर भी अैसा हो सकनेकी मुझे आशा तो थी।

परंतु माता-पिता या पालकोंके लिअे जिस नियमको मैं ठीक समझता था, वही नियम मुझे भी लागू होता है, अिस चीजको मैं अुस समय समझ नहीं पाया था। जिस प्रकार बाहरके बालक अुनके घरका वातावरण शुद्ध हुअे बिना आश्रमके ४–६ महीनोंके सहवाससे सुधर नहीं सकते, अुसी प्रकार मेरी देखरेखमें रहनेवाले बालक मेरे घरका वातावरण शुद्ध हुअे बिना वैसे नहीं बन सकते जैसे बननेकी मैं अुनसे अपेक्षा रखता हूं — यह बात मेरी समझमें नहीं आ पाती थी। अिसलिअे मेरे और मेरे घरके बालकोंके बीच भी असन्तोष ही रहता था। मेरी पत्नीके साथ हर दूसरे-तीसरे दिन मेरा झगड़ा होता रहता था, अपने किसी निश्चय पर मैं कमसे कम अेक माहके लिअे भी दृढ़तासे अमल नहीं कर पाता था, मुझे भी अपनी वस्तुअें अुनके स्थान पर करीनेसे रखनेकी आदत नहीं थी, मेरी मेज भी सदा अव्यवस्थित दशामें रहती थी (आज भी अैसी ही रहती है), भूख न होने पर भी दिनमें २–४ बार खानेकी मेरी अिच्छा हुआ करती थी और कोअी रोकनेवाला न होनेके कारण मैं बेखटके अैसा कर सकता था — फिर भी मैं चाहता था कि मेरे भतीजे झगड़ा न करनेवाले, दृढ़निश्चयी, व्यवस्थित और मिताहारी बनें। और जब मैं अुन्हें अैसे बनते न देखता तो परेशान होकर अपना यह भार मैं अन्य किसी शिक्षकको सौंप देता था। 'पराअी मां ही कड़ी बनकर बालकको सीधे रास्ते लगा सकती है' पालकोंके अिस सिद्धान्तको मैं भी मानता था।

अिसी प्रकार हम यह भी चाहते थे कि हमारे विद्यार्थी केवल विद्या-व्यासंगी ही नहीं, अुद्योग-व्यासंगी भी बनें; वे मजदूरकी तरह श्रम करनेवाले बनें। अिसके लिअे हम शालामें बार बार श्रमके लिअे अधिक समय रखनेके प्रयोग करते थे; हममें से अेक-दो शिक्षक बारी बारीसे अिस श्रममें शरीक भी होते थे। परन्तु विद्यार्थियोंको श्रमकी अधिकसे अधिक महिमा समझाने पर भी अुनमें हमने पंडित-जीवनकी प्रीति ही निर्माण होते देखी; और श्रम प्रेमसे नहीं

बल्कि बेगारकी भावनासे ही किया जाता देखा। अिसके कारण अितना लिखनेके पश्चात् अब आसानीसे समझमें आ जायेंगे, परन्तु मैं अुस समय अुन्हें समझ नहीं पाया था।

मैं यह नहीं समझ सका कि हमारा जीवन विद्या-व्यासंगी था, अुद्यम-व्यासंगी नहीं; बालकोंके साथ परिश्रम करनेका समय रखते अुस समय भी हमारा मन तो किसी पुस्तकमें अथवा साहित्य-चर्चामें ही रमा रहता था। अिसके सिवाय, अेक-दो शिक्षक ही बालकोंके साथ परिश्रमके काममें अूपर कहे अनुसार बेमनसे भाग लेते थे, जब कि दूसरे शिक्षक तो प्रत्यक्ष रूपमें साहित्यकी ही अुपासना करते थे। साहित्यका खण्डन करनेके हमारे तरीकेमें भी साहित्यकी अुपासना ही होती थी, और श्रमका मण्डन हाथ-पैरसे नहीं परन्तु अधिकतर लेखों और प्रवचनोंसे ही किया जाता था। फिर भी हमारा यह विश्वास था कि जो चीज हममें नहीं है, वह विद्यार्थी हमसे प्राप्त कर सकेंगे।

परन्तु यह सब मैं आजकी दृष्टिसे कह रहा हूं। अुस समय तो अितना ही भान था कि मेरे चित्तको अिससे शांति नहीं मिलती। अिसलिअे मैं विद्यापीठके नये प्रयोगमें अुत्साह और अुमंगसे शरीक हुआ। 'सा विद्या या विमुक्तये' अिस गंभीर वाक्यको काकासाहबने विद्यापीठका ध्यानचिह्न बनानेकी सूचना की और विद्यापीठने अिस सूचनाको स्वीकार किया। गांधीजीको यह वाक्य बहुत पसंद आया। बादमें अुन्होंने 'अेक वर्षमें स्वराज्य' लेनेकी घोषणा की। अिन दो चीजोंने फिर मुझे अशान्त कर दिया। विद्यापीठकी संस्था नअी थी। परन्तु केवल नअी संस्थामें शरीक होनेसे ही हृदय थोड़ा नया हो जाता है? अिस नअी संस्थामें मैं पुराना, विविध रागद्वेषोंवाले आग्रहोंसे पूर्ण हृदय लेकर ही गया था। और जैसे गाड़ीके नीचे चलनेवाला कुत्ता भ्रमसे मानने लगता है कि वही गाड़ीको खींच रहा है, वैसे ही मैं अपनेको अपूर्व त्यागी, देशभक्तिसे ओतप्रोत और विद्यापीठका स्तंभ समझता था और अपने साथ सहमत न होनेवाले साथियोंको स्वार्थी मानता तथा सबके साथ झगड़ता रहता था। जैसे-जैसे मेरी कमियां मेरी अयोग्यताको तीव्र रूपमें सामने लाने लगीं, वैसे-वैसे प्राथमिक तालीम

और धार्मिक तालीमका मेरा आग्रह बढ़ता गया। परन्तु जब मेरा आग्रह न चला तब अपनी अयोग्यता पर क्रोध करनेके बजाय मैं विद्यापीठके अपने काममें शिथिल हो गया। परन्तु मेरा आग्रह न चला, अिसीलिअे मैं बच गया। अुपरोक्त अशान्ति मुझे परेशान कर ही रही थी। मेरे मनमें अितना तो स्पष्ट हो गया कि मुक्तिकी तालीम देनेकी योग्यता पदवीधारियोंमें, साहित्य-संगीत-कलाके अुपासकोंमें अथवा शास्त्रियोंमें भी नहीं है। यह योग्यता राष्ट्रभाषामें भी नहीं है, मातृभाषामें भी नहीं है और अंग्रेजीमें भी नहीं है। अिसलिअे अिन सबके अुच्च शिक्षणमें पहलेसे ही शिथिल रहनेवाली मेरी श्रद्धा अब बिलकुल अुठ गअी। यह भी अेकांगी दृष्टि ही थी।

अिस बीच धार्मिक पुस्तकोंका मेरा पठन बढ़ता जा रहा था। जैसा कि बहुत बार होता है, जिस वस्तुको मैं कमसे कम समझता था अथवा जिस वस्तुको मैंने अपने जीवनमें कमसे कम सिद्ध किया था, अुसके विषयमें मैं अधिक भारपूर्वक और विश्वासके ढोंगके साथ बोलता या लिखता था। किसी अचूक मार्गदर्शकको मैं जानता नहीं था। स्वामीनारायण संप्रदायके अच्छे अच्छे साधुओंके संपर्कमें मैं आया करता था, और गांधीजीकी ओरसे यम-नियमोंके पालन तथा विचारोंके बारेमें प्रोत्साहन और प्रेरणा मिलती रहती थी।

अिस समय धर्म-विचार और शिक्षण-विचारके बीच अेक बड़ा विरोध मेरे ध्यानमें आया।

धर्मशास्त्र कहते हैं: भोगसे विषयोंकी शांति नहीं होती; अिन्द्रियोंको लाड़ न लड़ाओ; मनको वशमें रखो; मन कहे वैसा मत करो; यम-नियमोंका पालन करो; विषयोंमें रस कम करो; राग-द्वेषसे परे रहो। धर्मशास्त्र यह भी कहते हैं: संगीत-नृत्य-वाद्य आदि विद्यार्थियों, संयम साधनेका प्रयत्न करनेवाले पुरुषों और ब्रह्मचारियोंके लिअे वर्ज्य हैं; अेक अिन्द्रियको भी स्वतंत्रता देनेसे सब अिन्द्रियोंका काबू चला जाता है, आदि आदि। शिक्षणशास्त्र कहता है —और यह शास्त्र तो आश्रमके संयमी वातावरणको भी मान्य था —कि बालककी सारी अिन्द्रियोंका विकास करो, संगीतके बिना

शिक्षण अधूरा है, कला राष्ट्रका प्राण है, साहित्य प्रजाका जीवन है, बालकको अपनी सोची हुअी चीज मत दो, बल्कि अुसे जिस चीजमें रस हो वही दो। विषयोंको सरस बनाओ। अिसके लिअे बालकोंसे नाटकका अभिनय कराओ, अुन्हें रास खेलाओ, शालाको सजाना सिखाओ; अिसके अलावा, बालकसे 'राष्ट्रदेवो भव' कहो, अिस तरह अुसे अितिहासका ज्ञान दो, अुसीके देशकी संस्कृति (अर्थात् प्रकृति) का पोषण करनेवाला ज्ञान दो, आदि आदि।

अिस विरोधको मैं समझता तो था, परन्तु स्पष्ट रूपमें नहीं; अतः अिस विरोधको टालनेकी कुंजी तो मुझे मिल ही कैसे सकती थी?

परन्तु बड़ोंके आशीर्वादसे और मित्रोंके प्रेमसे मेरी यह परेशानी बहुत समय तक नहीं रही। थोड़े ही समयमें मुझे अपने सद्‌गुरुका परिचय हो गया; और गुरुके रूपमें अुनके साथ हुअे मेरे पहले ही संभाषणमें अुन्होंने मुझे विचारकी अेक अैसी दृष्टि प्रदान की, जिससे जीवन और जगत्के विषयमें सोचनेकी मेरी पद्धतिमें क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया। अिसके सिवाय, अुन्होंने मुझे अेक अैसी कसौटी बताअी, जिस पर कसनेसे जगत्की प्रत्येक विभूतिका सच्चा कस निकल सके।*

भाग्यवशात् मुझे फिर विद्यापीठमें जुड़ना पड़ा। अभी मैंने केवल सद्‌गुरुसे कसौटी ही प्राप्त की थी; परन्तु मैं अुसका अुपयोग नहीं जानता था, और आज भी पूरी तरह नहीं जानता। अिसका कारण यह है कि तुलना करनेके लिअे सुवर्णका जो शुद्ध नमूना मेरे पास सदैव रहना चाहिये, अुसका मैं अभी तक स्वामी नहीं बन पाया था। अिसलिअे अभी तक मेरी प्राथमिक शिक्षणके प्रचारकी अिच्छा शान्त नहीं हुअी थी।

परन्तु अब अेक दूसरे अनुभव पर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ। असहयोग आन्दोलनके आरंभमें गांधीजीके तपोबलके कारण किसी प्रवृत्तिमें

---

* अिस दृष्टि तथा कसौटीके बारेमें दूसरी आवृत्तिकी प्रस्तावनामें किया गया स्पष्टीकरण देखिये।

पैसेका तो विचार ही नहीं आता था। परन्तु मैं फिरसे विद्यापीठमें जुड़ा, तब मैंने प्रत्येक संस्थाके व्यवस्थापकोंको पैसोंकी चिन्ता करते देखा। धनी लोगोंको ताना मारनेवालोंका काम धनके बिना चलता नहीं था। विश्वभारतीसे लेकर छोटेसे-छोटे कुमार-मंदिरके आचार्य तक सब तिरस्कारके पात्र बने हुअे साधुओंकी तरह 'सेठजी, पैसा धर दो' करते थे। ब्रह्मदेशसे आरंभ करके अफ्रीका तकके विशाल भूखण्डमें प्रत्येक संस्थाके चन्दा अुगाहनेवाले लोग घूम रहे थे। मंदिरके महाराज और साधु किसी भी प्रकारके स्थूल कल्याणकी आशा नहीं दिलाते थे; अुनकी हुंडियां तो स्वर्गमें ही सिकरनेवाली थीं, जब कि हम प्रत्यक्ष जन-कल्याणकी बात कहते थे: आपके बालकोंको ज्ञान मिलेगा, आपको स्वराज्य मिलेगा, देशकी 'अबुद्धि' दूर होगी, अित्यादि अित्यादि। परन्तु लोग हमारे वचनोंकी तरफ ध्यान ही नहीं देते थे। मंदिरोंके दान पर और साधुओंको भोजन करानेमें अुनकी श्रद्धा अधिक बैठती है, अिसका कारण क्या है? क्या वे अितने जड़ हैं कि अपने (हमारी दृष्टिसे) प्रत्यक्ष दिखाअी देनेवाले स्वार्थको भी नहीं समझ सकते, या हमारा ही कोअी दोष है? अिस अुधेड़-बुनमें मैं पड़ा, और तालीमके माने जानेवाले प्रत्येक अंगका अुपरोक्त कसौटीके आधार पर विचार करने लगा।

मेरे गुरुदेवकी प्रदान की हुअी दृष्टिसे अेक नअी वस्तु भी मेरे ध्यानमें आअी। विविध प्रवृत्तियोंमें लगे हुअे हम सब लोगोंको अपनी आजकी स्थितिसे संतोष नहीं है; हमें अिस बातका भान है कि हममें कोअी न्यूनता है। परन्तु वह न्यूनता है क्या, अिसका ज्ञान नहीं है। हम अपने आसपास देखते हैं। दूसरे लोग विवाहित हैं, मैं अविवाहित हूं; मुझे लगता है कि मैं अविवाहित हूं यही मेरी न्यूनता है। दूसरे लोग विद्वान हैं, मैं अपढ़ हूं; मुझे लगता है कि मुझमें विद्वत्ता ही होनी चाहिये। दूसरे लोग अमीर हैं, मैं गरीब हूं; मैं मानता हूं कि मुझमें पैसेकी ही न्यूनता है। दूसरे लोग सन्तानवाले हैं, मैं निस्सन्तान हूं; मुझे लगता है कि निस्सन्तान होनेसे ही मैं दुःखी हूं। अिस प्रकार दूसरोंके साथ अपनी तुलना करके हम अपनी न्यूनता

खोजनेका प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग अिसका अुपाय यह बताते हैं कि हमारी जैसी स्थिति हो अुसीमें हमें संतोष मानना चाहिये। परन्तु यह संतोष कैसे अुत्पन्न हो सकता है? मुझमें न्यूनता है, यह मेरा भान निष्कारण नहीं है; और यह न्यूनता किस कारणसे है, अिसका मुझे ज्ञान नहीं है। ज्ञान न होनेसे जिस प्रकार रोगकी ठीक औषधि न मिलने तक प्रयोग करना ही अेकमात्र अुपाय रह जाता है, अुसी प्रकार दूसरोंके साथ तुलना करके जो दूसरोंके पास हो और मेरे पास न हो अुसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करना ही अेकमात्र स्वाभाविक मार्ग रह जाता है। परन्तु यह परिणाम भी अुतना ही स्वाभाविक है कि जब तक रोगकी निश्चित औषधि नहीं मिलती, तब तक असंतोष ही बना रहेगा।

गहरी जांचसे पता चलता है कि जो न्यूनता मुझे अपनेमें दिखाअी देती है वह जिन लोगोंमें नहीं हैं अुन्हें भी जीवनमें कम असंतोष नहीं होता। अुन्हें अपनेमें कोअी अन्य प्रकारकी न्यूनता दिखाअी देती है। अिसके अलावा, अपने जीवनकी जांच करनेसे भी मालूम होता है कि पहले जिस पदार्थकी प्राप्तिके लिअे मैं दौड़धूप करता था, अुसके मिल जानेके बाद भी मेरा असंतोष कम नहीं होता। तब यह असंतोष किसलिअे रहता है? विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि बाह्य पदार्थोंकी कमीके कारण अथवा शरीर, अिन्द्रियों या बुद्धिके कम विकासके कारण ही सदा असंतोष नहीं रहता। जीर्ण रोग, भुखमरीकी हद तक पहुंची हुअी गरीबी या अिन्द्रियोंके दोषके लिअे किसीको असंतोष रहे तो वह समझमें आ सकता है। परन्तु अिन सब कारणोंके होते हुअे भी संतोषपूर्वक रहनेवाले और अपने जीवनका सदुपयोग करनेवाले मनुष्य दुनियामें पाये जाते हैं। अिसलिअे हम देख सकते हैं कि अैसे नैसर्गिक कारणोंसे अुत्पन्न हुअी अपूर्णता भी असंतोषका कारण नहीं होती।

अिस प्रकार शोध करनेसे मालूम होता है कि मनुष्यको न्यूनताका भान गुणोत्कर्षकी कमीके कारण होता है। मुझमें संयमकी कमी है, परिश्रमशीलताकी कमी है, व्यवस्थितताकी कमी है, अनुशासनकी कमी

है, अुदारताकी कमी है, दयाकी कमी है, प्रेमकी कमी है, निडरताकी कमी है, तेजस्विताकी कमी है, समभाव और सहानुभूतिकी कमी है, और अिन सब गुणोंके अुत्कर्षके परिणामस्वरूप ही प्राप्त की जा सकनेवाली ज्ञाननिष्ठाकी भी कमी है। कमीका भान होना गलत नहीं है। परन्तु जब तक कमीका कारण समझमें नहीं आता, तब तक मैं अधीर होकर कितने ही प्रयत्न क्यों न करूं, मुझे शांति और सन्तोषकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अपनी कमियोंका कारण जाननेके लिअे अैसे जीतोड़ प्रयत्न मुझे थोड़े दिन तक करने पड़ें या युगों तक करने पड़ें, अिसके लिअे मुझे किसी छोटीसी प्रवृत्तिमें शामिल होना पड़े या सारी दुनिया छान डालनी पड़े, वह कारण मैं अेक अिशारेमें समझ जाअूं या अुसके लिअे मुझे जगत्‌की सारी पुस्तकें पढ़नी पड़ें, — जब मैं अुसे भलीभांति समझूंगा तभी मुझे शांति और संतोष प्राप्त हो सकेगा।

अिस कसौटी पर तालीमके कुछ अंगोंको कसनेसे मुझे जो कुछ मालूम हुआ वही मैंने अिन निबन्धोंमें प्रस्तुत किया है। कुछ परीक्षण अधूरा भी मालूम पड़ेगा। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि निबन्धोंमें प्रकट किये गये विचारोंमें घटाने-बढ़ाने जैसा कुछ नहीं है।

अिसलिअे अिन निबन्धोंके पीछे अेक ही मुख्य विचार मालूम होगा। वह विचार है दैवी सम्पत्तियोंके अुत्कर्षका, चित्तके गुण-विकासका, विवेक-बुद्धिकी शुद्धिका। अिससे कुछ लोगोंको निराशा होगी। जिस पुस्तकके अितने निबन्धोंसे केवल अेक पंक्तिका सार निकले, वह तो निश्चित रूपसे युरोपियन पद्धतिकी पुस्तक मानी जायगी। परन्तु बात अैसी ही है।

मुझे यह भय है कि अिन निबन्धोंको — अिनकी भाषाके कारण, अिनमें चर्चित विषयोंके कारण और अिनके भीतर कहीं कहीं 'बालकी खाल' निकालनेका प्रयत्न होनेके कारण जनसाधारण समझ नहीं सकेंगे। विचारके कुछ विषय अधिक तात्त्विक होनेके कारण कठिन हैं; अुन्हें आसान बनाकर कैसे लिखा जाय, यह अभी तक मैं सीख नहीं पाया हूं। बात यह है कि ये विषय अभी तो मेरे अपने ही अुपयोगके

लिअे लिखे हुअे हैं; ये विचार अभी मेरे जीवनमें ओतप्रोत नहीं हो पाये हैं। हृदयसे निकलनेवाली सरल, सुबोध और प्रसादगुणवाली शैली अैसे ही विचारोंके लिअे संभव हो सकती है, जो जीवनके अविच्छेद्य अंग बन गये हों। अैसे विचारोंको सब कोअी समझ सकते हैं; अैसे मनुष्यके जीवनको देखनेवाले बालक भी अुन विचारोंको समझ सकते हैं। परन्तु मेरे ये विचार केवल विचार हैं; जीवन नहीं हैं।

फिर भी मित्रगण मानते हैं कि जो थोड़ेसे लोग अिन निबन्धोंको पढ़ेंगे अुनके लिअे वे अुपयोगी सिद्ध होंगे। अिसीलिअे मैंने अिन्हें पुस्तकके रूपमें प्रकाशित होने दिया है। 'वह तालीम कौनसी?' नामक निबन्ध सबसे पहले लिखा गया था। परन्तु मुझे लगता है कि अेक दृष्टिसे अुसमें सारे निबन्धोंका निष्कर्ष आ जाता है।

गूजरात विद्यापीठ कार्यालय, **कि० घ० मशरूवाला**
आषाढ़ वदी ६, १९८१

दूसरी आवृत्तिकी प्रस्तावना

पहली आवृत्तिकी प्रस्तावनामें कही गअी अेक बातके लिअे बार बार मुझसे प्रश्न पूछे गये हैं। अुसमें अिस आशयके शब्द आये हैं कि मेरे गुरुने मुझे विचारकी अेक 'दृष्टि' प्रदान की और अेक 'कसौटी' बताअी। मैंने यह नहीं सोचा था कि मेरे अिस प्रकार लिखनेसे पाठकोंको अैसा भ्रम होगा कि मैं कोअी गुप्त ज्ञान प्राप्त होनेकी बात कह रहा हूं। मैंने माना था कि प्रस्तावना और पुस्तकके प्रकरण पढ़कर पाठक मेरे अुपरोक्त कथनको स्पष्ट रूपमें समझ ही लेंगे। परन्तु मैं देखता हूं कि मेरी बात पाठकोंने अिस तरह समझी नहीं है, अिसलिअे यहां मैं अुसे अधिक स्पष्ट करता हूं। मेरे अुस कथनमें 'विचारकी दृष्टि' का अर्थ है तर्क, कल्पना और अनुभवके बीचके भेदकी दृष्टि; और 'कसौटी' से मतलब है भावनाके विकासकी कसौटी। सत्यकी शोधके लिअे और अुसमें दृढ़ स्थिति होनेके लिअे ये दोनों अनिवार्य हैं। आशा है अितना स्पष्टीकरण काफी होगा।

जैसा कि मुखपृष्ठ पर बताया गया है, अिस पुस्तकमें तालीमसे संबंध रखनेवाले अलग अलग निबंध ही हैं। यह संग्रह तालीमसे संबंधित सारे विषयोंका सांगोपांग विचार करनेवाला शास्त्र अथवा पाठ्य-पुस्तक नहीं है। अिसका मुझे पूरा खयाल है। दूसरे भागके प्रकरणोंको विशिष्ट प्रकरण मानना हो तो माना जा सकता है। अेक मित्रने यह सूचना की थी कि भिन्न भिन्न विषयों पर अिस प्रकारके लेख पुस्तकमें शामिल करके 'बुनियादों' पर खड़ी की जानेवाली 'अिमारत' का नकशा भी मुझे पेश करना चाहिये। पुस्तक लिखी अुस समय जिस प्रकारके शिक्षण-कार्यमें मैं लगा हुआ था, अुसीमें लगा रहता तो शायद अैसा कुछ कर सकता था। परन्तु आज तो अैसा करना संभव नहीं मालूम होता।

अेक प्रश्न मुझसे यह पूछा गया है: ये किसकी तालीमकी 'बुनियादें' हैं? मेरी अपनी या विद्यार्थियोंकी? प्रस्तावना और सत्रहवां

प्रकरण 'वह तालीम कौनसी?' पढ़नेसे यह पुस्तक केवल शिक्षककी अपनी ही तालीमसे संबंध रखनेवाली मालूम होती है। और अिन्हें पढ़ कर अैसा लगता है कि दूसरोंको तालीम देनेकी आकांक्षाका मैं विरोध करता हूं। परन्तु बाकी सारे प्रकरण शिक्षक और विद्यार्थीके संबंधोंको ध्यानमें रखकर लिखे गये मालूम होते हैं। अिसलिअे प्रस्तावना और सत्रहवें प्रकरण तथा अन्य प्रकरणोंके बीच विरोधकी शंका अुठती है।

अैसी शंका अुठना दुर्भाग्यकी बात है। मेरा अपना मत तो अिस प्रकार है: यह सच है कि 'बुनियादों' में से अपनी तालीमके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली बहुत-कुछ सामग्री मिल सकती है। यदि अपनी तालीमके लिअे अुपयोगी कोअी सामग्री अिसमें न हो, तो यह तालीमकी पुस्तक भी नहीं हो सकती। क्योंकि सही हो या गलत, मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि मनुष्य जो भी कार्य करता है, अुसमें अुसका अपना आध्यात्मिक लाभ भी रहता ही है। और जो मनुष्य अिस लाभके प्रति दृष्टि रखकर अपना कार्य करता है, वह अुस कार्यको भी अधिक सुशोभित करता है। अिस प्रकार जो शिक्षक यह समझता है कि बालककी तालीमके प्रयत्नमें अुसकी अपनी तालीमका साधन समाया हुआ है, वह बालकको तालीम देनेमें भी अधिक सफल होता है। अिस तरह अिस पुस्तकमें शिक्षककी अपनी तालीमके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली सूचनायें मिलें, तो वह अिसका दोष नहीं माना जाना चाहिये।

फिर भी 'तालीमकी बुनियादें' अपनी तालीमका प्रयास करनेवालेके लिअे नहीं लिखी गयी है। हर जगह तालीम लेनेवाला बालक और अुसे तालीम देनेका प्रयत्न करनेवाला अेक शिक्षक — दोनों स्पष्ट रूपसे मेरी नजरके सामने रहे हैं। अिस पुस्तकमें यह समझानेका प्रयत्न है कि अपनेको सौंपे हुअे बालकको तालीम देनेके लिअे तालीम-सम्बन्धी विचारोंमें शिक्षकके मनमें ध्येयकी कैसी स्पष्टता होनी चाहिये। अतः 'बुनियादें' अपनी तालीमकी पुस्तक नहीं है, अुसकी सहायक भले हो।

अिसके सिवाय, अपनी तालीमकी दृष्टिसे सोचें अथवा बालककी तालीमकी दृष्टिसे सोचें, यह बात अेक भी निबन्धमें मैं भूला नहीं हूं कि तालीम लेनेवालेको सामाजिक जीवन बिताना है। तालीम लेनेवाला समाजका अुपयोगी अंग कैसे बने, अिस बातका कहीं भी विस्मरण नहीं हुआ है। अिसके विपरीत, यह दिखानेका प्रयत्न किया गया है कि मनुष्यकी अपनी अुन्नति और समाजोपयोगी जीवनके बीच विरोध बतानेवाली धार्मिक मान्यतामें कुछ भूल है। जहां सामाजिक जीवन अपनी अुन्नतिमें बाधक बनता मालूम होता हो, वहां समाजके कल्याणके आदर्शमें या स्व-कल्याणके आदर्शमें अथवा हमारी तालीममें कहीं भूल होनी चाहिये।

अेक दूसरा प्रश्न यह पूछा गया है कि सारी पुस्तकमें धार्मिक तालीमके बारेमें अेक भी प्रकरण क्यों नहीं है? धर्मकी विशाल दृष्टिसे देखा जाय तो मेरे खयालसे पुस्तकमें अेक भी प्रकरण अैसा नहीं है, जिसमें अिस बातको जरा भी भुलाया गया हो कि तालीम धर्ममय ही हो सकती है। परन्तु अुपासना, भक्ति आदि धर्मके अंगोंकी दृष्टिसे देखने पर अैसे प्रकरणकी कमी मालूम होनेकी संभावना अवश्य थी। मैं आशा करता हूं कि 'सामुदायिक अुपासनाके बारेमें व्यावहारिक चर्चा' नामक अेक नया प्रकरण जुड़नेसे यह न्यूनता कम हो जायगी।

'अंक सिखानेके बारेमें सूचना' नामक लेख पुस्तकके अन्य निबन्धोंसे अलग पड़ जाता है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे अुपयोगी होनेके कारण अिसी संग्रहमें अुसका समावेश किया गया है। वह अेक अलग टिप्पणी जैसा भी माना जा सकता है।

कि० घ० मशरूवाला

अनुक्रमणिका

दूसरा भाग

तालीमकी बुनियादें

पहला भाग

१

तालीम और शिक्षा

जन्मसे लेकर मृत्यु-पर्यंत अलग-अलग दिशाओंमें मनुष्यका विकास करनेकी जो रीति होती है, अुसके लिअे भाषामें भिन्न-भिन्न शब्दोंका अुपयोग किया जाता है। अुन सबमें हमारे सादे गुजराती शब्द 'केळवणी' (तालीम)में जितना अर्थ समाया हुआ है, अुतना आम तौर पर प्रचलित किसी भी दूसरे अेक शब्दमें नहीं है। यदि अिसके लिअे किसी संस्कृत शब्दका प्रयोग करना ही हो, तो वह 'संस्क्रिया' अथवा 'संस्करण' हो सकता है। संस्क्रियाका अर्थ है, शरीर, मन, वाणी, आदत, भावना, बुद्धि वगैरामें पाअी जानेवाली किसी भी प्रकारकी अव्यवस्थाको व्यवस्थित बनानेकी क्रिया। मेरे खयालसे हिन्दुस्तानीका 'तालीम' शब्द 'केळवणी' शब्दके बहुत करीब है और अुसी शब्दका यहां प्रयोग किया जायगा। 'संस्करण', 'संस्क्रिया' अथवा 'संस्कृति' की बुनियादें अधिक अटपटा प्रयोग हो जायगा।

'केळवणी' या 'तालीम' शब्दका अिस तरह पूरा अर्थ अच्छी तरह ध्यानमें रखनेकी जरूरत है। और अिसलिअे, यह जान लेना ठीक होगा कि दूसरे शब्दोंकी अपेक्षा अिस शब्दमें क्या अधिक अर्थ समाया हुआ है। अिस परसे यह समझमें आ जायगा कि हम शालामें और घरमें अपने बच्चोंके लिअे जो मेहनत करते हैं, अुसमें अुन्हें कितनी तालीम मिलती है और कितनी नहीं मिलती या नष्ट हो जाती है, तथा जो मिलती है वह कितने महत्त्वकी है और जो नहीं मिलती अुसका कितना महत्त्व

है। अिसके अलावा, तालीमका ध्येय और तत्त्व समझने पर यह भी संभव है कि हमें तालीम देनेकी कोअी नयी दिशा मिल जाय।

'तालीम'के अर्थमें हम 'शिक्षा' शब्दका बार-बार अुपयोग करते हैं। 'शिक्षा' का अर्थ है सिखाना। और साधारण तौर पर अुसका अर्थ 'नअी बात सिखाना' ही समझा जाता है। बच्चेको लिपिका ज्ञान स्वभावतः नहीं होता। सौ या हजार वर्ष पहलेकी घटनाओंकी जानकारी अुसे नहीं होती। दूसरे किसी देशमें गये बिना वहांकी आबहवा, रचना वगैराकी कुछ जानकारी नहीं होती। अपने समाजमें बोली जानेवाली भाषाके सिवाय दूसरी कोअी भाषा वह समझ नहीं सकता। शालामें यह सब ज्ञान, यह सब जानकारी अुसे मिलती है। न जानी हुअी बातोंकी जानकारी करानेका अर्थ है 'शिक्षा' देना। लेकिन 'तालीम' सिर्फ अैसी 'शिक्षा' देकर ही नहीं रुक जाती। क्योंकि शिक्षा ज्यादातर परोक्ष होती है। किसी देशके बारेमें हम जो जानकारी प्राप्त करते हैं, वह सही है या गलत, अिसका निश्चय अुस देशको देखकर किया हुआ नहीं होता। जिस भाषाका अर्थ करना हम जानते हैं, अुस भाषाको बोलनेवाले लोगोंके संपर्कमें हम नहीं आये होते। किसी देशके अितिहासकी जो बातें हम पढ़ते हैं, अुन बातोंके मूल आधार हमारे जांचे हुअे नहीं होते। अिस तरह शिक्षा द्वारा हमें जो कुछ ज्ञान मिलता है, वह परोक्ष होता है, — प्रत्यक्ष नहीं। अिस परोक्ष ज्ञानकी परीक्षा करके जब हम अुसे सच्चा बनाते हैं, तब वह प्रत्यक्ष होता है। जब तक ज्ञान परोक्ष है, केवल सीखा हुआ है, तब तक अुसके बारेमें केवल श्रद्धा ही रखनी होती है। यह श्रद्धा गलत भी हो सकती है। जिस जानकारीके बारेमें केवल श्रद्धा होती है, वह वास्तवमें 'ज्ञान' अर्थात् 'जानी हुअी' या 'अनुभव की हुअी' वस्तु नहीं है। वह केवल मान्यता ही है। ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे प्राप्त जानकारीको प्रत्यक्ष करनेकी जिज्ञासा और आदत

होनी चाहिये। प्रत्यक्ष करनेकी जिज्ञासा और आदत संस्कारका विषय है। यह संस्कार देना तालीमका अेक अंग है।

शिक्षक, माता-पिता या मित्र विद्यार्थीको अनेक बातोंका परोक्ष ज्ञान या शिक्षा तो दे सकते हैं, परन्तु अनेक बातोंका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं दे सकते। वह तो अधिकतर विद्यार्थीको ही कभी न कभी स्वयं प्राप्त करना होता है। लेकिन अगर तालीम देनेवाला किसी भी ज्ञानको — जानकारीको — प्रत्यक्ष करनेकी जिज्ञासा विद्यार्थीमें अुत्पन्न कर सके और अुसके बारेमें प्रयत्न करनेकी आदत डाल सके, तो कहा जायगा कि अुसने विद्यार्थीके हाथमें ज्ञान प्राप्त करनेकी अेक कुंजी दे दी। तालीमका अर्थ केवल जानकारी देकर रुक जाना नहीं है, बल्कि ज्ञानकी अलग-अलग कुंजियां देना भी है। अिस दृष्टिसे 'शिक्षा' की अपेक्षा 'तालीम' शब्दमें अधिक अर्थ समाया हुआ है।

मनुष्य अनेक वस्तुओंका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। कितनी ही बातोंमें अुसे मान्यता और जानकारीसे ही संतोष मानना पड़ता है। अगर अितनी परोक्ष जानकारी भी न हो, तो अुसे जीवनमें नुकसान अुठाना पड़ता है। अिसलिअे यह न मान लेना चाहिये कि शिक्षा निरर्थक है। मनुष्य जिस परिस्थितिमें जीवन बिताता हो, अुसका विचार करके यदि वह अुचित मात्रामें भी प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेकी आदत न डाले, तो अुसकी सारी जानकारी निकम्मी पंडिताअी बन जाती है; अुस जानकारीसे स्वयं अुसे या समाजको कोअी लाभ नहीं होता। वह केवल अुतनी जानकारीका बोझ ढोनेवाला मजदूर ही बना रहता है। जिस हद तक वह जानकारी गलत होगी, अुस हद तक वह गलत ज्ञान फैलानेका निमित्त भी बनेगी। अिसलिअे शिक्षा द्वारा दी जानेवाली तालीममें तीन प्रकारके कार्यका समावेश होता है :—

१. प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करनेकी जिज्ञासा पैदा करना और अुसकी आदत डालना; और अुसके लिअे,

२. बन सके अुतने विषयोंका प्रत्यक्ष ज्ञान देना; और अुसकी भूमिकाके रूपमें,

३. जितने विषयोंकी शिक्षा (जानकारी, परोक्ष ज्ञान) देनेकी सुविधा हो, अुतनोंकी शिक्षा देना।

थोड़ी शिक्षा पाये हुअे और गरीब माता-पिता या शिक्षक भी निश्चय कर लें, तो कमसे कम सामग्री द्वारा भी अिस प्रकारकी तालीम देनेमें समर्थ हो सकते हैं। अिसमें जिस सामग्रीकी जरूरत है, वह अितनी ही है : बालक और तालीम देनेवालेके पास अिन्द्रियां हों, जिज्ञासा हो और परिश्रम करनेकी आदत और वृत्ति हो। जिज्ञासाकी जागृतिका संस्कार ज्ञानका बीज है। अुसमें से परिश्रमी विद्यार्थीके हृदयमें ज्ञानका वृक्ष अपने-आप अुग आता है।

२

'तालीम' और 'विनय'

अंग्रेजीके 'अेज्युकेशन' शब्द और हमारी माध्यमिक शालाओंके नाममें प्रयुक्त 'विनय' शब्दके अर्थमें थोड़ा ही भेद है। 'अेज्युकेशन' शब्दका अर्थ 'बाहर (यानी अज्ञानके बाहर) ले जाना' होता है। 'विनय' का अर्थ होता है 'आगे (यानी थोड़े ज्ञानसे ज्यादा ज्ञानकी तरफ) ले जाना'। सामान्य भाषामें विनयका अर्थ हम अच्छा आचरण, सभ्यता या शिष्टाचार ही समझते हैं। और अैसी आशा रखते हैं कि विद्यासे विनय आयेगा। अिसका कारण यह है कि जिसे सभ्यताका — शिष्टाचारका ज्ञान नहीं है, वह अभी अनघड़ है, क्योंकि वह कम समझ-वाला है। अुसे विनय देनेसे, यानी अुसका ज्ञान बढ़ानेसे, वह सुघड़ अर्थात् सभ्य और शिष्टाचारयुक्त बनता है। विनय देनेके फलस्वरूप अुसमें सुघड़ता आती है। अिस परसे सामान्य भाषामें विनयका अर्थ ही सुघड़ता या शिष्टता हो गया है।

पिछले लेखमें हमने शिक्षाके अर्थकी जो छानबीन की, अुस परसे यह नहीं मालूम होता कि अुसमें विनयका अर्थ समाया हुआ ही है। अुसका अर्थ केवल न जानी हुआी चीजकी जानकारी पाना ही होता है। अुसी लेखमें हमने यह भी देखा कि 'तालीम' शब्दमें शिक्षाके अलावा और क्या अर्थ समाया हुआ है। लेकिन 'तालीम' अुतनेसे ही पूरी नहीं होती। 'तालीम' में 'विनय' का अर्थ भी आ जाता है। जो शिष्ट व्यवहार करना नहीं जानता, वह शिक्षित भले हो लेकिन हम अुसे तालीम पाया हुआ नहीं कहते। दूसरी तरफ, कोअी शिक्षित न होने पर भी अगर सभ्यता और शिष्टाचार जानता

है, तो अेक हद तक वह तालीम पाया हुआ माना जाता है। अिसलिअे 'शिक्षा' के बजाय 'विनय' का अधिक महत्त्व है और 'तालीम' में अिन दोनोंकी आशा रखी जाती है।

लेकिन शिष्टाचार जाननेके बारेमें भी 'विनय' के बनिस्बत 'तालीम' में ज्यादा अर्थ समाया हुआ है। कुछ लोग कैसे भी समाजमें असभ्य भाषा बोलते नहीं हिचकिचाते। अुन्हें सभ्य या असभ्य भाषाके बारेमें कोअी भान ही नहीं होता, अथवा अिस विषयमें वे निर्लज्ज होते हैं। अैसे लोगोंको हम अनघड़ या अविनयी कहते हैं। कुछको असभ्य भाषा बोलनेकी आदत होती है और अपने बराबरीके लोगोंमें अैसी भाषा बोलनेमें अुन्हें आनन्द भी आता है। लेकिन स्त्रियोंके बीच या पूज्य लोगोंके बीच वे सभ्य भाषा बोलते हैं। बाह्य दृष्टिसे वे विनयी कहे जा सकते हैं। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अुनकी वाणी 'तालीम पाअी हुअी' है। कुछ लोग अैसे होते हैं, जो घरमें या समाजमें असभ्य भाषा बोलते तो नहीं, किन्तु असभ्य शब्द अुनके मनमें जरूर आ जाते हैं। और जब वे अत्यन्त संतप्त या दुःखी होते हैं, तब वाणीमें अुनका अुपयोग करते भी देखे जाते हैं। अिनकी वाणीको साधारण तौर पर अविनयी या तालीम न पाअी हुअी नहीं कहा जा सकता; फिर भी अितना तो कहना पड़ेगा कि असभ्य वाणी न निकालनेके संबंधमें अुनके मनने पूरी तालीम नहीं ली है। और अिस हद तक वह तालीम न पाअी हुअी ही कही जायगी।

अिस परसे मालूम होगा कि तालीम सिर्फ विनय या बाहरी शिष्टाचार और वाणीमें ही पूरी नहीं हो जाती, बल्कि वह शिष्ट-व्यवहार और वाणीके बारेमें बुद्धिपूर्वक विचार करके भले-बुरेका निश्चय करने और अुसके मुताबिक मन, वाणी और कर्मको व्यवस्थित करनेकी अपेक्षा रखती है।

अिस तरह तालीम अेक दिशामें विवेक-बुद्धि तक पहुंच जाती है और दूसरी दिशामें स्थूल कर्मका रूप ले लेती है। केवल अनुकरणसे विनय तो आ सकता है, किन्तु विवेक-बुद्धि नहीं आ सकती। और जब तक विवेक-बुद्धि व्यवस्थित नहीं होती, तब तक तालीम पूरी नहीं हो सकती।

३

तालीम और विद्या

विद्‌का अर्थ है जानना। विद्याका अर्थ है ज्ञातव्य (जाननेका) विषय। अिसका सामान्य अर्थ चतुराअी होता है। लेकिन विद्या अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी। चोरी करनेकी, दूसरेके प्राण लेनेकी, ठगनेकी, जुआ खेलनेकी चतुराअीका और भिन्न-भिन्न कलाओंका भी समावेश विद्यामें होता है। विद्या शब्द अितना व्यापक अर्थ रखता है, अिसीलिअे सुविद्या, कुविद्या, परा विद्या, अपरा विद्या जैसे भेद करने पड़ते हैं।

सारी विद्यायें तालीम नहीं हैं। जो लोग नृत्यकला, गानकला या चित्रकला जानते हैं, वे सब तालीम पाये हुअे भी होंगे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अधिकसे अधिक अितना ही कहा जा सकता है कि अुनकी कुछ अिन्द्रियोंका, और कुछ दिशाओंमें बुद्धिका काफी विकास हुआ है। कुछ विद्यायें तालीमकी विरोधी भी हो सकती हैं।

विद्यासे तालीमका दर्जा अूंचा है, क्योंकि विद्या नीतिहीन भी हो सकती है। किन्तु तालीमको नीतिके विचारसे अलग नहीं किया जा सकता। जहां अिस तरह विद्याको नीति (नैतिकता) से अलग रखकर विचार करनेका प्रयत्न किया जाता है, वहां विद्या (=चतुराअी

या प्रवीणता) भले कुछ समयके लिअे टिक सके, किन्तु तालीम नहीं टिक सकती। अिसके अुदाहरण लें: काव्य, अलंकार, गीत, चित्र और शिल्पकलाके अैसे अनेक नमूने मिलेंगे, जिन्हें विकारों पर विजय पानेकी अिच्छा रखनेवाला पुरुष निर्भयतासे पढ़, गा, या देख नहीं सकता; जो बालकोंके हाथमें निर्भयतासे नहीं रखे जा सकते; अथवा माता और पुत्रीके साथ बैठकर निःसंकोच पढ़े, गाये या देखे नहीं जा सकते। तालीमकी दृष्टिसे अैसे नमूनोंके लिअे तालीम-मंदिरोंमें कोअी स्थान नहीं हो सकता। परंतु अिस दृष्टिको भुला दिया जाता है और अेक शुद्ध (?) विद्याकी दृष्टिसे अिन्हें सीखा और सिखाया जाता है।

तालीम अिन्द्रियों या अन्तःकरणकी शक्तियोंके विकासके विरुद्ध नहीं है, लेकिन सिर्फ अुन्हींके विकाससे तालीम पूरी नहीं हो जाती। अुसके साथ सदाचार -- नीतिके विचारका विकास हो तो ही, और अुसी हद तक, अिन विद्याओंको तालीममें स्थान प्राप्त हो सकता है।

विद्या और तालीमके बीचका भेद दूसरे प्रकारसे भी समझाया जा सकता है। अैसा कहा जा सकता है कि विद्या अेक आंखवाली है और तालीम दो या अनेक आंखोंवाली है। विद्यारसिक व्यक्ति जिस चीजके पीछे पड़ता है, केवल अुसीको देखता है -- और किसी तरफ अुसकी नजर नहीं जाती। अगर वह चित्रोंके पीछे पड़ जाय, तो अुसकी दृष्टि यहीं तक सीमित रहती है कि चित्रविद्यामें प्रवीणता प्राप्त की जाय। फिर वह अिस संबंधमें सत्य, सदाचार, जनहित, अुपयोगिता वगैराका कोअी विचार नहीं करता। दूसरी तरफ, तालीम पाया हुआ व्यक्ति चित्रविद्याकी प्रवीणताको तो स्वीकार करता है, लेकिन सत्य, सदाचार, जनहित और अुपयोगिताके प्रति लापरवाह नहीं रह सकता। अुसी तरह, जीवनकी दूसरी अुपयोगी बातोंका खयाल करते हुअे वह अिस बात पर ध्यान देना भी नहीं भूलता कि अपने समयमें चित्रविद्यामें किस हद तक प्राप्त की हुअी प्रवीणताका महत्त्व

है और किस हदके बादकी प्रवीणता केवल शोभा या आश्चर्यकी चीज या निरर्थक है।

अिसलिअे तालीम किसी विषयमें योग्य प्रवीणता प्राप्त कराकर नहीं रुकती, बल्कि अिसका निश्चय भी करती है कि अुस विषयका अन्य विषयोंकी तुलनामें और जीवनके सब अंगोंकी तुलनामें कितना महत्त्व है। हर चीजका ठीक ठीक मूल्य आंकनेके लिअे तालीमकी जरूरत है। केवल विद्या यह निश्चय नहीं करा सकती।

शालामें सिखाअी जानेवाली अनेक बातोंके संबंधमें विद्यार्थियों, पालकों और शिक्षकोंके बीच तीव्र मतभेद होता है। विद्यार्थी कुछ अैसी बातें सीखना चाहते हैं, जो पालक और शिक्षक अुन्हें सिखाना नहीं चाहते। शिक्षक कुछ अैसी बातें सिखाना चाहते हैं, जो पालकोंको पसन्द नहीं आतीं। और पालक अपने बच्चोंको कुछ अैसी बातोंकी शिक्षा दिलाना चाहते हैं, जिनका विद्यार्थी और शिक्षक विरोध करते हैं। अिसका अेकमात्र कारण यह है कि अिन तीनोंमें से कोअी भी अलग अलग विषयोंका तालीमकी सर्वांगीण दृष्टिसे विचार नहीं करते। अभी तक हमें यह खोजनेकी कुंजी नहीं मिली है कि किसी भी विषयका अुचित महत्त्व कितना है। मिली हो तो भी कअी तरहके मोहोंके कारण हम अपने भीतर अितनी शक्ति पैदा नहीं होने देते, जिससे अुस पर अमल किया जा सके।

आजके जमानेमें आत्मोन्नति और जनहितकी दृष्टिसे शिक्षाके हरअेक विषयकी —— शरीर, अिन्द्रियों अथवा बुद्धिके विकासकी —— कितनी कीमत है, अिसका ठीक ठीक हिसाब लगानेमें ही तालीमकी समस्याका हल छिपा हुआ है।

४

तालीम और विज्ञान

गीतामें अेक श्लोक है : 'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।' अिसका शब्दार्थ यह है — 'मैं तुझे संपूर्ण रूपसे विज्ञान-सहित ज्ञान कहता हूं।' यहां ज्ञान और विज्ञानका क्या अर्थ किया जाय, अिस विषयमें भाष्यकारोंमें मतभेद है। कुछ यह अर्थ करते हैं कि 'ज्ञान' यानी किसी वस्तुको केवल वर्णन या चित्र द्वारा समझकर अुसकी कल्पना करना। अुदाहरणके लिअे, ताजमहलका चित्र देखकर या वर्णन सुनकर अुसके बारेमें कल्पना करना ताजमहलका ज्ञान प्राप्त करना कहा जायगा। अुसी तरह शास्त्रोंमें आत्माके विषयमें जिन सिद्धान्तोंकी चर्चा की गअी है, अुन परसे आत्माके बारेमें कल्पना करना अुसका ज्ञान कहा जायगा। और विज्ञानका अर्थ है जिस वस्तुकी हमें कल्पना है, अुसका प्रत्यक्ष अनुभव। कोअी आगरा जाकर सारा ताजमहल देख आवे, तो कहा जायगा कि अुसे ताजमहलके बारेमें विज्ञान हुआ। अुसी प्रकार शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका अनुभव करनेवालेको आत्माके विषयमें विज्ञान हुआ कहा जायगा। अिस तरह विज्ञानका अर्थ निजी अनुभवसे मिला हुआ ज्ञान किया जाता है।*

दूसरे कुछ भाष्यकार अूपर जिस अर्थमें विज्ञान शब्दका प्रयोग किया गया है, अुसी अर्थमें ज्ञान शब्दका प्रयोग करते हैं। अैसा कहा जा सकता है कि जिसका हमें अनुभव है, अुसीका यथार्थ ज्ञान है। जिसका अनुभव नहीं है, अुसके विषयमें हमें केवल कल्पना ही रहती है। कल्पना चाहे जितनी सावधानीसे की गअी हो, फिर भी कल्पना

---

* देखिये शांकरभाष्य — अध्याय ७, श्लोक १ :
सविज्ञानं विज्ञानसहितं स्वानुभवयुक्तम्।

आखिर कल्पना ही है; अुसे ज्ञान नहीं कहा जा सकता। कितनी भी सावधानीसे हम यह कल्पना क्यों न दौड़ायें कि मंगल ग्रह पर मनुष्य जैसे प्राणी रहते होंगे, लेकिन हम यह तो हरगिज नहीं कह सकते कि अिस विषयका हमें ज्ञान है। अिसके बजाय यही कहना ठीक होगा कि अैसी हमारी कल्पना है। अिस अर्थमें 'ज्ञान' को लेनेसे 'विज्ञान' का अर्थ विशेष ज्ञान किया जाता है। हम सबको निजी अनुभवसे पानीका ज्ञान होता है, हम सब पानीको पहचानते हैं। लेकिन जब पानीमें रहे तत्त्वोंका पृथक्करण करते हैं, तो अुसके विषयमें हमें विशेष ज्ञान होता है। पानीके धर्मोंके बारेमें हम जितना जितना अनुभव अिकट्ठा करेंगे, अुतना सब पानीके बारेमें हुआ विज्ञान ही कहा जायगा। अिस बातका हम सबको ज्ञान है कि हाथका पत्थर जब हम छोड़ देते हैं, तो वह जमीन पर गिर जाता है। लेकिन जब हम यह जानते हैं कि वह पत्थर क्यों गिरता है, कितने वेगसे गिरता है, किस दिशामें गिरता है, तो यह सब अुसका विज्ञान कहा जायगा।

'सायन्स' के अर्थमें जब हम विज्ञान शब्दका प्रयोग करते हैं, तब अुसका अर्थ अिस दूसरे अर्थसे मिलता-जुलता होता है। वहां ज्ञान यानी स्थूल — छिछला — प्रथम दृष्टिका ज्ञान; और विज्ञान यानी सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान।

प्रत्येक ज्ञेय (जानने योग्य पदार्थ) संबंधी विज्ञान — विशेष ज्ञान — दो दिशाओंमें होता है। अिन दो दिशाओंका वर्णन दो प्रकारसे किया जा सकता है। यद्यपि दोनों दिशायें अेक ही चीजको दिखानेवाली हैं, फ़िर भी दोनोंमें से अेक भी पूरी स्पष्ट नहीं है — केवल खयाल देनेवाली है। अेक दिशाको पदार्थके मूलका ज्ञान, अथवा अुस पदार्थ और संपूर्ण जगत्‌के बीचका संबंध या समानधर्म खोजनेवाला विज्ञान कहा जा सकता है; और दूसरी दिशाको पदार्थके विस्तारका या अुस पदार्थ और संपूर्ण जगत्‌के बीचके भेदोंको खोजनेवाला विज्ञान कहा जा सकता है।

अेक अुदाहरण द्वारा मैं अिसे अधिक स्पष्ट करनेकी कोशिश करता हूं :

हम अेक बड़के पेड़को ही लें। अिस बड़के विषयमें हम दो तरहसे विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह बड़ पैदा ही क्यों हुआ? अिस बड़की अुत्पत्तिकी सच्ची कुंजी कहां है? — वगैरा बातें खोजते-खोजते हम अुसके फलों परसे पत्तों पर, पत्तों परसे डालों पर, डालोंसे तने पर, तनेसे मूल पर और मूलसे बीज पर पहुंच जाते हैं। यह बड़के आदिकारणकी दिशाका विज्ञान कहा जायगा। और, संभव हो तो अिससे भी गहरी खोज बड़के बारेमें हम कर सकते हैं: आगे बढ़कर हम अिस बातकी शोध कर सकते हैं कि अिस बड़की दूसरे बड़ोंके साथ, दूसरे पेड़ोंके साथ, दूसरी वनस्पतियोंके साथ तथा दूसरी सजीव और निर्जीव सृष्टिके साथ क्या समानता है। अिस प्रकार यह बड़ और जगत्के बीचकी समानधर्मताको खोजनेवाला, बड़के मूलकी दिशाका विज्ञान कहा जायगा।

दूसरी शोधमें हम बड़की डालोंसे फूटकर लटकनेवाली जड़ों, तने, डालों, पत्तों, फूलों, फलों वगैराकी जांच करते हैं। अिनमें से हरअेककी रासायनिक रचना, भौतिक रचना और रासायनिक-भौतिक-वैद्यक धर्मोंके भेदोंकी, अुसके प्रत्येक पत्तेमें, प्रत्येक फलमें और प्रत्येक डालमें रहे हुअे भेदोंकी और अिस बड़ तथा दूसरे बड़ों, वृक्षों, वनस्पतियों और सजीव-निर्जीव सृष्टिके बीचके अनेक भेदोंकी खोज करते हैं। अिस तरह यह विज्ञान बड़के विस्तारकी दिशाका अथवा अुसके और बाकीकी सृष्टिके बीच रहे भेदोंको खोजनेवाला विज्ञान कहा जायगा।

ज्ञेय पदार्थके मूल और सर्वसाधारण धर्म तक हम पहुंच जायं, तो अुसके विज्ञानका अेक छोर आ जाता है। मूलकी दिशाका ज्ञान छोरवाला है।*

---

* दूसरे प्रकारसे 'ज्ञान' और 'विज्ञान' शब्दोंके जो अर्थ किये गये हैं, अुनका तात्पर्य यह होता है कि यह मूलका — आदिकारणका

किसी भी ज्ञेय पदार्थका आदिकारण हाथ लग जानेके बाद विज्ञान अुस दिशामें आगे नहीं जा सकता। लेकिन विस्तारकी दिशाके विज्ञानका कोअी ओर-छोर ही नहीं होता। अिस विज्ञानकी जितनी

—ज्ञान ही 'ज्ञान' है, बाकी सब 'विज्ञान' है। क्योंकि अुसकी अपेक्षा यह विस्तारका ज्ञान है। अूपर बताये हुअे दूसरे वर्गके भाष्यकारोंने अिसी प्रकार अर्थ करके यह समझाया है कि 'ज्ञान' यानी आत्मा, ब्रह्म या पुरुषका ज्ञान और 'विज्ञान' यानी प्रकृतिके कार्यका ज्ञान। देखिये ज्ञानेश्वरी :

जाणीव जेथ न रिगे। विचार मागुता पाअुलीं निघे।।
तर्क आयणी नेघे। आंगीं जयाचा।।
अर्जुना तया नांव ज्ञान। येर प्रपंच हें विज्ञान।।
(अ० ७, श्लोक १, ओवी ५–६)

[जाननेका भाव जहां पहुंच नहीं सकता, विचार अुलटे पांव लौट आता है, तर्क जिसके अंग पर (पहुंचनेका) मार्ग नहीं पा सकता, हे अर्जुन, अुसका नाम ज्ञान है, बाकी सारा विस्तार विज्ञान है।]

अिस तरह, ज्ञानका अर्थ अूपरी या स्थूल दृष्टिका ज्ञान और विज्ञानका अर्थ सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान नहीं है। क्योंकि अध्यात्मशास्त्रकी दृष्टिसे स्थूल दृष्टिका ज्ञान भी विज्ञान ही है, और आदिकारणका ज्ञान सायन्सकी सूक्ष्म दृष्टिसे भी अधिक सूक्ष्म दृष्टिका ज्ञान है। सायन्सके समानार्थी विज्ञान शब्दमें शंकराचार्य और ज्ञानेश्वर दोनोंके अिष्ट अर्थ आ जाते हैं; किन्तु ज्ञान शब्दका अर्थ तीनोंकी दृष्टिसे अलग-अलग होता है। फिर भी अिस बातको तो ज्ञानेश्वरी और सायन्स दोनों मानते हैं कि ज्ञान शब्दका अुच्चारण करते ही अुसके भीतर अनुभवका भाव आ जाता है। अर्थात् अिन दोनोंके बीचका भेद तात्त्विक नहीं है। सायन्स तत्त्वज्ञान तक गहरा जाय, तो अैसा लगता है कि सायन्सको ज्ञानेश्वरीका अर्थ स्वीकार करना होगा। अिस लेखमें तो ये शब्द सायन्सकी भाषामें ही प्रयुक्त किये गये हैं।

भी बारीकियोंमें अुतरना हो अुतरा जा सकता है, फिर भी अज्ञात भाग अपार ही रहेगा। समानता और कार्यकारण-परम्परा खोजनेकी तरफ दृष्टि रखकर जब हम ज्ञेयकी खोज करते हैं, तब हम अुसके मूलकी तरफ जाते हैं। जब हम भेदकी और बाहरी धर्मोंकी तरफ दृष्टि रखते हैं, तब विस्तारका विज्ञान बढ़ता है।

तालीम विज्ञानकी विरोधी नहीं है। लेकिन विज्ञानसे तालीम पूरी भी नहीं होती। पहले लेखमें तालीम और शिक्षाका भेद बताते हुअे मैंने कहा था कि शिक्षा अधिकतर परोक्ष ज्ञान है; जब कि तालीममें परोक्ष ज्ञानको प्रत्यक्ष बनानेकी वृत्ति समायी होती है। विज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है, अिसलिअे शिक्षाकी अपेक्षा अुसमें अधिक तालीम होती है। लेकिन विज्ञानसे भी (पदार्थोंके अनुभवयुक्त विशेष ज्ञानसे भी) तालीम पूर्ण नहीं होती। अिसका कारण 'विद्या' और 'तालीम'के बीच बताये हुअे भेद जैसा ही है। अर्थात् विज्ञान हमेशा आत्मोन्नति और जनहितका खयाल नहीं करता; जब कि तालीम अिस खयालको कभी छोड़ ही नहीं सकती।

अूपर बताया गया है कि विज्ञान ज्ञेय पदार्थके आदिकारणसे संबंध रखनेवाला और अुसके विस्तारसे संबंध रखनेवाला हो सकता है। मनुष्यकी अुन्नतिके लिअे और जीवन-व्यवहार चलानेके लिअे दोनों प्रकारका विज्ञान आवश्यक है। कोयला और हीरा मूलमें अेक ही चीज हैं यह विज्ञान, और दोनोंमें बहुत ही भिन्न भिन्न धर्म भी हैं यह विज्ञान — दोनों अुपयोगी हैं। कोयले और हीरेकी सच्ची अेकताका ज्ञान हो, तो कोयलेमें से हीरा अुत्पन्न करनेका प्रयत्न किया जा सकता है। और अुनका भेद जाना हो तो दोनोंका यथोचित अुपयोग किया जा सकता है। मनुष्यकी तालीमके दूसरे अंग यदि विकसित हुअे हों, तो अेकताका ज्ञान अुसके चित्तकी शांति और समताको कायम रखनेमें अुपयोगी सिद्ध हो सकता है और भेदका ज्ञान अुसे जगत्‌की अुचित रीतिसे सेवा करने लायक बना सकता है।

व्यावहारिक प्रश्न यह है कि मूल-संबंधी विज्ञान और विस्तार-संबंधी विज्ञानमें से किस विज्ञानको कितना महत्त्व देना चाहिये।

अिस बारेमें विचार करनेसे अेक बात हमारे ध्यानमें आयेगी। किसी भी चीजके मूलका विचार करनेके लिअे भी अुसके विस्तारका कुछ विचार करना ही पड़ता है। नदीका मूल खोजनेवालेको कुछ हद तक नदीके विस्तारका ज्ञान मिल जाता है, या करना पड़ता है। नदीके मूलकी ओर जानेवाला मनुष्य यदि आंखें बन्द करके न चले, तो आसपासके प्रदेश, भूमिकी रचना, नदीकी गहराअी, वनस्पति, हवा, अुपजाअूपन, रेत-मिट्टी आदिकी विशेषता तथा जलचरों, भूचरों, नदीसे आकर मिलनेवाली दूसरी नदियों, अिन सबके पानीका शरीर वगैरा पर होनेवाला प्रभाव आदि संबंधी कुछ विज्ञान प्राप्त किये बिना वह रह ही नहीं सकता। जहां दूसरी नदी मिलती मालूम हो, वहां सहायक किसे मानना और मूल नदी किसे मानना, यह निर्णय करनेके लिअे भी थोड़ा विशेष ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। अिस प्रकार विस्तारकी दिशामें नदी-संबंधी जो भी ज्ञान प्राप्त होगा, वह सहज ही मिलने-वाला विज्ञान है। यह विज्ञान अुपयोगी भी होगा, और फिर भी नदीका मूल खोजनेमें रुकावट नहीं डालेगा। परंतु मूलको खोजने निकला हुआ मनुष्य यदि रास्तेमें दिखाअी देनेवाले अैसे अनेक पदार्थोंके बारेमें स्वतंत्र रूपसे खोज करने बैठ जाय, या पानीके बहावकी दिशामें चलने लगे, तो मूलकी खोज अेक ओर रह जायगी और अुसका ध्येय सिद्ध नहीं होगा।

किसी वस्तुका मूल खोजनेका ध्येय निश्चित रखते हुअे जिस प्रयत्नसे अुसके विस्तारका विशेष ज्ञान प्राप्त हो, वही वैज्ञानिक प्रयत्न अुचित माना जायगा। लेकिन ध्येय चूक जानेकी भूल बार-बार होती रहती है। मनुष्य नादका मूल खोजते-खोजते स्वरोंके सौन्दर्यमें लुभा जाता है; चित्तका शोधन करते-करते सिद्धियोंमें मोहित हो जाता है; नदीका मूल खोजते-खोजते रंगबिरंगे कंकर-पत्थर या मछलियां अिकट्ठी

करने लग जाता है, या आसपासके प्रदेशमें कोअी रिक्तता देखता है, तो वहां अपनी सत्ता जमानेमें लग जाता है, या अैसे ही किसी दूसरे कारणसे बीचमें ही रुक जाता है।

यह विश्व अत्यन्त आश्चर्यकारक है। कोअी छोटा या बड़ा पदार्थ अथवा अुसका गुण, क्रिया या दूसरा कोअी धर्म अैसा नहीं होता, जिसके मूलकी खोज करके अुसके आदिकारण तक न पहुंचा जा सके। साथ ही अैसे कोअी छोटे-बड़े पदार्थ, गुण, क्रिया या धर्म नहीं हैं, जिनमें बीचमें ही मनुष्यको रोक रखनेवाली अनन्त प्रकारकी विविधता न हो। जिस तरह किसी मूल पुरुषके हजार पुत्र हों और अुनमें से हरअेकके हजार-हजार पुत्र हों और अिस तरह अेक हजार पीढ़ी तक प्रत्येक वंशजकी हजार-हजार पुत्रोंकी परंपरा चले, अुसी तरहका यह संसाररूपी वृक्ष है। फिर भी यह वृक्ष अैसा अनोखा है कि अुसकी हजारवीं पीढ़ीकी ठीक ठीक खोज करें, तो अुसमें भी मूल पुरुषका पूर्ण बीज अच्छी तरह अुतरा हुआ मालूम होगा। अिस-लिअे यदि केवल मूल चीजकी ही शोध करनी हो, तो यह बात महत्त्वकी नहीं मानी जायगी कि किस पीढ़ीके कौनसे वंशजको शोधका विषय बनाया जाय। चाहे जहांसे शोध आरंभ करके हम मूल बीजको पहचान सकते हैं। लेकिन मूल बीजको खोजकर यदि अुसकी सहा-यतासे अुस सारे कुटुम्बके साथ कोअी मीठा संबंध बनाये रखना हो, तो हमारी खोज विशेष ढंगसे ही होनी चाहिये।

और विज्ञान तथा तालीमके बीच यही भेद है। किसी भी पदार्थको खोजका विषय बनानेवाला मनुष्य विज्ञानशास्त्री तो अवश्य है; अिससे वह मूल कारण तक भी शायद पहुंच जाय; अुसकी खोजका दुनियाके लिअे कोअी लाभ भी हो सकता है। परंतु संभव है विज्ञानकी जो शाखा विज्ञानशास्त्रीको शांति देनेवाली और समाजको सुखी बनानेवाली हो सकती है, अुस शाखाका काम यह विज्ञानशास्त्र

न भी करे। अिस प्रकार तालीम विज्ञानकी विरोधी नहीं, परंतु विज्ञानसे कुछ अधिक है।

विज्ञानकी जिस शाखाके विना तालीम अधूरी कही जायगी, वह चित्तकी भावनाओंके विकासकी और अुस दृष्टिसे चित्तके मूलकी शोधकी शाखा है। भावनाओंकी शुद्धि, विकास और चित्तकी शोध—यह विज्ञान तालीमका मुख्य अंग है। अिसके सिवा दूसरा विज्ञान प्रकृतिके नियमोंके ज्ञानका और अनुभवोंका भंडार बढ़ा सकता है, लेकिन अुसके विषयमें निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि वह हमें शांति प्रदान करेगा या अुससे हमारा जीवन सुखी बनेगा। अिसके विपरीत शापरूप बननेकी भी अुसके भीतर शक्ति होती है।

यद्यपि विज्ञानसे तालीम पूर्ण नहीं होती, फिर भी मैं यह भार-पूर्वक कहना चाहता हूं कि विज्ञानके संस्कारोंके बिना तालीमका काम चल नहीं सकता। विज्ञानके संस्कारोंका अर्थ है अवलोकन करने और तुलना करनेका अभ्यास। अवलोकन और प्रज्ञाके अभ्याससे ही विज्ञानका अुदय होता है।

५

तालीम और विवेकबुद्धि

विवेकबुद्धिको मैं अिष्ट देवताकी तरह पूज्य मानता हूं। कर्म, भक्ति, ध्यान, ज्ञान, अभ्यास, तप आदि विविध साधनों द्वारा व्यावहारिक जीवनमें मुझे यदि कोअी प्राप्त करने जैसी वस्तु मालूम होती हो, तो वह है विवेकबुद्धिका विकास। किसी देवी-देवताके दर्शनकी या ऋद्धि-सिद्धियोंकी मुझे लालसा नहीं है। परंतु यदि भक्ति, ध्यान आदि साधनोंसे देव संतुष्ट हों, तो मैं यही चाहूंगा कि वे मेरी विवेक-बुद्धिको शुद्ध और विकसित करें।

अिस विवेकका अर्थ क्या है?

यह तो शायद ही कहनेकी जरूरत हो कि यहां विवेकसे मेरा मतलब सभ्यता या शिष्टाचारसे नहीं है, जो कि अुसका प्रचलित और परंपरागत अर्थ है। विवेकका शब्दार्थ होगा विशेष या सूक्ष्म विचार। हम जो कुछ करते हैं, सीखते हैं या मानते हैं, वह क्यों करते, सीखते या मानते हैं, अिसका विचार हम हमेशा नहीं करते। हो सकता है कि अत्यन्त तुच्छ या अत्यन्त गंभीर क्रियाओं, मान्यताओं और सीखी जानेवाली बातोंमें से कअीके बारेमें हमें कभी कोअी विचार ही न सूझा हो। हममें बोलने या बरताव करनेकी कितनी ही अैसी आदतें होती हैं, जो दूसरोंके ध्यानमें तो आ जाती हैं, परंतु हमें अुनके अस्तित्वका पता ही नहीं चलता। मेरे मित्र कहते हैं कि मुझे बोलते समय 'है सो' जैसे निरर्थक शब्द बोलनेकी आदत है। यह आदत मुझमें है, अिसका अभी तक मैं निश्चय नहीं कर पाया हूं। क्योंकि मैं सावधानी रखकर बोलता हूं तब मेरी जबान पर ये शब्द नहीं आते; और जब असावधानीसे बोलता हूं तब ये शब्द मेरे ध्यानमें नहीं आते। जिस हद तक अैसा होता है, अुस हद तक यही कहा जाना चाहिये कि हमारी क्रियाअें, मान्यताअें और शिक्षा विवेकरहित हैं। अिसका मतलब यह हुआ कि हमारे अुतने कार्य, मान्यताअें आदि असावधानीके द्योतक और यह बतानेवाले हैं कि अुनके बारेमें हमने पहलेसे कोअी विचार नहीं किया है।

बिना विचारे हुअे कार्य, मान्यताअें या शिक्षा बुरे या गलत ही हैं, अैसा नहीं कहा जा सकता। परंतु सुकर्म, सुशिक्षा और सुश्रद्धा भी यदि विचारपूर्वक न हों, तो अुनमें दो दोष रहते हैं। अेक, विचारपूर्वक किये गये कर्म, शिक्षा आदिमें जिन गुणोंको प्रकट कराने और दृढ़ बनानेकी शक्ति होती है वह विचारहीन कर्म, शिक्षा आदिमें नहीं होती। दूसरा, चाहे जितनी पुरानी आदत हो, फिर भी संगतिका दोष अुसे आघात पहुंचा सकता है। अुदाहरणके लिअे, मेरा कीड़ियों और मकोड़ोंको भी न मारना अवश्य अेक सुकर्म है। लेकिन

यह सुकर्म करनेकी आदत अगर मुझे केवल परंपरागत संस्कारोंसे, गुरुजनोंके डरसे, नरकमें मिलनेवाले दंडके भयसे या स्वर्गमें मिलनेवाले सुखके लालचसे पड़ी हो और अिस बारेमें मैंने स्वयं किसी स्वतंत्र दृष्टिकोणसे विचार न किया हो, तो अिस कर्मसे जिस गुणकी वृद्धि होनी चाहिये वह नहीं होगी। अर्थात् मैं कीड़ी-मकोड़ेको मारूं भले नहीं, लेकिन हो सकता है कि अुनके त्राससे तंग आकर मैं अुन्हें मनमें कोसे बिना और शाप दिये बिना न रहूं, और जानसे न मारकर दूसरी कोअी सजा अुन्हें दे डालूं। यह दूसरी सजा अैसी हो सकती है, जो अन्तमें प्राण लेनेसे भी अधिक कठोर और निर्दय साबित हो। यदि मेरी यह अहिंसात्मक आदत सिर्फ कीड़ों-मकोड़ों तक ही सीमित हो, तो यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि वह मुझे मकड़ी, सांप या बिच्छूको — या शायद किसी मनुष्यको भी — मारनेसे रोकेगी। अुससे मेरा क्रोध कम न होगा। अुसके कारण मैं बैल या नौकरसे मरते दम तक काम लेनेमें संकोच नहीं करूंगा। अुसके कारण अपने अधीन बने हुअे किसी आदमीके साथ अितनी सख्ती करते भी मैं नहीं हिचकिचाअूंगा कि अुसका सब-कुछ छिन जाय। और अन्तमें बुरी संगतिके असरसे मैं अिन कीड़ों-मकोड़ोंके बारेमें भी लापरवाह बन जाअूंगा।

अिसी तरह दान करना भी अवश्य अेक सत्कर्म है। परंतु जब तक दान देनेवाला दानके गुणोंके बारेमें स्वयं विचार नहीं करता, बल्कि केवल चली आयी रूढ़िके कारण अथवा अिस श्रद्धासे दान करता है कि अमुक स्थान पर अमुक वस्तुका अमुक मनुष्यको दान करनेसे अमुक फल मिलता है, तो यह विश्वासके साथ नहीं कहा जा सकता कि दानकी यह क्रिया दानीको अुदार बनावेगी ही। रूढ़ बने हुअे मार्गोंमें अुसके दानका प्रवाह बहेगा, परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि वह आवश्यक मार्गोंमें भी बहेगा। हो सकता है कि अुदार चित्तसे अथवा रहमदिलीसे दानकी तरफ प्रवृत्ति होनेके बजाय यह

क्रिया माथेके तिलककी तरह या भीतरके रोगोंके बाहरी अुपचारकी तरह केवल अूपरी संस्कार ही रहे। और किसी कारणसे अिस रूढ़ि या श्रद्धाके संस्कारोंका लोप हो जाय, तो माथेके तिलककी तरह अिस दानकी क्रियाकी आदत भी मिट जाय।

सारांश यह कि जब तक मेरे कर्मोंके पीछे रहनेवाले गुणों या अिच्छाके बीजके विषयमें मेरे अपने हृदयमें विवेक-विचार न अुत्पन्न हो, तब तक मुझमें अुन गुणोंका सब कामोंमें विस्तार करनेकी, अथवा क्या करना और क्या न करना — अिस बारेमें अुन गुणोंमें स्थिर रहकर विचार करनेकी, अैसा करते हुअे होनेवाले कष्टोंको धीरजसे सहन करनेकी, संगतिका दोष न लगने देनेकी, और दोषपूर्ण गुणों, अिच्छाओं या आदतोंसे बचनेकी शक्ति नहीं आ सकती।

जान-बूझकर होनेवाले सारे व्यवहारोंकी बुनियाद सही या गलत विवेक है। विवेकमें चार वस्तुओंका समावेश होता है। अवलोकन, प्रज्ञा, भाव और सावधानता। अवलोकनका अर्थ है, जो जो विषय अनुभवमें आवें अुनकी शोध। किसी भी पदार्थ*का स्वरूप क्या है, अुसके धर्म कौनसे हैं और वे वैसे ही क्यों हैं — अिसकी शोध ही अवलोकन है।

प्रज्ञा अर्थात् अनुभवोंको तोलनेकी शक्ति: जिस शक्तिकी सहायतासे हम गुड़ और शक्करके बीचका, सा और रे के बीचका, दया और प्रेमके बीचका, मान और अपमानके बीचका भेद जान सकते हैं, वह अनुभवतोलक शक्ति। यह शक्ति विषयोंके बीचके भेद दिखाती है।

भावका अर्थ है किसी पदार्थके संबंधमें हमारा दृष्टिबिन्दु। भाव अनेक हैं, परंतु सब भावोंका विश्लेषण करने पर अुनका तीन मूल

---

* यहां पदार्थ शब्दका बहुत व्यापक अर्थमें अुपयोग किया गया है। सजीव-निर्जीव, स्थावर-जंगम, स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त-अमूर्त जो भी पदार्थ विचारके विषय बन सकते हैं, वे सब अिसमें आ जाते हैं।

भावोंमें समावेश हो जाता है। विषमभाव, समभाव और अैक्यभाव। यह पदार्थ और मैं अेक-दूसरेसे भिन्न हैं; अुसका हित अलग है, मेरा हित अलग है-- यह है विषम, पर या द्वैतभाव। यह पदार्थ और मैं दोनों अेकसे हैं; जैसा मेरा सुख है वैसा ही अुसका है — यह सम या विशिष्टाद्वैत भाव है। यह पदार्थ और मैं अेक ही हैं; अुसका हित ही मेरा हित है-- यह है अैक्य या अद्वैतभाव।*

सावधानताका अर्थ है संपूर्ण जागृति, कार्य करनेके पहले ही आत्मस्मृति। खाते समय खानेका, बैठते समय बैठनेका — अिस तरह प्रत्येक कार्य करते समय अुसे करनेका भान होना सावधानता है।

अवलोकन, प्रज्ञा आदि चारमें से कौन किसका कारण है, यह निश्चय करना कठिन है। अिन चार वस्तुओंकी थोड़ी-बहुत विरासत तो हरअेकको जन्मसे ही मिली होती है। प्रज्ञाके सूक्ष्म होनेसे भाव

* भावोंके फलस्वरूप किसी पदार्थके प्रति जो वृत्ति पैदा होती है वह भावना या विकार है। साधारण तौर पर अच्छी वृत्तिके लिअे भावना शब्द काममें लिया जाता है और बुरी वृत्तिके लिअे विकार शब्द काममें लिया जाता है। प्रत्येक प्राणीमें कम-ज्यादा मात्रामें तीनों भाव रहते हैं। जैसे, शरीरके अवयवोंके प्रति अैक्यभाव; सगे-संबंधियों, कुटुम्बीजनों और मित्रोंके प्रति समभाव; पदार्थों और पराये लोगोंके प्रति विषम या परभाव। किसी विशेष पदार्थके कारण नहीं, बल्कि स्वभावके रूपमें ही दृढ़ बनी हुअी वृत्ति गुण कहलाती है। अुदाहरणके लिअे, अमुक व्यक्तिके मेरा अमुक काम बिगाड़नेसे जो विकार अुत्पन्न हो वह क्रोधकी वृत्ति है। किसी समय, कोअी भी व्यक्ति मेरी किसी योजनाको बिगाड़े, अुस समय यही विकार अुत्पन्न होनेकी आदतको क्रोधका गुण कहते हैं। भाअीको दुःखमें देखकर जो भावना पैदा हो, वह दयाकी वृत्ति है। किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका दुःख भोगते देखकर यह वृत्ति पैदा होनेका स्वभाव पड़ जाय तो अुसे दयाका गुण कहेंगे।

स्पष्ट होते हैं। सूक्ष्म प्रज्ञा और स्पष्ट भाव अवलोकनको स्पष्ट बनाते हैं; स्पष्ट अवलोकन सच्चे निर्णयके लिअे आवश्यक है; और सावधानता अिन तीनों पर अपना असर डालती है। अिन सबके फलस्वरूप निर्णय करानेवाला जो विचार अुत्पन्न होता है, वह है विवेक। और यह विवेक फिर अवलोकन, प्रज्ञा और भावकी शुद्धि तथा सावधानताका पोषण करता है। अिन चारमें से कोअी भी अंग अधूरा रहता है, तो अुससे विवेकमें कमी आती है।

मनुष्य अवलोकन करनेवाला हो, लेकिन यदि अुसके भाव योग्य न हों या प्रज्ञा जड़ हो, तो वह केवल स्थूल, ओछी दृष्टिके या काल्पनिक सिद्धान्त बनानेवाला होगा; तात्त्विक विचारकी असल बुनियाद अुसके हाथ नहीं लगेगी। ठीक समय पर अुपयोगमें लायी जा सकनेवाली निर्णयशक्ति अुसमें पैदा नहीं होगी।

यदि केवल अुसकी प्रज्ञा ही सूक्ष्म हो, तो वह पदार्थोंके अूपरी भेदों और स्वरूपोंमें ही रमा रहेगा, लेकिन पदार्थोंके बन्धनोंसे मुक्त नहीं हो सकेगा।

मनुष्यमें अवलोकन और प्रज्ञा हो परन्तु योग्य भाव न हों, तो अुसका तत्त्व-विचार अुसमें बल नहीं पैदा कर सकता; अुसके जीवनमें कोअी परिवर्तन नहीं कर सकता।

और, यदि योग्य भाव हों, परन्तु अवलोकनकी कमी हो या प्रज्ञा मन्द हो, तो वह पदार्थोंकी काल्पनिक कीमत आंकेगा, जल्दीके निर्णय करेगा, अुसका विकास अेकांगी रहेगा, अपने आचरण पर अुसका अधिकार नहीं रहेगा, और तारतम्यको समझनेकी अुसमें कमी दिखाअी देगी। अर्थात् साधारण भाषामें जिसे नादानीभरा या बेढंगा व्यवहार कहते हैं, वैसा अुसका व्यवहार मालूम होगा। अुसे संतुलन कायम रखते नहीं आयेगा।

मनुष्यमें सब कुछ हो, लेकिन सावधानता न हो तो अुसे बार-बार यह कहनेका मौका आयेगा : 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।

जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।।' (मैं धर्मको जानता हूं, परन्तु मैं अुसका आचरण नहीं कर सकता; अधर्मको जानता हूं लेकिन अुससे मुक्त नहीं हो सकता।)

कला, कौशल, पांडित्य, सौन्दर्य, बल या केवल भक्ति, केवल कर्म-परायणता, केवल तप, केवल ज्ञान (जानकारी और तर्कशक्ति) या केवल ध्यानकी पूर्णतासे जीवनमें पूर्णता नहीं आ सकती। परन्तु यह कहना गलत नहीं होगा कि विवेककी पूर्णता और जीवनकी पूर्णता अेक ही चीज है। जैसे बिना प्राणका शरीर ही शव कहलाता है, वैसे ही मुझे लगता है कि बिना विवेकका जीवन ही अमानवता है।

केवल विवेकबुद्धिकी सहायतासे हम भक्तिमार्ग, तपमार्ग, कर्म-मार्ग या ध्यानमार्गका फल प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु केवल विवेक-विचार पर टिके रहना कठिन होता है, अिसलिअे भक्ति, तप आदि मार्गोंका आधार लेना ठीक है। लेकिन विचार करनेसे मालूम होगा कि मनुष्यकी अुन्नतिका अेक भी अैसा साधन नहीं, जिसमें विवेक-विचारकी आवश्यकता न रहती हो। और जितने ज्ञानी या सन्त पुरुष भूतकालमें हो गये हैं या वर्तमान कालमें होंगे, अुनमें सबसे बड़ी समानता यही पायी जायगी कि अुनके जीवनमें विवेकबुद्धि सतत जाग्रत रही या रहती है। जिस हद तक अुनमें विवेककी पूर्णता होगी, अुसी हद तक अुनका जीवन वास्तवमें महान होगा। अन्य सब सामग्रियां तो अिस विवेकके अलंकारमात्र हैं।

भले अिष्टदेवका दर्शन हुआ हो, समाधि-लाभ हुआ हो, तप सिद्ध हुआ हो, अनेक प्रकारकी विद्याओंमें पारंगतता प्राप्त हुअी हो या वैराग्यवृत्ति हो, परन्तु यदि मनुष्यमें विवेकका अुत्कर्ष न हुआ हो, तो वह अिन सबको पचा नहीं सकता, और अुसका अधःपतन भी हो सकता है। अिसके विपरीत, यदि केवल विवेक-विचार जाग्रत रखनेकी ही शक्ति प्राप्त की जा सके, तो अुतनेसे ही वह स्थायी शान्ति पा

सकता है। मेरे विचारसे पूर्ण शुद्ध विवेकी जीवन ही जीवन्मुक्तिका प्रत्यक्ष लक्षण है।

विवेकके अुत्कर्षको मैं जीवनका और अिसलिअे तालीमका अन्तिम ध्येय मानता हूं और तालीमके ये विभाग करता हूं : अवलोकन (शोधकी जिज्ञासा और सूक्ष्मता), प्रज्ञाकी तीव्रता, योग्य भावोंके पोषणके फलस्वरूप भावना-विकास और संपूर्ण जागृतिका अभ्यास।

दृढ़ता–धृति

अूपर जो कुछ लिखा है, अुसमें थोड़ा जोड़नेकी जरूरत है। केवल विवेकबुद्धि — सारासारकी ठीक समझ और निर्णय करनेकी शक्ति — अेक गुणके बिना असफल भी सिद्ध हो सकती है। और वह गुण दृढ़ता या धृतिका — जिस वस्तुको विवेकसे योग्य ठहराया हो, अुससे लगनके साथ चिपके रहनेकी शक्तिका है। यह दृढ़ता या धृति ही मनोबल, आत्मबल आदि शब्दोंसे पहचानी जाती है। यह दया, क्रूरता आदिकी तरह भावना नहीं है; लेकिन जैसे बलवान मनुष्यके स्नायुओं और कमजोर मनुष्यके स्नायुओंकी गठनमें जन्मजात अथवा तालीमसे पड़ा हुआ भेद रहता है, अुसी तरह चित्तकी गठनमें तालीमसे पड़नेवाला या जन्मसे रहनेवाला यह भेद है। तालीमसे जैसे मनुष्यके स्नायु मजबूत बन सकते हैं, अुसी तरह धृति भी बलवान हो सकती है।

६

तालीम और अभ्यास

तालीममें अभ्यासके महत्त्वको पूरी तरह समझे बिना काम नहीं चल सकता। अभ्यासका अर्थ है, अेक ही कामको बार-बार करना। खेतमें सब जगह घास अुगी हो और आप कभी अेक स्थान पर और कभी दूसरे स्थान पर घूमें, तो वहां किसी तरहकी निशानी मालूम नहीं पड़ेगी। परन्तु अेक ही स्थानसे चलनेका नियम रखें, तो थोड़े समयमें वहां साफ पगडंडी दिखाअी पड़ेगी। हमारे शरीरमें भी अिसी तरह होता है। हम किसी दिन हाथकी, किसी दिन पांवकी, और किसी दिन कमरकी कसरत करें और अुसमें किसी भी तरहका निश्चित अभ्यास न रखें, तो हमारा अेक भी स्नायु भलीभांति विकसित नहीं होगा। अुसी तरह यदि हम किसी दिन चरखा चलायें, किसी दिन पांवसे चलाये जानेवाले यंत्र पर बैठें, किसी दिन चित्र बनायें, किसी दिन संगीत-क्लासमें जायें और किसी दिन ध्यान करने बैठें, तो हमें अेक भी काममें सफलता नहीं मिलेगी।

शारीरिक या मानसिक, कोअी भी शक्ति प्राप्त करनेके लिअे अर्थात् अुस शक्ति पर पूरा पूरा काबू पानेके लिअे अभ्यासके बिना काम नहीं चल सकता।

हमारे देशमें अभ्यासका महत्त्व बहुत लम्बे समयसे समझ लिया गया है; लेकिन अभ्यासके साथ जो दूसरे अंग जुड़े हुअे हैं, अुन पर किसीका ध्यान नहीं गया है। अनुभवसे यह पता चला कि अभ्यासके बिना संस्कार दृढ़ नहीं होते। अिसलिअे हम किसी न किसी ढंगसे अभ्यास करानेका प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक क्रिया तीन प्रकारसे की जा सकती हैं : भयसे, लालचसे और क्रियाके प्रति रहे प्रेमसे। भय

और लालचसे भी संस्कार डाले जा सकते हैं। और अधिकतर अिन दोमें से अेकके या दोनोंके जरिये अभ्यास कराया जाता है। अिस तरह अभ्यास कराना अभ्यास करानेवालेको आसान पड़ता है; अुसमें अभ्यास करनेवालेकी विवेकबुद्धिको विकसित नहीं करना पड़ता। सरकसके मालिक जानवरोंको भयसे ही तालीम देते हैं। शालाओंमें शिक्षक भी यही तरीका अपनाते हैं। बहुतेरे सम्प्रदायोंके प्रवर्तकोंने भी बार-बार भय या आशा बताकर जनतामें अच्छी आदतें पैदा की हैं। ये आदतें कभी-कभी मजबूत तो हो जाती हैं, परन्तु मूढ़-भावसे। अुनका रहस्य समझमें नहीं आता। जो भय या आशा बताअी गअी हो, अुसकी चिन्ता या श्रद्धा मिट जाने पर सदियों पुरानी आदतें भी थोड़े समयमें नष्ट हो सकती हैं। कुछ वर्षोंके अंग्रेजी विद्याके संस्कारोंने हमारी जनतामें पड़े हुअे सदियों पुराने संयमके संस्कारोंको नष्ट कर दिया। अिसके कारणकी जांच करेंगे, तो मालूम होगा कि संयमके संस्कार यमदंडके भय या स्वर्गसुखकी आशासे डाले गये थे। किसी भी कारणसे अिस भय और आशा परसे श्रद्धाके अुड़ते ही और स्थूल दृष्टिसे संपूर्ण दिखाअी पड़नेवाले आधिभौतिकवाद पर श्रद्धा जमते ही वह संयम चला गया। शुष्क वेदान्तका भी कअी लोगोंके जीवन पर यही परिणाम होता है। जैनधर्म तप और संयम पर बेहद जोर देता है। फिर भी कुछ जैन साधुओं और गृहस्थोंमें चरित्रभ्रष्टता घृणा अुत्पन्न करनेकी हद तक बढ़ी हुअी सुनी गअी है। अिसका कारण यही हो सकता है कि तप और संयम पर प्रेम अुनका मूल्य समझकर नहीं रहा होगा, परन्तु अुनके द्वारा कोअी भय दूर करनेकी या सुख प्राप्त करनेकी आशा रही होगी। और यह भय और सुख काल्पनिक हैं, अैसा लगते ही तप और संयम पतझड़के पत्तोंकी तरह खिर गये होंगे।

अिसलिअे अभ्यासके साथ अभ्यासकी क्रिया पर प्रेम हो, तो ही अभ्यास मनुष्यको लाभ पहुंचा सकता है। यह ज्यादा कठिन बात

है। अिसमें अभ्यासीकी विचारशक्ति जाग्रत होनी चाहिये। अभ्यासकी क्रिया पर प्रेम हो सके, अिसके लिअे अुस दिशामें अुपयोगी गुणोंका विकास हुआ होना चाहिये। अिस प्रकारका अभ्यास अत्यंत धीमी गतिसे ही हो सकता है।

परन्तु आज तो अभ्यासकी आवश्यकता पर ही कुछ लोगोंको अश्रद्धा होने लगी है। वे अभ्यासके बदले साहचर्यके नियम पर जोर देते हैं। अैसी अश्रद्धा होनेका कारण है अभ्यासके नियमके बारेमें हमारी शालाओंमें पोषित हुआ गलत खयाल। शालाओंमें अभ्यासका जाना हुआ अुपयोग अंक, पहाड़े या कविता रटनेमें होता है। शिक्षकोंका यह खयाल है कि रटनेसे पहाड़े और कविता याद रह जाते हैं। अतः याद रखनेके लिअे रटनेकी (अभ्यासकी) जरूरत है।

साहचर्यका नियम जाननेवाले कहते हैं कि यह निरा भ्रम है। हमारी स्मरणशक्ति मूलसे ही अितनी पूर्ण है कि अेक बार किसी चीजको अच्छी तरहसे जान लेनेके बाद वह अिस तरह याद रहती है कि कभी भुलाअी ही नहीं जा सकती। परन्तु जो कुछ याद रखना हो, अुसे ठीक-ठीक स्मरणमें भरते आना चाहिये। अुदाहरणके लिअे, मेरी टोपी कहीं रख दी गअी हो और अुसे ढूंढ़ना हो, तो मैं क्या करूंगा? मैंने आखिरी बार कब निश्चित रूपसे टोपी पहनी थी, अुस समय मैं कहां था, बैठा था या खड़ा था, मेरे साथ दूसरा कौन था, वहांसे मैं कहां गया, वहां क्या किया, टोपी सिर परसे मैंने क्यों निकाली आदि आदि टोपीके साथ दूरका या पासका सम्बन्ध रखनेवाली छोटी-छोटी बातोंको मैं याद करूंगा। अिस तरह आसपासकी छोटी-छोटी बातें याद करनेसे मुझे यह याद आ जायगा कि मैंने टोपी कहां रखी थी। आस-पासकी ये बातें सहचारी (साथकी) बातें कही जाती हैं। टोपी कहां रखी थी, यह मैं भूला हरगिज नहीं था। क्योंकि रखते समय ही मेरे दिमाग पर अिस रखनेकी क्रियाका संस्कार पड़ गया था। परन्तु पूरी तरह सावधान न रहनेके कारण मैं अुस संस्कारको तुरन्त जाग्रत

नहीं कर सका था। अुसे जाग्रत करनेके लिअे मेरा आसपासकी बातोंका स्मरण करना काफी होगा।

अिस परसे यह नियम बनाया जाता है कि किसी चीजको याद रखनेके लिअे केवल अुसी चीजको याद रखनेका प्रयत्न करना बेढंगी पद्धति है। सरल बात यह है कि हरअेक क्रिया करते समय आसपासकी सब चीजों पर नजर डाल लेनी चाहिये। सूअी रखने जायं तो सूअीके साथ दूसरी क्या चीजें पड़ी हैं यह ध्यानसे देख लिया जाय। अुसका डिब्बा कहां रखा है, अुसके साथ और क्या क्या है, यह भी देख लिया जाय। अैसा करनेसे सूअी कहां रखी है अिसका विचार करते ही आसपासकी चीजोंका स्मरण जाग्रत हो जायगा और सूअीका स्थान याद आ जायगा। अिसी तरह पांच-चोक-बीस यह बीस बार रटाकर याद रखानेके बजाय पांच-पांच मनकोंके चार ढेर करके अुन्हें विद्यार्थीसे गिनवाया जाय, तो पांच-चोक पूछते ही बालककी स्मृतिमें पांच-पांच मनकोंके चार ढेर और अुस समय की हुअी क्रिया खड़ी होगी और वह पांच-चोक-बीस तुरन्त याद कर सकेगा। पांच-चोक-बीस हम भले बीस बार रटें, लेकिन बीसों बार हमारा ध्यान यह चीज रटनेमें ही नहीं रहता। अिसलिअे पांच-चोक कहते ही बीस शब्द मुंह पर आ ही जाय, अैसी जीभके स्नायुको भले आदत पड़ जाय, लेकिन यह मान्यता गलत है कि अिससे स्मरणशक्तिका विकास होता है।

यह आपत्ति गलत नहीं है। किसी भी चीजको स्मृतिमें भरनेके लिअे अभ्यासकी जरूरत नहीं। स्मृति पर अेक ही प्रयत्नसे कभी न मिटनेवाली छाप पड़ सकती है। और यह कोअी विरला अवधानी (अेकाग्रताकी शक्तिवाला) ही कर सकता है, अैसा नहीं; बल्कि यह स्मरणशक्तिका स्वभाव ही है।

फिर भी अभ्यास व्यर्थ नहीं जाता। अभ्यासका काम दूसरा ही है। अभ्यासका सम्बन्ध खास करके शरीरके स्थूल अंगोंके साथ होता है। स्थूल अंग शरीरके वे भाग हैं, जो अपने-आप या साधनोंकी मददसे

शरीरमें प्रत्यक्ष दिखाअी दें या भूख-प्यासकी तरह अनुभव किये जा सकें। अुदाहरणके लिअे, स्नायु, ज्ञानतन्तु, मस्तिष्क वगैरा। अिन सबको किसी भी प्रकारकी दृढ़ आदत डालनेके लिअे अभ्यासकी जरूरत रहती ही है।

स्मृति पर किसी वस्तुकी छाप डालनेके लिअे अेक संस्कार काफी है। अुस छापका यदि हमें बार-बार अुपयोग करना पड़े, तो विना प्रयत्नके अभ्यास हो जायगा। यानी हमारे स्थूल अंगोंको अमुक दिशामें काम करनेकी आदत पड़ जायगी। अुदाहरणके लिअे, अगर मैं किसी किरानेके व्यापारीके यहां नौकर होअूं, तो कौनसी चीज कहां रखी है, अिसकी छाप मैं अेक ही बारमें डाल लूंगा। साहचर्यके नियमसे मैं अुन चीजोंको खोज लूंगा। परन्तु रोज रोज अुन चीजोंका काम पड़नेसे थोड़े दिनोंमें बिना प्रयत्नके अुन चीजोंके स्थान याद रखनेका अभ्यास हो जायगा। अैसा नहीं है कि अिस क्रियामें साहचर्यके नियमका अमल होगा ही नहीं। परन्तु अुस नियमके अमलकी गति अितनी बढ़ जायगी कि चीज और अुसके स्मरणके बीच साहचर्यके नियमका समय ध्यानमें ही नहीं आयेगा। जो क्रिया बार-बार करनेकी हो या भविष्यमें करनेकी हो, अुसकी गति बढ़ानेका काम अभ्यासका है। फिर वह क्रिया स्मृतिकी हो या अन्य प्रकारकी — जैसे सूत कातनेकी—हो।

यह सच है कि स्मृति पर अेक ही बारमें किसी चीजकी छाप पड़ सकती है। परन्तु अुस छापको जाग्रत करनेमें समय न जाय, अिस तरहकी आदत डालनेके लिअे अुसका अभ्यास करना पड़ता है। फिर संस्कार ग्रहण करनेका भी अैसा अभ्यास होना चाहिये जिससे अेक ही संस्कारसे जाग्रत की जा सकनेवाली छाप अुसके सहचारी सम्बन्धोंके साथ स्मृति पर पड़े।

अूपर कहा गया है कि क्रियाकी गति बढ़ानेके लिअे अभ्यासकी जरूरत है। परन्तु गति तो बादमें आती है। अुसके पहले अुस क्रिया

पर धीरे-धीरे काबू पानेके लिअे, क्रिया अपने-आप करना आनेके लिअे भी पहले क्रियाका अभ्यास करना चाहिये। अर्थात् बार-बार सावधानीसे प्रयत्न करना चाहिये। अैसे बार-बारके प्रयत्नसे क्रिया पर काबू पाया जाता है, और क्रियाके अभ्याससे गति बढ़ती है।

साहचर्यका नियम कहता है कि कोअी नअी चीज जल्दी सीखनी हो, तो अुसके लिअे अत्यंत सावधान वृत्तिका होना आवश्यक है। सारा ध्यान अुसीके पीछे लगा होना चाहिये। अभ्यासका नियम कहता है कि सीखी हुअी चीजको दृढ़ बनानेके लिअे और जरूरत पड़ने पर अुसका अुपयोग कर सकनेके लिअे अुसकी बार-बार आवृत्ति होनी चाहिये।

सद्‌गुण और दुर्गुण अभ्याससे बढ़ते हैं; अुसी तरह अच्छे काम करनेकी आदत तथा बुरे काम करनेकी आदत सब अभ्याससे पड़ती है। केवल विवेकसे अच्छे कामोंके लिअे आदरबुद्धि पैदा हो सकती है, अुनका महत्त्व समझमें आ सकता है, अच्छे-बुरेके बीचका भेद समझा जा सकता है। लेकिन जिस अच्छी चीजका ज्ञान हुआ हो अुसका अमल करनेके लिअे और जो चीज बुरी लगती हो अुससे बचनेके लिअे अभ्यासकी जरूरत है। यह अभ्यास यदि बलात्कार या लालचसे हो, तो यह नहीं समझना चाहिये कि अुससे अुन्नति होगी ही। यानी यह अभ्यास क्रियाके ही खयालसे और अुसीके प्रति रहे प्रेमसे होना चाहिये। परन्तु अभ्यासके बिना तालीम पूरी हो ही नहीं सकती। यानी अभ्यासके बिना विचारी हुअी चीज पच नहीं सकती, जीवनके साथ ओतप्रोत नहीं हो सकती।

७

अिन्द्रियोंकी तालीम

[शिक्षणमें बालकोंकी अिन्द्रियोंकी तालीमके बारेमें कुछ विचार किया गया है। संयमके लिअे प्रयत्न करते रहनेवाले पुरुष अिन्द्रिय-दमनके बारेमें काफी विचार करते हैं। अैसा भास होता है कि ये दो विचार परस्पर विरोधी हैं। मुझे लगता है कि अिन दोनों विचारोंमें कुछ अस्पष्ट विचारसरणी काम करती है। अिसलिअे अिस विषयमें मुझे जो दिशा प्राप्त हुअी है, अुसके अनुसार अिस लेखमें कुछ विचार प्रकट करनेकी अिच्छा है। अैसा नहीं मानना चाहिये कि अिस लेखमें अुन विचारोंका अन्त आ गया है -- बल्कि केवल आरंभ ही है। परन्तु यहां जो विचार मैंने रखे हैं, वे तालीममें रस लेनेवालों तथा आत्मार्थी पुरुषोंके लिअे अुपयोगी सिद्ध होंगे, अैसा मेरा विश्वास है।]

यह बात बहुत कम लोगोंके खयालमें आयी होगी कि ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि या सूक्ष्मता और ज्ञानेन्द्रियोंकी रसवृत्तिमें भेद है। अिस विषयको यहां कुछ स्पष्ट करनेका मेरा विचार है।

यह कहा जा सकता है कि ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धिका अर्थ है ज्ञानेन्द्रियोंकी नीरोगिता और पूर्णता। यदि किसी मनुष्यके कान पतली और मोटी आवाजोंको सुन सकते हों, अुनके भेदको भलीभांति समझ सकते हों, आवाज परसे अुसकी दिशा जान सकते हों और अुसकी सुननेकी शक्ति बुढ़ापे तक बनी रहे, तो कहा जा सकता है कि अुनकी कर्णेन्द्रिय **शुद्ध** है।

यदि कोअी मनुष्य नादप्रिय हो यानी अलग-अलग तरहकी आवाजें, वाद्य, गायन वगैरा सुननेमें आनन्द मानता हो, अुससे अुसकी अच्छी या बुरी वृत्तियां अुत्तेजित होती हों, तो यह कहा जा सकता है कि अुसकी कर्णेन्द्रियकी **रसवृत्ति** जाग्रत है।

अिसी तरह नाककी सूक्ष्म और अुग्र गंधोंको परखनेकी शक्ति और अुस शक्तिका अन्त तक बना रहना, जीभ और त्वचाकी अन्त तक बनी रहनेवाली तेजस्विता, अुस अुस ज्ञानेन्द्रियकी शुद्धिकी

निशानियां हैं। और गंध, रूप, रस, स्पर्श आदिके अलग-अलग शौक अुस अुस ज्ञानेन्द्रियकी रसप्रियता है।

ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि और रसवृत्तिके बीच थोड़ा संबंध है, थोड़ा विरोध है और ये दोनों अेक-दूसरीसे थोड़ी स्वतंत्र भी हैं।

यदि ज्ञानेन्द्रिय शुद्ध न हो, तो अुसमें अधिक रसवृत्ति नहीं हो सकती। बहरेको संगीतसे खुश होते हम नहीं देख सकते, या जन्मसे अंधा व्यक्ति रूपके रसका भोक्ता नहीं बन सकता। अुसी तरह नाकको तालीम न मिली हो, यानी वह गंधके भेदोंको पहचाननेकी शक्ति न रखती हो, तो सुगंधसे अुसका अधिक रंजन नहीं हो सकता। जीभ जड़ बन जाय, तो वह अनेक तरहके व्यंजनोंका स्वाद समझ नहीं सकती। अिसलिअे जिस हद तक ज्ञानेन्द्रिय शुद्ध होगी, अुसी हद तक वह रसिक बनने योग्य होती है। अिस तरह ज्ञानेन्द्रियकी शुद्धि और रसवृत्तिके बीच थोड़ा संबंध है।

परंतु रसवृत्ति ज्ञानेन्द्रियकी शुद्धिकी विरोधी भी है। जिस प्रकार आहारके बिना स्वास्थ्य नहीं बना रह सकता, लेकिन अतिआहारसे स्वास्थ्य निश्चित रूपसे बिगड़ता है, अुसी प्रकार अलग-लअग अिन्द्रियोंके बारेमें भी समझना चाहिये। रसनेन्द्रिय थोड़ी सूक्ष्म हो, तो ही वह मीठे और फीकेके बीचका भेद पहचान सकती है। भेद पहचाननेसे ही मीठेके बारेमें अुसकी रसवृत्ति जाग्रत होगी। लेकिन मीठे स्वादको आनन्दरूप मानकर मीठेके पीछे पड़ जाय, तो मनुष्य जीभकी शक्तिको भी खोता जायगा। मीठा खानेकी आदत डालनेसे अुसकी जीभ अितनी जड़ हो जायगी कि थोड़ी मिठासको अुसकी जीभ पहचान ही नहीं सकेगी। कोअी चीज काफी मीठी हो तभी अुसे लगेगा कि वह मीठी है। सच पूछा जाय तो मिठासका शौकीन गेहूंके आटेमें थोड़ी शक्कर मिलाकर आटेको मीठा बनाकर नहीं खाता, बल्कि शक्करमें आटा मिलाकर शक्करको थोड़ी फीकी बनाकर खाता है। अुसकी जीभमें मीठेके संबंधमें रसवृत्ति — मीठा खानेकी लालसा — मौजूद है, लेकिन

अुसने जीभकी शुद्धि कम कर दी है। अिस तरह ज्ञानेन्द्रियकी रसवृत्ति अुसकी शुद्धिकी विरोधी है।

अिन्द्रियोंकी शुद्धिका विकास और रसवृत्तिका विकास कुछ बातोंमें अेक-दूसरेसे स्वतंत्र है। जिस प्रकार आरोग्य नष्ट हो जाने पर भी खाने-पीनेकी लोलुपता बढ़ सकती है, अुसी प्रकार अिन्द्रियोंकी शुद्धि न रहने पर भी अुनकी रसवृत्ति बढ़ती रह सकती है। बहुतेरे लोगोंके बारेमें देखा जाता है कि बुढ़ापेमें अिन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जानेके बाद भी अिन्द्रियोंके भोगोंके लिअे अुनका शौक बना रहता है। अिसका कारण यह है कि अिन्द्रियोंकी शुद्धि और रसवृत्तिका पोषण करनेवाले तत्त्व अलग अलग हैं।

अिन्द्रियोंकी शुद्धि शरीरके स्वास्थ्य और अुस अुस अिन्द्रियके व्यायाम पर आधार रखती है। जिस तरह किसी मनुष्यकी भुजाअें बलवान होनेके लिअे अुसका साधारण स्वास्थ्य अच्छा होना ही चाहिये और भुजाओंके स्नायुओंको खास तालीम मिलनी चाहिये, अुसी तरह अुसकी आंखोंकी तेजस्विता और शुद्धिके लिअे भी अुसका साधारण स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिये और आंखोंको तालीम मिलनी चाहिये। बुढ़ापेमें मनुष्यकी ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्ति घट जाती है, क्योंकि अुसका साधारण स्वास्थ्य भी घट जाता है। जुकामसे नाक बंद हो जाती है और कान जड़ हो जाते हैं। बीमारीमें जीभकी रुचि मर जाती है और अजीर्णसे आंखें आ जाती हैं। अैसे अनुभव सभी लोगोंके होंगे। अतः जिस तरह कर्मेन्द्रियोंकी शक्ति टिकाये रखनेके लिअे साधारण स्वास्थ्य जरूरी है, अुसी तरह ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्तिके लिअे भी वह जरूरी है।

कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके बीच दूसरी भी समानता है। बहुतसे लोगोंके दाहिने हाथमें जितनी ताकत होती है, अुतनी बायें हाथमें नहीं होती और पांवके स्नायु जितने बलवान होते हैं अुतने हाथोंके नहीं होते। कुछ लोगोंके बारेमें अिससे अुलटा भी हो सकता है। अिसका कारण अुस अुस स्नायुको मिलनेवाली कसरत है। दाहिने हाथसे काम

करनेकी आदत होनेसे दाहिना हाथ जितना बलवान रहता है, अुतना बायां नहीं रहता; क्योंकि अुसके स्नायुओंको कसरत नहीं मिलती। अिसी प्रकार किसी गवैयेके कान जितने तेज होते हैं, अुतनी ही तेज अुसकी आंखें भी होंगी, यह निश्चयके साथ नहीं कहा जा सकता। निशानेबाजकी आंखोंमें जितना तेज होता है, अुतना संभव है अुसकी नाक और कानोंमें न भी हो। शिकारी जानवरोंकी घ्राणेन्द्रिय (नाक) तेज होती है और अुनके शिकार बननेवाले जानवरोंके कान तेज होते हैं। **जिस अिन्द्रियके विकासके लिअे जितनी स्वाभाविक रूपमें या जानबूझकर मेहनत की गअी हो, अुतनी अुस अिन्द्रियकी शक्ति बढ़ती है।**

परंतु यहां मेहनतका अर्थ समझ लेना चाहिये। मेहनतका अर्थ सिर्फ अिन्द्रियोंका अुपयोग नहीं, बल्कि अुनका व्यवस्थित ढंगसे किया जानेवाला अुपयोग है। जिस प्रकार अनाजके बुवाअीके लिअे होनेवाले अुपयोगमें और किसी दावतमें होनेवाले अुपयोगमें भेद है, अुसी तरह किसी अिन्द्रियके विकासके लिअे किये जानेवाले अुसके अुपयोगमें और शौकके लिअे किये जानेवाले अुपयोगमें भेद है। खेतमें डाला गया अनाज योजनापूर्वक, योग्य समय पर, किफायतके साथ और अनेक गुना अनाज पानेके अुद्देश्यसे काममें लिया गया है। अिस क्रियामें अनाजका अुपयोग तो किया गया है; परंतु यह अुपयोग अधिक अनाज वापस लानेवाला है। अुसी तरह किसी अिन्द्रियके विकासके लिअे की जानेवाली मेहनत — व्यायाम — में अिन्द्रियका अुपयोग होता है; परंतु वह भोगके लिअे किये जाने-वाले अुपयोग जैसा नहीं है। व्यायाम योजनापूर्वक, अुचित समय पर और संयमके साथ — किफायतशारीसे किया जाता है। अुसके लिअे की जानेवाली थोड़ी मेहनतके फलस्वरूप अिन्द्रियमें मेहनतकी अपेक्षा अधिक शक्ति अुत्पन्न होनी चाहिये। जिस तरह व्यायाम साधारण तौर पर शरीरको शुद्ध बनाकर अुसमें स्फूर्ति लाता है और कर्मेन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ाता है, अुसी तरह ज्ञानेन्द्रियां भी अुपयोगमें आनेसे शुद्ध बनकर स्फूर्तिवाली और ज्यादा काम देनेकी शक्तिवाली हो सकें, तो कहा जा

सकता है कि अिससे अुन अिन्द्रियोंका विकास होता है या अुन्हें तालीम मिलती है। लेकिन शराब जिस तरह शरीरमें स्फूर्ति लानेवाली मालूम होती है, फिर भी वह स्फूर्ति शरीरको (स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी) अशुद्ध बनाती है और अुसकी क्रियाशक्तिको बिगाड़ कर अन्तमें अुसका नाश करती है तथा बुद्धिको भी भ्रष्ट करती है, अुसी तरह यदि किसी अिन्द्रियका कोअी अुपयोग आरंभमें अुसमें स्फूर्ति लानेवाला मालूम हो, लेकिन अन्तमें अुसे अशुद्ध और अशक्त बनावे और आखिर अुस अिन्द्रियके द्वारा होनेवाले ज्ञानके बारेमें बुद्धिको जड़ बनावे, तो अुसमें अिन्द्रियको तालीम नहीं मिलती बल्कि अुसका अनुचित अुपयोग होता है।

बेशक, हरअेक मनुष्यकी साधारण शक्तिके प्रमाणमें प्रत्येक अिन्द्रियकी शक्तिकी भी सीमा होती है। किसी मनुष्यके पैर ज्यादा ताकतवर हों, तो वह दूसरे मनुष्यसे ज्यादा चल सकता है। लेकिन अन्तमें अुसकी भी चलनेकी शक्ति खतम हो जाती है। अुस सीमाके आ जानेके बाद भी यदि वह चलता ही रहे, तो अुसके बादकी कसरत अुसके पैरोंको ताकतवर बनानेके बजाय कमजोर ही बनायेगी। यही बात ज्ञानेन्द्रियोंके अुपयोग पर भी लागू होती है। आंखें अच्छी होने पर भी यदि हम अुनका अमर्यादित अुपयोग करें, तो अुन्हें नुकसान ही पहुंचेगा।

हमारे शरीरकी तुलना पानीकी अेक टंकीसे की जा सकती है। अुस टंकीमें से कअी नल निकलते हैं। किसी भी नलके द्वारा टंकीका अुपयोग छः प्रकारसे बढ़ाया जा सकता है: १. टंकीमें पानीकी मात्रा बढ़ानेसे; २. जिस दबावसे पानी नलोंमें अुतरता है, अुस दबावको बढ़ानेसे; ३. पानीकी मात्रा, दबाव तथा कार्यकी जरूरत कितनी है, अिसका विचार करके किफायत और नियंत्रणके साथ नलोंका अुपयोग करनेसे; ४. बड़ा नल लगानेसे; ५. नलके सामने तेजीसे पानी खींचनेवाला यंत्र रखनेसे; और ६. दूसरे नल काट डालनेसे।

अिसी प्रकार किसी भी अिन्द्रियकी शक्ति छः प्रकारसे बढ़ाअी जा सकती है: १. खूनकी मात्रा बढ़ानेसे; २. जिस दबावसे खून

नसोंमें घूमता है, अुस दबावको बढ़ानेसे; ३. खूनकी मात्रा तथा दबाव और कार्यके महत्त्वकी तुलना करके संयमपूर्वक अिन्द्रियका अुपयोग करनेसे; ४. अुस अिन्द्रियके स्नायुओं और ज्ञानतंतुओंको विशेष प्रकारकी तालीम देनेसे; ५. अुस अिन्द्रियके सामने दबाव बढ़ानेसे; तथा ६. दूसरी अिन्द्रियोंका नाश करनेसे।

सोचनेसे मालूम होगा कि आखिरी दो मार्ग अिन्द्रियके विकासके मार्ग नहीं कहे जा सकते। वे तो अुस अिन्द्रियका या दूसरी अिन्द्रियोंका दिवाला निकालनेके मार्ग हैं। पहले चार मार्गोंको ही तालीमके लिअे अुपयोगी माना जा सकता है। और अुनमें चौथे —— किसी अिन्द्रियके स्नायुओं और ज्ञानतंतुओंको खास प्रकारकी तालीम देनेके —— मार्ग या अुपायका आधार पहले तीन मार्गों या अुपायों पर है। खूनकी मात्रा, दबाव और संयमकी अुपेक्षा करके यदि कोअी मनुष्य अेकाध अिन्द्रियको खास तालीम देनेका प्रयत्न करे, तो अिसमें अुसे बड़ी सफलता नहीं मिल सकती।

अिसलिअे अिन्द्रियोंकी शुद्धिके तीन योग्य अुपाय माने जायंगे: स्वास्थ्य (जिसमें खूनकी मात्रा और दबाव दोनों आ जाते हैं),* अिंद्रियोंका संयमके साथ अुपयोग और स्नायुओं तथा ज्ञानतंतुओंकी तालीम। अेकाध अिन्द्रिय पर ज्यादा तनाव डालना या दूसरी अिन्द्रियोंमें दोष पैदा करना अिन्द्रिय-शुद्धिका सही अुपाय नहीं कहा जा सकता। जिस तरह केवल आग बुझानेके लिअे ही टंकीके दूसरे नल काटना या जरूरत पड़ने पर अेक नलके सामने पंप भी लगाना अुचित हो सकता है, अुसी तरह किसी खास संकटको टालनेके लिअे ही किसी

---

* अिन दोनोंके मिलनेसे जो शक्ति पैदा होती है, वह मनुष्यकी प्राणशक्ति कही जा सकती है; खूनका अर्थ शुद्ध खून ही समझना चाहिये। शरीरमें किसी भी जगह जम जानेवाले चरबी या दूसरे अशुद्ध तत्त्व खून नहीं हैं; नियमित रूपसे घूमते रहकर शरीरके काम आ चुके या घिस चुके तत्त्वोंको हटा कर नये तत्त्व दाखिल करनेवाला भाग ही खून कहा जायगा।

अेक अिन्द्रिय पर विशेष तनाव डालना या दूसरी अिन्द्रियोंमें दोष पैदा करना (या पैदा होने देना) अुचित कहा जा सकता है।

अितने स्पष्टीकरणके बाद हम यह समझ सकेंगे कि किसी अिंद्रियकी रसवृत्तिका अुसकी शुद्धि पर कैसा असर होता है।

सबका यह अनुभव है कि किसी भी अिन्द्रियका जब अिच्छा या अनिच्छासे किसी विषयके साथ संयोग होता है, तब अुस अिन्द्रियके स्नायुओं पर तनाव पड़ता है। जब हम हाथ पर कोअी वजन रखते हैं, या पांवसे किसी चीजको दबाते हैं, या आंखोंसे किसी चीजकी जांच करते हैं, तब अिस तनावका हमें अच्छी तरह अनुभव होता है। लेकिन बारीकीसे देखने पर मालूम हो जाता है कि थोड़े संयोगमें भी अिन्द्रिय पर तनाव पड़ता है। जिस तरह लकड़ी तोलनेकी तराजू ४–६ तोलोंका फर्क नहीं दिखा सकती, लेकिन सोना तोलनेकी तराजू चावल भर वजनसे भी हिल जाती है, अुसी प्रकार कुछ मनुष्योंके और प्रत्येक मनुष्यकी कुछ अिन्द्रियोंके स्नायुओं और ज्ञान-तन्तुओंसे सूक्ष्म तनाव परखा नहीं जाता, और कुछ अुसे परख लेते हैं। जब वह तनाव खतम हो जाता है, तब स्नायु आराम या प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। जिस मनुष्यकी जिस अिन्द्रियके स्नायु लंबे समय तक अैसा तनाव सहन कर सकते हैं और ज्ञानतंतु सूक्ष्म तनाव परख सकते हैं, वह मनुष्य तनाव खतम हो जाने पर अधिक प्रसन्नता अनुभव करता है।

अेक बार अेक विषयके संयोगसे अुत्पन्न होनेवाला तनाव और अुस तनावके खतम होनेके बादका आराम अच्छी तरह अनुभव कर लिया गया हो, तो फिर अुस विषयका स्मरण भी थोड़ा-बहुत तनाव पैदा करता है। अुदाहरणके लिअे, किसी पदार्थको देखकर अेकाअेक खूब डर लगा हो या अत्यन्त हर्ष हुआ हो, तो अुसका स्मरण भी डर या हर्ष पैदा करता है। यह चीज सबके अनुभवकी है, अिसलिअे अिसे अधिक विस्तारसे समझानेकी जरूरत नहीं।

यहां यह याद रखना चाहिये कि किसी भी तनावके जारी रहते हुअे प्रसन्नताका अनुभव नहीं होता; बल्कि तनाव खतम होने पर स्नायुओंके मूल स्वरूपमें आनेके बाद प्रसन्नता होती है। अिस-लिअे, हर्षका तनाव हो या शोकका तनाव हो, क्रोधका तनाव हो या दयाका तनाव हो, सारे तनावोंका अन्त या अुतार स्नायुओंको स्वस्थ बनाकर आरामका अेकसा अनुभव कराता है। और अिसी कारणसे हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदिके तनावोंका खूब अनुभव होने पर सब समान ढंगसे आंसू, पसीना वगैरा पैदा करते हैं और अन्तमें मनको 'अुन्मुक्त' बनाते हैं; और सीमासे बाहर हो जायं, तो मूर्छा, पागलपन या मृत्युके भी कारण बनते हैं।

हमारे स्नायु और ज्ञानतंतु रबरकी तरह लचीले होते हैं। अनेक दिशाओंमें वे खींचे जा सकते हैं, और फिरसे अपनी मूल स्थितिमें आनेके लिअे प्रयत्नशील रहते हैं। परंतु यदि अेक ही दिशामें अुन पर बार बार जोर पड़े, तो कुछ समय बाद वे फिर मूल स्थितिमें आ ही नहीं सकते और अुनका स्वरूप बदल जाता है। अुसके बाद अुनकी विरुद्ध दिशामें अुन्हें बड़े प्रयत्नके बिना नहीं खींचा जा सकता। परंतु जिस दिशामें खींचे जानेकी अुन्हें आदत पड़ी होती है, अुस दिशामें थोड़े प्रयत्नसे भी ज्यादा खिंच जाते हैं। अिस तरह मनुष्यकी आदतें, स्वभाव और वृत्तियां दृढ़ बन जाती हैं।

स्नायु और ज्ञानतंतु जिस दिशामें खिंचनेके लिअे अनुकूल बने रहते हैं, वह खिंचाव जिस विषयके संयोगसे हो सके, अुस विषयके लिअे साधारण तौर पर अुन्हें रस रहता है; फिर वह रस शुद्ध हो या मलिन, स्वास्थ्य बढ़ानेवाला हो या स्वास्थ्यका नाश करनेवाला हो।

हर चीजका संयोग हमारे स्नायुओं पर दो तरहका असर डालता है। अेकको कुदरती या नैसर्गिक असर और दूसरेको कल्पना-मिश्रित या सविकल्प असर कहा जा सकता है। अुदाहरणके लिअे, बरफ या राअीका तेल चमड़ी पर अेक तरहका कुदरती असर पैदा करता है।

यह असर साधारण तौर पर कुदरतके नियमके अनुसार ही होता है। जिस तरह चूने पर पानी गिरनेसे वह गरम होकर अुबलने लगता है, अुसी तरह राअीका तेल या बरफ मनुष्यकी चमड़ी पर अेक विशेष असर पैदा करता है। यह असर अुस समय अनुकूल हो तो अच्छा लगता है और प्रतिकूल हो तो कष्ट पैदा करता है। यह असर अधिकतर जड़ तत्त्वोंके नियमके अनुसार ही होता है और अुसका सभीको अेकसा अनुभव होता है।

लेकिन अिसके अलावा दूसरा अेक कल्पना-मिश्रित तनाव भी अनुभव किया जाता है। अिस सविकल्प असरको हम रस कहते हैं। अुदाहरणके लिअे, अेक मांसकी दुकानके सामनेसे मांसाहारी और शाकाहारी दो व्यक्ति गुजरते हैं, तब दोनोंको अेकसे तनावका अनुभव नहीं होता। मांसाहारीके स्नायु अिस विषय-संयोगके अनुकूल बने रहते हैं, अिसलिअे मांसको देखकर अुसे किसी तरहका कष्ट नहीं होता; परंतु शाकाहारीके स्नायु अिस तनावके प्रतिकूल होते हैं, अिसलिअे वह मांसको देखते ही बेचैन हो जाता है। मांसाहारीमें अनुकूल वृत्ति अुत्पन्न होनेका कारण यह है कि अुसके दिमागमें मांसके साथ खुराककी कल्पना जुड़ी होती है, जब कि शाकाहारीके मनमें अुसके साथ अपवित्रताकी या घृणाकी कल्पना जुड़ी होती है। अिसी प्रकार अेक मनुष्यको किसी स्त्रीका नाच देखकर आनन्द होता है और दूसरेको घृणा होती है। क्योंकि पहलेके मनमें नाचके साथ कुछ कलाकी कल्पना रहती है, और दूसरेको यह कल्पना असह्य मालूम होती है कि किसी स्त्रीको अपनी जीविका चलानेके लिअे अेक बड़े जनसमुदायके बीच निर्लज्ज बनकर नाचना पड़ता है और अिसीलिअे वह दृश्य अुसमें घृणा पैदा करता है।

दुनियाके लगभग सारे विषयोंके बारेमें अच्छे, बुरे, तटस्थ और अुसमें भी अुत्तम, मध्यम और कनिष्ठ आदि भेदोंवाले मत हमने बना रखे हैं। ये मत बनानेमें कभी-कभी अुन विषयोंका शरीर पर

होनेवाला नैसर्गिक असर भी कारणभूत होता है। अुदाहरणके लिअे, सांप या बिच्छूका काटना, सर्दियोंमें तापना, गर्मियोंमें ठंडक वगैराके बारेमें हमारे मत। अिस प्रकारके मतोंमें अधिकतर कोअी भेद नहीं होता, क्योंकि अुनका संबंध शरीर पर होनेवाले कुदरती असरोंके साथ होता है।

लेकिन कअी बार ये मत कायम करनेमें केवल परम्परासे चले आये संस्कार ही कारण बनते हैं। हम बचपनसे जिन लोगोंके संपर्कमें आते हैं, वे लोग जिस पदार्थको अच्छा कहते हैं, अुसे हम पसन्द करना सीखते हैं। और जिसे वे खराब कहते हैं, अुसे धिक्कारना सीखते हैं। अैसा नहीं होता कि ये मत अुस पदार्थकी शरीरका पोषण करनेकी या दूसरेका दुःख कम करनेकी शक्तिके साथ संबंध रखते ही हैं। बहुत बार अैसे पदार्थोंके बारेमें हमारा बड़ा अूंचा मत होता है, जो शरीर, अिन्द्रियों या मन पर बड़ा हानिकारक असर पैदा करते हैं; और लाभकारक असर पैदा करनेवाले पदार्थोंके प्रति हमारी अरुचि रहती है। अुदाहरणके लिअे, यह नहीं कहा जा सकता कि जरीके कपड़ोंके बारेमें हमारा जो अूंचा मत होता है, अुसका कारण यह है कि वे कपड़े शरीरके स्वास्थ्यको बढ़ानेवाले होते हैं। अुसी तरह जूतोंकी अमुक बनावट, कुर्तेका अमुक काट, पगड़ी बांधनेका अमुक ढंग, आंख और टोपीके बीच सावधानीसे रखा जानेवाला अमुक कोण, शाल ओढ़नेका अमुक ढंग, या साड़ीका अमुक रंग सुन्दर है -- ये सब बातें अुनका हमारी या दूसरोंकी सुविधा और स्वास्थ्य पर जो असर होता है, अथवा पदार्थके सच्चे स्वरूपका अनुभव लेनेमें अुनकी जो मदद मिलती है अुसका विचार करके निश्चित नहीं की जातीं; बल्कि अिस विषयमें हम कुछ प्रतिष्ठित लोगोंकी कल्पनाओंको ही स्वीकार कर लेते हैं।

रबड़ी-पूरी और शाक-रोटी ये दो चीजें जबान पर अलग-अलग असर पैदा करती हैं। जिस समय हमारी ज्ञानशक्ति मन्द न हो या

अुसका निरोध न किया गया हो, अुस समय यह भेद समझमें आये बिना नहीं रहता। लेकिन रबड़ी-पूरीको सुन्दर भोजन और शाक-रोटीको मामूली भोजन ठहरानेमें केवल प्रतिष्ठित लोगों द्वारा अिस विषयमें प्रचलित किया हुआ मत ही कारणभूत होता है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे तो रबड़ी-पूरी बुरा भोजन और शाक-रोटी सुन्दर भोजन माना जाना चाहिये। अिसलिअे यदि हमारी रसनेन्द्रियको सही तालीम मिली हो, तो हमें शाक-रोटीके बनिस्वत रबड़ी-पूरी खानेमें जल्दी अूब जाना चाहिये।

अिसलिअे किसी पदार्थके संयोगसे जो कुदरती वृत्ति पैदा होती है, अुसकी अपेक्षा अुसके विषयमें हमारी सविकल्प या कल्पना-मिश्रित वृत्ति बहुत बार कहीं अधिक बलवान होती है। **अिन्द्रियोंके विषयोंके साथ जुड़ा हुआ कल्पनाबल ही अिन्द्रियोंकी रसवृत्ति है।**

अूपर कहा गया है कि हरअेक पदार्थका संयोग हमारे स्नायुओं पर तनाव डालता है। अिस तनावका बल अुनकी कुदरती शक्ति पर और अुस पदार्थके विषयमें हमारी रसवृत्ति पर आधार रखता है। यदि अुस पदार्थके संबंधमें हमारे मनमें अतिशय राग भरा हो तो अुसे भोगनेका और यदि द्वेष भरा हो तो अुसे दूर हटानेका हम प्रयत्न करते हैं। भोगनेके बादका या दूर हटानेके बादका परिणाम सदा आरामकी प्रसन्नता ही पैदा करता है। लेकिन रागके कारण अुस प्रसन्नतामें हर्ष आदिका पूर्वस्मरण मिलता है। जिस पदार्थके बारेमें हमारे मनमें अेक बार राग हो, अुसी पदार्थके बारेमें बादको द्वेष पैदा हो, तो अुसके संयोगके बाद शोकका तनाव पैदा होता है; यद्यपि शरीर पर असर करनेकी अुसकी शक्तिमें कोअी फर्क नहीं पड़ता।

फिर, जैसा कि अूपर कहा जा चुका है, हमारे स्नायु और ज्ञानतन्तु रबरकी तरह लचीले होते हैं। अेक निश्चित सीमा तक अुन्हें खींचा जाय, तो अुनका अुपयोग अच्छी तरह होता है; लेकिन अुस सीमाको पार कर जायं और अुन्हें आराम ही न लेने दें, तो वे

बिगड़ जाते हैं। अुसी तरह अेक ही प्रकारका तनाव बार-बार अुन पर डाला जाय, तो वे वापस अपनी मूल स्थितिमें नहीं आ सकते। अिसी प्रकार किसी अिन्द्रियका अमुक हद तक अुपयोग किया जाय, तो वह अच्छा काम देती है, और आराम मिलते ही अपनी मूल स्थितिमें आ जाती है। अुस हदको लांघ जाने पर या हमेशा अुस पर तनाव डालनेसे वह निकम्मी हो जाती है और अुसके स्नायु मूल स्थितिमें नहीं आ पाते। अर्थात् कभी पूरा आराम नहीं भोग सकते। नतीजा यह होता है कि वह अिन्द्रिय सदा अतृप्त ही रहती है। अुसे विषयका थोड़ा भी आघात लगते ही वह जाग्रत हो जाती है और अुस दिशामें झुक जाने या खिंच जानेके लिअे हमेशा तैयार रहती है। अेक बार अैसी स्थिति हो जाने पर अुस विषयके अुप-भोगसे दूर रहना अिन्द्रियके लिअे लगभग असंभव हो जाता है। अपनी रसवृत्तिके कारण मनुष्यको अैसा लगता है कि अुस विषयका **भोग** अुसे सुखी बनाता है; परंतु सच पूछा जाय तो जैसे-जैसे वह भोग भोगता जाता है, वैसे-वैसे अुसके स्नायु मूल स्थितिमें आनेके लिअे अयोग्य बनते जाते हैं और अुसे प्रसन्नताका अनुभव करने ही नहीं देते। अुस पदार्थके बारेमें रागात्मक कल्पना होनेके कारण अुसे अैसा आभास होता है कि विषयके संयोगसे अुसे शांति और संतोष मिलता है। यदि किसी विचारसे भोग भोगनेवालेकी कल्पनामें परिवर्तन हो, तो अुसे यह अनुभव होते देर नहीं लगेगी कि अिस विषयके संयोगमें —स्मरणमें— भी सुख नहीं है। अेक बार अेक तरहका अिन्द्रियभोग खूब भोग लेनेके बाद संयमका प्रयत्न करनेवालेको अतिशय कष्ट अुठाना पड़ता है, अुसका यही कारण है। जिस समय वह भोगको बढ़ा रहा था, अुस समय अुसे भोगके बारेमें रागात्मक कल्पना थी। अुस समय अुसने अिस अिन्द्रियके स्नायुओं पर तनाव डालकर अुसे काफी बिगाड़ डाला। अब अुस अिन्द्रियको अुस विषयके स्मरणसे भी अुत्तेजित होनेकी आदत पड़ गअी। अुसके बाद अुसके शरीरनाशक

परिणामोंके कारण या सद्विचार पैदा होनेके कारण अुस विषयमें अुसे दोष दिखाअी देने लगा। अब वह संयमका पालन करना चाहता है। लेकिन अुसकी अिन्द्रियको तो जाग्रत होनेकी आदत पड़ गअी है। अुस जागृतिको रोकनेकी शक्ति वह आसानीसे नहीं प्राप्त कर सकता। वह जागृतिको रोकनेका विचार करता है, तो भी अुसमें विषयका स्मरण होनेसे यह अुपाय अुसे अपाय जैसा मालूम होने लगता है। अिस तरह अब दोषबुद्धि अुत्पन्न होनेसे विषयका अुपभोग भी अुसे सुखी नहीं बनाता, और अिन्द्रियकी मूल स्थितिमें आनेकी असमर्थताके कारण प्रसन्नता भी नहीं पैदा कर सकता। * अिसके फल-स्वरूप अुसका यह काल अत्यन्त मानसिक क्लेशमें व्यतीत होता है। परंतु यदि वह धैर्यके साथ अिस कालको पार कर जाता है, तो अन्तमें विजय अवश्य प्राप्त करता है।

लेकिन अितना धैर्यबल सबके पास नहीं होता। और हो तो भी विचारणीय प्रश्न यह है कि अुसके क्लेशका कारण गलत कल्पनाको सही मानकर विषयके लिअे पोसी हुअी अुसकी रागपूर्ण कल्पना ही होती है। जिस तरह रागपूर्ण कल्पना हानिकारक विषयमें प्रीतिरस पैदा करती है, अुसी तरह द्वेषपूर्ण कल्पना योग्य विषयके प्रति अरुचिकी वृत्ति पैदा करती है। और अुसकी भी आदत पड़ जानेके बाद योग्य विषयको स्वीकारनेका अभ्यास डालनेमें अुतना ही दुःख होता है। अुदाहरणके लिअे, अन्त्यज अछूत हैं, अिस कल्पनाका हमने अितने लंबे समय तक पोषण किया है और अुनके प्रति रहनेवाली अरुचिके हम अितने ज्यादा आदी हो गये हैं कि अब अुस कल्पनाको भूलभरी समझ लेनेके बाद भी अन्त्यजको छूनेमें हमें अनजाने ही संकोचका अनुभव होता है और अिस वृत्तिमें रहे घोर अन्यायका भान

---

* यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
अिन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥ (गीता २–६०)

होने पर अैसी वृत्ति अुत्पन्न होनेका दुःख भी होता है। दूसरा अुदाहरण: मेरे बचपनमें ड्रिल और ड्रिलके साथ हो सकनेवाली कसरत शालामें अनिवार्य थी। लेकिन मुझे स्मरण है कि अुस अुपयोगी और स्वास्थ्य बढ़ानेवाली कसरतके साथ अितना त्रास जोड़ दिया गया था और कसरतका महत्त्व मेरे मन पर बैठाते समय भी अैसे मर्मभेदी कटाक्ष किये जाते थे कि ड्रिल और कसरतके नामसे ही मेरा मन संतापसे भर जाता था। ड्रिल और कसरतके प्रति मेरी अरुचि अितनी ज्यादा बढ़ गअी थी कि बादमें अुनका महत्त्व समझ लेने पर भी अुस अरुचिको मैं पूरी तरह मिटा नहीं सका। और अुनके सुपरिणामोंका अनुभव करने पर भी व्यायाम शुरू करते हुअे पहली वृत्ति संताप या अरुचिकी ही पैदा होती है।

अिस परसे मालूम होगा कि रसवृत्तिके पोषणमें पदार्थकी नैसर्गिक योग्यताकी अपेक्षा समाज द्वारा पोषित कल्पनायें ज्यादा महत्त्वका काम करती हैं। अिससे शुद्ध रसवृत्ति और अशुद्ध रसवृत्तिके बीच भेद करनेकी कुंजी हमें मिल जाती है: वह यह है कि किसी भी पदार्थके बारेमें की हुअी कल्पना ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धिकी विरोधी न हो, तो ही अुससे संबंध रखनेवाला रस शुद्ध माना जा सकता है। सोचनेसे पता चलेगा कि अिन्द्रियोंकी शुद्धि बनाये रखनेके लिअे (१) अिन्द्रियोंका आवश्यक अुपयोग कारणके लिअे ही और संयमपूर्वक किया जाना चाहिये, अथवा विशेष तालीम देनेके लिअे अुनका अुपयोग होना चाहिये; (२) अिन्द्रियोंके विषयोंकी मात्रा तीव्र नहीं होनी चाहिये —यानी अतिशय तीव्र स्वाद, अत्यन्त गहरे रंग, अत्यन्त बारीक या मोटी आवाजें, अत्यन्त तीव्र स्पर्शों या गंधोंका अभ्यास अिन्द्रियोंकी शक्तिको कुंठित कर डालते हैं; (३) किसी भी विषयका रस हमारे स्नायुओं और ज्ञान तंतुओंको विवश बना देने जितना शक्तिमान नहीं होना चाहिये। किसी भी विषयके बारेमें हमारी रसवृत्ति अितनी शुद्ध होनी चाहिये कि आवश्यकता पड़ने पर या अकस्मात् अुसका

अुपभोग कर लेनेके बाद अुसका स्मरण व्यर्थका तनाव न पैदा करे, अुपभोगके समय कुदरती असरसे भिन्न प्रकारका तनाव न पैदा करे और अुस अुपभोगके बाद स्नायु विकृत न रहें। और अिसके लिअे हरअेक विषयके संबंधमें हमारी कल्पना यथार्थ होनी चाहिये। * अिन नियमोंके पालनसे जो स्थूल चिह्न दिखाअी देंगे, अुनमें से कुछ ये हैं: (१) परिमित अुपभोगसे तृप्ति; (२) हर्ष या शोकके स्मरणसे रहित शुद्ध प्रसन्नता; (३) बार बार अुपभोग करनेकी आतुरताका अभाव; (४) शोक या कष्टके बिना विषयका त्याग करनेकी शक्ति; (५) अिन्द्रियोंकी तेजस्विताकी वृद्धि न हो तो भी निश्चित रूपमें स्थिरता।

शुद्धि और रसवृत्तिके बीच दूसरा भेद यह है कि अेक अिन्द्रियकी शुद्धि दूसरी अिन्द्रियकी शुद्धिमें बाधा नहीं डालती। आंखोंको अधिक तालीम देनेसे कानोंके बहरे हो जानेका डर नहीं रहता। लेकिन अेक अिन्द्रियकी लोलुपता दूसरी सारी अिन्द्रियों पर प्राप्त किये हुअे संयमको शिथिल बना देती है।

मनु भगवान कहते हैं:

> अिन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
> तेनास्य क्षरति प्रज्ञा धृतेः पादादिवोदकम्॥

जिस तरह पखालका अेक पांव (मुंह) खुला रह जाय तो अुसके जरिये सारा पानी बह जाता है, अुसी तरह सारी अिन्द्रियोंमें से अेक

---

* अिन्द्रियस्येन्द्रियार्थेषु रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥
(गीता ३–३४)

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥
(गीता २–६४)

भी अिन्द्रिय यदि खुली छोड़ दी जाय तो अुसके जरिये सारी प्रज्ञा-शक्ति वह जाती है।*

स्नायुओंका विश्राम ही यदि प्रसन्नताका कारण हो, तो अैसा लगना संभव है कि सच्चा सुख अिन्द्रियों पर बिलकुल तनाव न पड़ने देनेमें ही है; पहले तनाव पड़ने देना और बादमें विश्राम भोगना यह तो अुलटी रीति कही जायगी। सत्य तो यही है। परंतु जब तक शरीरमें प्राण चलता है, तब तक अिन्द्रियोंका विश्राम अखंडित नहीं रखा जा सकता। और प्राणका चलना कुछ समयके लिअे भले बन्द रखा जाय, परंतु मृत्युके बिना सदाके लिअे बन्द नहीं किया जा सकता। अिसलिअे साधारण जीवनके लिअे तो अिन्द्रियोंकी शक्तिकी और रसकी शुद्धि ही अेकमात्र मार्ग रह जाता है। जिस प्रकार धनकी वृद्धि भी अन्तमें खर्च करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिअे ही होती है, अुसी प्रकार शरीर या अिन्द्रियोंकी शक्तिका संचय भी अन्तमें खर्च कर डालनेके लिअे ही है। लेकिन जैसे अिकट्ठे किये हुअे धनका भोग-विलासमें किया हुआ खर्च अुचित नहीं माना जा सकता, बल्कि अुसकी किफा-यतशारी ही सद्‌गुण मानी जायगी, वैसे ही अिन्द्रियोंके बारेमें भी कहा जा सकता है। संचय और किफायतशारी सद्‌गुण हैं और व्यय

---

* अिन्द्रियोंकी शुद्धि और रसवृत्तिके मार्मिक अुदाहरणके रूपमें श्री काकासाहब कालेलकरने पृथ्वीराज चौहानका दृष्टान्त अेक वर्गमें दिया था। पृथ्वीराजकी कर्णेन्द्रिय अत्यन्त शुद्ध और अत्यन्त रसिक भी थी। अपनी गान-तानकी लोलुपताके कारण राजकार्यके प्रति अुसकी रुचि नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि अुसने राजपाट सब खो दिया और देश पर विदेशी सत्ता स्थापित करा दी। लेकिन कर्णेन्द्रियकी अुसी शुद्धिसे अुसने अन्धा हो जानेके बाद भी (दंतकथाके अनुसार) शत्रुका नाश किया। यदि अुसने कर्णेन्द्रियकी रसवृत्तिको संयममें रखा होता तो!

विनाशक है। फिर भी जिस तरह सत्कार्यके लिअे किया जानेवाला सारे धनका त्याग दुर्गुण नहीं बल्कि सद्गुण है, अुसी तरह दूसरोंका दु:ख दूर करनेके लिअे या दूसरी किसी जरूरी सेवाके लिअे अिन्द्रियोंकी सारी शक्तियां खर्च हो जायं, तो वह दुर्गुण नहीं बल्कि बड़ा सद्-गुण ही माना जायगा। और अैसे कार्यके लिअे अुपयोगी हो सकें अिस ढंगसे बढ़ाये हुअे तीव्र रस——मृत्युके समीप ले जानेवाले हों तो भी——न केवल शुद्ध ही माने जायंगे, बल्कि अशुद्ध रसोंमें से पीछे लौटनेके लिअे अुपयोगी साधन भी माने जायेंगे। दया, करुणा, सहानुभूति, शौर्य आदि रस अैसे ही हैं।

यदि यह विचार-परंपरा ठीक हो, तो माता-पिता, शिक्षक, मित्र, नैता वगैरा जो कुछ कहते या सिखाते हैं, अुससे जनतामें किस प्रकारकी और कितने तीव्र रूपमें कल्पनायें और भावनायें पैदा होती हैं और बढ़ती हैं, अिसका विचार करनेकी अुन पर भारी जिम्मेदारी आती है। अिन्द्रियोंकी तालीमके नाम पर, रसवृत्तिके विकासके नाम पर, कलाकी वृद्धिके नाम पर या किसी दूसरे रूपमें हम विश्वकी सजीव-निर्जीव सृष्टिके प्रति किस तरहके रागद्वेष पैदा करते हैं, और अुसके फल-स्वरूप जनताकी कितनी सेवा करते हैं अथवा स्वयं अपनी कितनी अुन्नति साधते हैं, अिसका जितना विचार करें अुतना थोड़ा ही है। जिन विषयों या विचारोंकी तरफ अिन्द्रियोंकी दौड़ दूसरोंका हित सिद्ध किये बिना केवल हमारा नाश करनेवाली है, अुन विषयों या विचारोंमें चाहे जितनी करामात या तार्किक सूक्ष्मता हो, फिर भी वह अशुद्ध रस है। सब कुछ गलत या अनुचित ही होता है, अैसा मेरा कहनेका आशय नहीं; न मैं यही मानता हूं कि सब कुछ अुचित ही होता है। मेरा कहना तो अितना ही है कि जिस दृष्टिसे मैंने अिसका विचार किया है, अुस दृष्टिसे अिन्द्रियोंकी तालीमका, रस-विकासका या कलावृत्तिका शायद विचार नहीं किया गया है। क्योंकि मुझे लगता है कि यह दृष्टि यदि भलीभांति समझी और स्वीकारी

जाय, तो हमारी शालाओंमें पढ़ाओी जानेवाली पुस्तकोंके अनेक पाठों, अभ्यासक्रमों, संमेलनों, अुत्सवों आदिकी योजनामें असाधारण या क्रान्तिकारी परिवर्तन करने पड़ेंगे। अपनी शक्तिके अनुसार मैंने यह दृष्टि प्रस्तुत करनेका नम्र प्रयत्न किया है।

८

कल्पनाशक्तिकी तालीम

बालककी मानसिक तालीममें कल्पनाशक्तिकी तालीम अेक बड़े महत्त्वका विषय है। टॉल्स्टॉयको अपने विद्यार्थियोंकी कल्पनाशक्ति बढ़ानेमें बड़ा आनन्द आता था। शिक्षाके बहुतसे विषय अैसे हैं कि जिनमें कल्पनाशक्तिके योग्य विकासके बिना अधिक प्रगति नहीं की जा सकती।

लेकिन कल्पनाशक्ति तीन प्रकारकी है: सर्जक, समाधानकारक और अनुभवशोधक।

कवियों, अुपन्यासकारों वगैराकी कल्पनाशक्ति सर्जक होती है। वे अनुभव न की हुआी बातोंकी कल्पना करते हैं, या अनुभव की हुआी अनेक बातोंका अेक-दूसरेके साथ अैसा मिश्रण करते हैं कि वे न अनुभव की हुआी जैसी ही बन जाती हैं। शिक्षक जब बालकोंको कहानी कहने लगता है, तब सर्जक कल्पनाका ही सहारा लेता है। अिस सर्जक कल्पनामें चातुर्य काफी हो सकता है; अुसमें चमत्कारके जैसा आश्चर्य अुत्पन्न किया जा सकता है; अुसमें विविध रस अुत्पन्न किये जा सकते हैं। और अिसलिअे अैसी कल्पनाओंमें बिताया हुआ समय आनन्ददायक मालूम होता है।

गंभीर विचारोंको साधारण मनुष्योंकी बुद्धि आसानीसे समझ नहीं सकती। अमूर्त (निराकार) भावोंको किसी तरहके दृष्टान्तों द्वारा मूर्त (साकार) बनाये बिना साधारण मनुष्य अुन्हें समझ नहीं

सकते। यदि हम किसीको सत्यकी महिमा 'विदुरनीति' जैसे ग्रन्थके श्लोकों द्वारा समझायें, तो वह अुसे झट समझ नहीं सकता। और समझ नहीं सकता, असिलिअे जहां अुस विषयका विवेचन चलता है, वहां वह सो जाता है। परंतु यदि कड़ीसे कड़ी कसौटीके समय भी सत्यका पालन करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रकी कहानी द्वारा सत्यकी महिमा समझाअी जाय, तो सत्यके आदर्शका चित्र साधारण मनुष्यके हृदय पर भी अच्छी तरह अंकित हो सकता है।

अिस कारणसे प्रत्येक धर्ममें और प्रत्येक राष्ट्रमें सर्जक कल्पनाका बहुत ज्यादा सहारा लिया गया है। चतुर कवियोंने खुदको अच्छे लगनेवाले भावोंको अनेक प्रकारकी कहानियोंमें गूंथकर लोगोंको समझाया है। लोककथाओं, पौराणिक कथाओंके कुछ भागों, देवादिके स्वरूपों, वृत्तांतों, काव्यों, हितोपदेश, अीसप-नीतिसे लेकर आजके जमानेके अुपन्यासों तकका साहित्य सर्जक कल्पनाके ही स्वरूपका है।

अिस तरह सर्जक कल्पनाने मनुष्यकी शिक्षामें बहुत बड़ा भाग लिया है, अैसा कहा जा सकता है। और लोगोंने सर्जक कल्पना-कारोंका अनेक प्रकारसे आदर भी किया है।

फिर भी, सर्जक कल्पनाके विकासको मैं तालीमका आवश्यक अंग नहीं मानता। मुझे अिस विषयमें शंका है कि बालकको तालीम देनेमें सर्जक कल्पनाका आधार लेना अुचित है या नहीं। श्री गिजु-भाअी कहते हैं कि डॉ० मॉन्टेसोरी भी काल्पनिक वार्ताओंकी विरोधी हैं, और स्माअिल्स भी अपनी 'कर्तव्य' (Duty) नामक पुस्तकमें करुणा, दया आदिके कोमल भाव पैदा करनेवाली होने पर भी काल्पनिक वार्ताओंकी निन्दा करनेवाला शार्पका अेक वाक्य अुद्धृत करते हैं।* यहां मैंने सावधानता-सूचक 'शंका' शब्दका अुपयोग नहीं

---

* शार्प कहता है कि, "करुण रस पैदा करनेवाली काल्पनिक कथाओंके विषयमें बड़ीसे बड़ी आपत्ति यह है कि अुनसे दयाकी या

किया होता; लेकिन टॉल्स्टॉय और गिजुभाअी जैसे समर्थ शिक्षक अिसका समर्थन करते हैं, अिसलिअे अिस बारेमें अधिक विचार जाननेकी मैं छूट रखता हूं।

सर्जक कल्पनाके लिअे मेरी मुख्य आपत्ति यह है कि वह असत्यके कलंकसे दूषित है। अवलोकन और अनुभवसे अैसा मालूम होता है कि सर्जक कल्पनाअें करनेकी और सुननेकी वृत्ति करनेवाले और सुननेवाले दोनोंको असत्यकी ओर ले जाती है और दोनोंको धोखा देती है। वह कविको किसी भी भूमिका पर स्थिर नहीं होने देती। और वह श्रोताके मनमें या तो अैसा भ्रम अुत्पन्न करती है कि अिस कहानीमें अैतिहासिक सत्य है, अथवा वह झूठी है अैसा जान लेने पर भी श्रोता अुसमें से अपने व्यवहारके लिअे कुंजीरूप बन सकनेवाला अुपदेश नहीं ग्रहण करता। अिस तरह वह कहानी बेकार जाती है।

अिसके अुदाहरण लीजिये :

अगर चिड़ा-चिड़ीकी कहानीको बालक सच्ची मानता है, तो भ्रममें रहता है। यह भ्रम थोड़े समय बाद भले मिट जानेवाला हो, परंतु अेक क्षणके लिअे भी असत्य ज्ञान देना -- यानी अज्ञान देना — ज्ञानदाता शिक्षकका धर्म नहीं है। अिसका कारण स्पष्ट है। बालक चिड़ा-चिड़ीकी अमुक वार्ताको असत्य रूपमें परखना सीख जाय, तो भी संभव है भ्रममें रहनेकी आदत दूसरी किसी जगह अपना काम करे। शायद योगवासिष्ठ पढ़ते समय किसी चिरंजीवी काकभुशुंडीकी वार्ताओंमें या संन्यासीके स्वप्नोंकी वार्ताओंमें सचाअीकी श्रद्धा रहे — यानी वे भी सर्जक कल्पना ही हैं अैसा पहचान न सके।

अन्यायके प्रति द्वेष करनेकी निकम्मी भावना पैदा होती है। यह भावना निकम्मी अिसलिअे है कि अुसके साथ भावना रखनेवालेमें दुःख या अन्याय दूर करनेका पुरुषार्थ पैदा नहीं होता।" सात्त्विक भाव पैदा होकर जहांका वहां शान्त हो जाता है और चित्तमें केवल अेक प्रकारका खेद ही रह जाता है।

पुराणोंमें कअी स्थानों पर यह साफ साफ कहा भी गया है कि सरस्वती, गणपति, विष्णु, विराट अित्यादि देवताओंके स्वरूप अमुक भावोंको स्थिर बनानेके लिअे की गअी सर्जक कल्पनायें हैं। फिर भी, न केवल साधारण लोगोंमें बल्कि विद्वानोंमें भी अिस मान्यताने जड़ जमा ली है कि पुराणोंकी कथाओंमें प्राचीन कालका अितिहास है। अिसलिअे वह अेक सर्जक कल्पना ही है, यह वचन भुला दिया जाता है और कल्पनाका मोहक रूप श्रोताके मन पर स्थायी असर डालता है। लोगोंमें भ्रम, पराधीन बुद्धि, अन्धविश्वास और अज्ञान कायम रखनेमें अैसी कथायें कारण बनती हैं।

दूसरी तरफ, ये वार्ताअें काल्पनिक हैं अैसा ज्ञान होने पर अुनमें की सारी वस्तुको छोड़ देनेकी वृत्ति पैदा होती है। चिड़ा-चिड़ीकी वार्ता झूठी है, अैसा जाननेके बाद यह अुपदेश कौनसा बालक लेता है कि 'झूठ नहीं बोलना चाहिये'? अिसलिअे वार्ता कहनेका हेतु निष्फल जाता है। केवल मनोरंजन ही अुसका अेकमात्र हेतु रह जाता है।

स्वयं कविके लिअे भी यह वृत्ति कुल मिलाकर धोखा देनेवाली ही सिद्ध होती है। सर्जक कल्पनाकी जबरदस्त बाढ़ आने पर कवि भले विश्वव्यापी प्रेमका गीत रचे, सत्यकी पराकाष्ठा दिखानेवाले पात्र चित्रित करे, दयाकी अूंचीसे अूंची भूमिकाका अुदाहरण पेश करे, मूर्तिमन्त क्रूरताका दर्शन करावे, यह सिद्ध करे कि अनीति और अन्यायसे विनाश होता है और सत्यकी जय होती है, या यह गावे कि सारा जगत् अीश्वरमय है। यह सब रचते समय कवि कमसे कम थोड़े समयके लिअे तो अिन सब अुदात्त भावोंके साथ तद्रूप हो जाता है। परंतु यदि वह कविके साथ साधक भी हो, तो अुसे यह भी लग सकता है कि अब तो मैं विश्वप्रेमी हो गया हूं, सत्य और दयाकी अूंचीसे अूंची दशाको मैंने प्राप्त कर लिया है, मैं नीतिका पुजारी और अनीतिका शत्रु हूं, मैं सारे जगत्को अीश्वररूप देखता हूं — आदि आदि। सच पूछा जाय तो कवि थोड़े समयके लिअे

ही अिन अुदात्त भावोंके साथ तद्रूप होता है, और अुन भावोंका आवेग अुतरते ही पुनः साधारण मनुष्य बन जाता है। लेकिन अिस कल्पनाकी बाढ़के समय वह जो खुमारी और मस्ती अनुभव करता है, अुसके कारण वह दूसरोंमें थोड़ी मात्रामें परंतु वास्तवमें रहनेवाले प्रेम, सत्य, दया आदि भावोंका मजाक करनेके लिअे भी ललचाता है। यह मस्ती, जैसा कि पहले दी गअी अेक टिप्पणीमें अुद्धृत शार्पके वाक्यमें बताया गया है, केवल पुरुषार्थहीन और निकम्मी होती है।

अिसके अलावा, अनेक पाठक भी अिससे धोखा खाते हैं। क्योंकि वे मान लेते हैं कि लेखक खुद अपने चित्रित किये हुअे भावोंमें स्थिर हो गया होगा।

'दूधका जला छांछको भी फूंककर पीता है', अिस कहावतके अनुसार मैं अिस बारेमें अत्यन्त कड़ी परीक्षा करनेकी वृत्तिवाला बन गया हूं। बहुतसी अच्छी और हितकारी बातें समझानेके लिअे भी अैसी कल्पनायें सामने रखनेकी मेरी अिच्छा नहीं होती, जो थोड़ी भी असत्य या भ्रममें डालनेवाली हों या बादमें जिनका निषेध करना पड़े। पहले अैसी भ्रामक कल्पनाओंका पोषण करना और बादमें अुनका निषेध करना, यह द्राविड़ी प्राणायाम जितना रुके अुतना ही अच्छा है।

श्री रामनारायण पाठक*ने थोड़े दिन पहले महाविद्यालयके विद्यार्थियोंके सामने अेक बड़ी सत्य बात कही थी: जब मुझमें वृत्तिके अनुसार आचरण करनेका पुरुषार्थ कम हो जाता है, तब मैं कल्पनाके क्षेत्रमें विहार करने लगता हूं। जब मैं आचरणमें विश्वप्रेम नहीं बता सकता, तब विश्वप्रेमका गीत रचता हूं। वीरता नहीं बता सकता, तब वीररसके काव्यकी रचना करता हूं। राज्यका मंत्री नहीं बन सकता, तब राज्य कैसे चलाना, अिसके बारेमें अुपन्यास लिखता हूं। आदर्शों पर पूरा अमल नहीं कर सकता, तब आदर्शका चित्रण करता हूं।

* स्व. रामनारायण विश्वनाथ पाठक, गुजरातके समर्थ विवेचक, कहानीकार, कवि, हास्यलेखक और पिंगलकार।

अेक साखीमें भी कहा गया है कि क्षत्रियोंमें वीरता पैदा करनेवाले और अुन्हें जोश चढ़ानेवाले चारण रणक्षेत्रसे भागनेमें सबसे पहले होते हैं।

लेकिन अिसका यह अर्थ नहीं कि कल्पनाशक्तिकी देन चित्तको व्यर्थ मिली है। तीव्र कल्पनाशक्तिके अभावमें अनेक कर्तव्योंका पालन नहीं हो सकता, भावनायें जाग्रत नहीं हो सकतीं, नअी खोजोंमें बुद्धि नहीं चल सकती और स्मृति शुद्ध नहीं हो सकती।

समाधानकारक कल्पना अैसी ही अेक अुपयोगी कल्पनाशक्ति है। जगत्में अैसे कअी अनुभव हमें होते हैं, जिनका स्पष्टीकरण अिन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष रूपमें हमें नहीं मिलता। तेजका स्वरूप क्या है, बिजलीका स्वरूप क्या है, जगत्में मालूम होनेवाली विषमताका कारण क्या है, वगैरा विज्ञान और तत्त्वज्ञानसे संबंध रखनेवाले अनेक प्रश्नोंका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें नहीं मिलता, या लंबे समय तक नहीं मिल पाता। जब तक प्रत्यक्ष प्रमाण न मिले, तब तक अिन प्रश्नोंके प्रति हमसे अुदासीन भी नहीं रहा जा सकता। बुद्धिको किसी भी तरहका स्पष्टीकरण तो चाहिये ही। अिसलिअे मनुष्य अलग-अलग समझमें आने लायक कल्पनायें करता है। अिन्हें वाद (Theory, Hypothesis) कहते हैं। विकासवाद, पुनर्जन्मवाद, मायावाद, अणुवाद, तरंगवाद (Theory of Vibrations) वगैरा विज्ञान या तत्त्वज्ञानसे संबंध रखनेवाले प्रत्येक शास्त्रमें पाये जानेवाले वाद प्रत्यक्ष परिणामोंके अप्रत्यक्ष कारणोंकी कल्पनायें ही हैं। विशेष अनुभव प्राप्त करनेके लिअे तथा अनुभवसिद्ध स्पष्टीकरण न मिलने तक बुद्धिकी भूख मिटानेके लिअे अैसी कल्पनायें पैदा होती हैं। अिस कल्पनाका स्वरूप भी सर्जक ही है; अथवा अैसा कहें तो भी चल सकता है कि अूपर बताअी हुअी सर्जक कल्पनाकी यह जननी है। लेकिन अिस कल्पनाका अुपयोग और अुद्देश्य सर्जक कल्पनासे भिन्न है। और दूसरी तरफ अिसका संबंध अनुभवशोधक कल्पनाके साथ है, अिसलिअे अिसकी अलगसे गिनती करना ठीक होगा।

अिस तरहकी कल्पनाका अंतिम ध्येय सत्यकी शोध है। यह दूसरे क्षेत्रोंके अनुभवोंसे अुत्पन्न होती है। आकाशमें बिजलीके साथ हुआी गर्जना हमें कुछ क्षण बाद सुनाआी देती है। लेकिन आवाज सुनाआी देनेका मतलब यह नहीं होता कि आकाशमें से बारीक रज जैसी चीजके हमारे कानमें आकर घुसनेका अनुभव हमें होता है। आवाज अमुक गतिसे आगे बढ़ती है, यह भी जब हमने प्रयोग द्वारा खोज निकाला, तब सवाल अुठा: अिस तरह अेक जगह होनेवाली आवाजके अमुक गतिसे दूसरी जगह पहुंचनेका कारण क्या है? — अिसकी हमें खोज करनी है। किस तरहके प्रयत्नसे हम यह खोज कर सकते हैं? आवाजकी गतिका कारण अमुक वस्तु हो, तो अुसे हम प्रत्यक्ष देख नहीं सकते। वह अमुक गतिका अनुभव हो, तो अुस गतिको भी हम अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष देख नहीं सकते। तब क्या हमने अैसी कोआी गति आंखोंसे देखी है, जिसकी अुपमा आवाजकी गतिको दी जा सके? अिस तरह सोचते-सोचते विज्ञानशास्त्री जगत्‌की सारी स्थूल गतियोंकी जांच करता है और अैसा लगता है कि पानीकी तरंगकी चालमें अुसे आवाजकी चालकी अुपमा मिल जाती है। अुस परसे वह कल्पना करता है कि अेक स्थान पर दो चीजोंके टकरानेसे हवामें किसी तरहकी तरंगें फैलती होंगी। बादमें अिस कल्पनाके आधार पर वह आवाजके बारेमें ज्यादा अध्ययन करता है और सोचता है कि यह कल्पना यदि सही हो तो क्या परिणाम आने चाहिये, और यह निरीक्षण करता है कि वैसे परिणाम सचमुच आते हैं या नहीं। अुसमें होनेवाले अनुभवके आधार पर वह अिस कल्पनाके स्वरूपमें परिवर्तन करता है और अपनी खोजको आगे बढ़ाता है। अनेक देवोंमें से दैवी संपत्ति और आसुरी संपत्तिके अधिष्ठाता दो देवोंकी और अुनमें से अेक देवकी, अनेक तत्त्वोंमें से दो तत्त्वोंकी और अुसमें से अेक तत्त्वकी, नियतिमें से कर्मफलकी — अिस तरह विचार-सरणियोंका आधार लेकर अुनका अनुभव करता हुआ, अनुभवको समझानेके लिअे कल्पना

करता हुआ, कल्पनाके आधार पर पुनः शोध करता हुआ और अुसमें से फिर नअी कल्पनायें करता हुआ मनुष्य विज्ञानशास्त्र और तत्त्व-ज्ञानमें आगे बढ़ा है।

अिस तरहकी समाधानके लिअे की गअी कल्पनामें से ही सर्जक कल्पनाकी अुत्पत्ति हुअी है। लंबे समय तक टिकी हुअी किसी समाधानकारक कल्पनाको जब हम साधारण जनोंको समझानेके लिअे अधिक मूर्त स्वरूप देना चाहते हैं और अिस कारणसे अुसका विस्तार करते हैं, तब वह सर्जक कल्पनाका रूप लेती है। अुदाहरणके लिअे, शीतलाके अुपद्रवको समझानेके लिअे किसी आसुरी देवीकी कल्पना की जाय और बादमें अुस कल्पनाको सर्वमान्य बनानेके लिअे अुसकी कहानियां रची जायं। *

अब तीसरे प्रकारकी कल्पनाका विचार करें।

अुसके कुछ अुदाहरण लें।

चीन, मलबार, हरिद्वार वगैरा जगहोंमें जलप्रलय हुआ, जापानमें भूकम्प हुआ, लड़ाअीमें लाखों मनुष्योंका संहार हुआ; अिन सारी घटनाओंके साक्षी बननेका मौका कुछ ही लोगोंको मिला। ये घटनायें अैसी हैं, जिनमें सुरक्षित रही सारी जनताका विपत्तिमें पड़ी हुअी जनताकी सहायता करना जरूरी माना जायगा। यह सहायता करनेकी वृत्ति कैसे पैदा हो और किसमें पैदा हो? जिसकी कल्पनाशक्ति अुस भयंकर बाढ़को, अुस भूकम्पसे पैदा होनेवाली

---

* डार्विनके विकासवादको समझानेके लिअे 'Before Adam' नामका अुपन्यास आधुनिक कालका अैसा अेक पुराण कहा जा सकता है।

यह समाधानकारक कल्पनाशक्तिका दुरुपयोग है। अिससे यह मान्यता बनती है कि अब तककी विकासवादकी कल्पनामें कुछ घटाने-बढ़ानेकी जरूरत ही नहीं है। अैसी मान्यता बादमें सत्यकी शोध और प्रचारमें बाधक सिद्ध होती है।

नगरव्यापी आगको और लड़ाअीके भयानक दृश्यको अपनी दृष्टिके सामने चित्रित कर सकती है, वही अैसे समय अपने पर आनेवाली जिम्मेदारीको भलीभांति समझ सकता है। पानीमें बह जानेका क्या अर्थ है, घरबार बरबाद हो जानेका, अुसके भस्म हो जानेका, अुसके मलबेमें दब जानेका, धुअेंमें दम घुटनेका, लड़ाअीमें गोली लगनेका, हाथ-पांवके टूट या कटकर अलग हो जानेका, बच्चोंका अपने माता-पितासे जुदा पड़ जानेका, शरीर पर केवल पहने हुअे कपड़ोंके साथ अपनी रक्षाके लिअे जहां भागा जा सके वहां भाग जानेका क्या अर्थ होता है — अिन सब बातोंका और अिनमें रहे दुःख-दर्दका चित्रण न कर सके, अैसी मन्द जिस मनुष्यकी कल्पनाशक्ति है, अुसे ये सब समाचार सुनकर अपने सिर कोअी जिम्मेदारी आ पड़नेका भान नहीं हो सकता। भावना और कर्तव्यबुद्धि जाग्रत होनेके लिअे कल्पनासे अिस दृश्यका अनुभव करनेकी अुसमें शक्ति होनी चाहिये।

बहुत बार हम लोगोंको अुनकी निर्दयताके लिअे दोष देते हैं; न सिर्फ दूसरोंकी वेदनासे अुनके हृदयके तार नहीं हिलते, बल्कि अुससे वे अुलटे आनन्द मनाते दिखाअी देते हैं। गहरी छानबीनसे मालूम होगा कि अैसे लोगोंकी कल्पनाशक्ति ही बहुत मन्द होती है। आंख फोड़नेसे क्या होता है, पांव लंगड़ा होनेसे कैसी वेदना होती है, दाढ़ दुखनेसे कैसा अनुभव होता है, भुखमरीका क्या अर्थ है — अिसका वे कल्पनासे अनुभव नहीं कर सकते। और वेदना भोगनेवाला जब कराहता या चिल्लाता है, तब दया अनुभव करनेके बजाय वे अुससे अूब जाते हैं; अथवा लंगड़े या अंधे मनुष्यके असाधारण व्यवहारसे अुन्हें आश्चर्य और आनन्द होता है।

अिसी तरह विज्ञानशास्त्रोंकी विविध शाखायें कल्पनाशक्तिके अभावमें आगे नहीं बढ़ सकतीं। विद्यार्थीको जोड़की संख्यायें सीधी तरह लिखानेसे वह तुरन्त अुसका अुत्तर निकाल लेता है। लेकिन अुन्हीं संख्याओंको अितने आम, अितने जामुन वगैरा पेचीदा तरीकेसे

लिखाया जाय, तो वह अुलझनमें पड़ जाता है। अिसका कारण यह है कि व्यवहारोंके निगाहके सामने होनेकी कल्पना करनेकी अुसमें शक्ति नहीं होती। कितने ही विद्यार्थी भूमिति (ज्यॉमेट्री) के सिद्धान्तोंको पुस्तकमें दिये हुअे तरीकेसे अच्छी तरह सिद्ध कर बताते हैं; लेकिन अुन परसे निकलनेवाले अुपसिद्धान्तोंको सिद्ध करके नहीं बता सकते। वे बीजगणित या त्रिकोणगणित (Trigonometry) के गुरुसूत्रों (formulae) को सिद्ध कर सकते हैं, लेकिन व्यावहारिक गणितमें अुनका अुपयोग नहीं कर सकते। अिस सबका कारण यही है कि अुन सिद्धान्तों और गुरुसूत्रोंके पीछे रहे सत्य व्यवहारोंकी वे कल्पना नहीं कर सकते। वे सिद्धान्त और गुरुसूत्र अुन्हें केवल तार्किक कसरत जैसे लगते हैं, और परीक्षामें पास हुअे बिना काम चल नहीं सकता, अैसा सोचकर वे अुतनी रटाअी करके किसी तरह गाड़ी आगे बढ़ाते हैं।

लेकिन अिस सारी कल्पनाशक्तिके पीछे जिस मानसिक शक्तिका अुपयोग होता है अुसमें और अूपर बताअी हुअी सर्जक कल्पनामें भेद है। अिस कल्पनाशक्तिका अर्थ केवल अनुभवको तीव्रतासे जाग्रत करने-वाली और अुसका विस्तार (magnification) करनेवाली शक्ति है। स्पष्ट स्मृति और अिस अनुभवमूलक कल्पनाशक्तिमें थोड़ा ही भेद है।

देखी हुअी चीजकी हूबहू तस्वीर, सुनी हुअी आवाज मानो फिरसे सुन रहे हों अैसी भनक, खाअी हुअी चीज मानो अिस क्षण भी हमारे मुंहमें हो अैसी धारणा — अिन सबको यथार्थ कल्पना भी कहा जा सकता है और स्पष्ट स्मृति भी कहा जा सकता है। केवल अनुभव किये हुअे विषयकी और अनुभव जितनी ही कल्पना स्मृति कही जायगी। अैसी स्पष्ट स्मृति सात्त्विकता हो तभी होती है, और अिसका जितना विकास हो अुतना ही अच्छा है। किसी बालकको अेक नअी चीज दिखाअी जाय, वह अुसका भलीभांति अवलोकन कर

ले और फिर जब अुस चीजको वहांसे हटा दिया जाय, तब अुसे अैसा लगे मानो अुस चीजको वह अपनी नजरके सामने देख रहा है, तो अुसकी यह स्मृति अुपयोगी शक्ति मानी जायगी। अैसी स्मृति अनेकावधानमें (अनेक विषयोंको अेक साथ याद रखनेमें) और अेकाग्रतामें अुपयोगी होती है। अैसी स्मृतिके बिना चित्रकारका काम नहीं चल सकता।

अिसी स्मृतिका थोड़ा विस्तार या संकोच किया जाय, तो वह अनुभवशोधक कल्पनाशक्ति हो जाती है। अेक अकाल पीड़ित मनुष्य या पशुके अनुभव परसे अैसे सैकड़ों मनुष्यों या पशुओंकी कल्पना होना; थोड़ी वेदनाके अनुभव परसे अुसी प्रकारकी तीव्र वेदनाकी कल्पना होना भी मनुष्यके अेक-दूसरेके सुख-दुःखमें सहानुभूतिपूर्वक भाग लेनेके लिअे जरूरी है।

यह भी अेक तरहकी सर्जक कल्पना ही है। लेकिन अिसका अुपयोग केवल कानोंसे सुनी हुअी सच्ची घटनाओंका अच्छी तरह भान होनेके लिअे है।

अेक तरहसे तो सर्जक कल्पना भी अनुभवमूलक कही जा सकती है; क्योंकि अन्तमें तो विचारमात्रका आधार अनुभव ही होता है। लेकिन अिसमें पहले अेक अनुभवशोधक कल्पनाका विस्तार किया जाता है; बादमें दूसरी अनुभवशोधक कल्पना ली जाती है। फिर दोनोंके बीच कुछ संबंध जोड़नेका प्रयत्न किया जाता है। अिसलिअे अनेक अलग अलग सत्य स्मरणोंको असत्यकी डोरीमें गूंथ दिया जाता है। अिस तरह किसी घटी हुअी घटनाको पहचाननेके लिअे नहीं, बल्कि अनुभवशोधक कल्पनाओंका मिश्रण करके मनोरंजनके लिअे अेक खेल खेला जाता है। यह खेल चित्तको अेक प्रकारकी कसरत देता है। जिस हद तक ताशपत्तोंका खेल या चौपड़का खेल अुपयोगी माना जा सकता है, अुसी हद तक अिस खेलका कल्पना करनेवालेके लिअे अुपयोग हो सकता है। लेकिन जिस तरह ताश या चौपड़के खेलमें

फुरसतवाला आदमी ही ज्यादा समय दे सकता है, अुसी तरह अिसमें भी समझना चाहिये। अलबत्ता, ताश या चौपड़ खेलनेवालेको समाज पैसा नहीं देता। लेकिन चूंकि अैसी सर्जक कल्पनाओंसे दूसरे लोगोंका भी कुछ मनोरंजन हो सकता है, अिसलिअे अिसमें कुछ धन भी मिल सकता है। लेकिन मनुष्यत्वके विकासकी दृष्टिसे अिसकी कीमत बहुत ज्यादा नहीं मानी जा सकती।

टिप्पणी – १

श्री गिजुभाअीने अेक चर्चामें काल्पनिक वार्ताओंके पक्षमें तीन मुद्दे पेश किये थे:

पहला मुद्दा यह कि विकासशास्त्र द्वारा निश्चित किये हुअे सिद्धान्तोंके अनुसार बालक अपने पूर्वजोंकी आदिअवस्थाका प्रतिनिधि है। अेक बार जिस स्थितिमें मानव-समाजके बड़ी अुमरके मनुष्य भी थे, अुसी स्थितिमें आज बालक है। मानव-समाजकी आदिअवस्थामें मनुष्य कल्पनावश थे। वे जानवरोंको मनुष्यों जैसी बोलनेकी शक्तिवाले मानते थे। कुदरती घटनाओंके बारेमें मानते थे कि वे अुनके पीछे रहे देवताओंकी अिच्छासे होती हैं। बालक भी अिसी अवस्थामें होता है। बालक लकड़ीकी गुड़िया या लकड़ीकी चिड़ियाको लकड़ी नहीं मानता; वह अुसके साथ बातें करता है, अुसे प्यार करता है, धमकाता है और अुसके साथ अैसा बरताव करता है मानो वह अुसके जैसा मनुष्य हो। आगे चलकर वह अपने-आप अिस स्थितिमें से बाहर निकल जाता है। फिर वह दूसरे प्रकारकी सृष्टिमें मग्न होता है। अिस कालमें अुसे पराक्रम, चालाकी वगैरासे भरी हुअी कथा-कहानियों और साहसपूर्ण कार्योंमें मजा आता है। क्योंकि मानव-जाति आदि-अवस्थामें से निकलनेके बाद अैसी अवस्थामें से गुजरी थी। अिस कालमें नैतिक विचारोंका अुसके जीवनमें प्रधान स्थान नहीं होता। बल्कि

तेज — ओजकी प्रधानता होती है। अिसके बाद शृंगार अुसके चित्तको आकर्षित करता है। अित्यादि।

अिस कारणसे बालकको अुसकी योग्यताके अनुकूल खुराकसे दूर रखना अुचित नहीं। बालककी जितनी योग्यता होती है, अुससे अूंचीं बातें अुसके साथ करनेसे वह अुनमें कोअी रस नहीं ले सकता। और अपनी योग्यताके अनुसार वस्तु प्राप्त करनेके लिअे आड़े-टेढ़े रास्ते अपनानेका प्रयत्न करता है। अिससे वह नुकसान भी अुठाता है।

मैं स्वीकार करता हूं कि यह दलील सोचने जैसी है। अिस विषयमें अधिक विचार जाननेकी छूट मैं रखता हूं, अैसा मैं अूपर कह चुका हूं। अिसलिअे यदि मुझे अपने विचारोंमें परिवर्तन करना पड़े, तो वैसा करनेमें मुझे कोअी संकोच नहीं होगा।

परंतु जैसा कि आगे आनेवाले विकासवाद संबंधी लेखोंमें मैंने बताया है, अिस दलीलमें विकासके सिद्धान्तका अेकतरफा अवलोकन है। बालकके शारीरिक विकासका क्रम जांचनेसे मालूम होगा कि वह पहले निराधार स्थितिमें जमीन पर पड़ा रहता है, फिर करवट लेना सीखता है, बादमें बैठना, फिर घुटने चलना, फिर खड़ा होना, फिर मदद लेकर चलना और अन्तमें बिना किसीकी मददसे स्वतंत्र रूपसे चलना सीखता है। यह सच है कि हर बालकको अिन सब हालतोंमें से गुजरना जरूरी होता है। किन्तु यदि बालक नीरोग बना रहे और बढ़ता जाय, तो अिन सारी हालतोंमें से अपने-आप वह आगे बढ़ेगा। यदि माता-पिता अिस क्रममें कुछ हस्तक्षेप करें तो अितना ही कि वे अुसे अूपरकी भूमिकामें ले जानेका और निचली भूमिकामें यथासंभव कम समय रखनेका प्रयत्न करेंगे। बच्चेके पैदा होनेके दूसरे ही महीने माता-पिता अधीर होकर अुसकी करवट बदलनेकी जल्दी नहीं करेंगे। लेकिन कोअी मजबूत बालक अगर दूसरे महीनेमें अैसा प्रयत्न करने लगे, तो माता-पिता अुसके लिअे वैसी अनुकूलता कर देंगे — अुसे रोकेंगे नहीं। बालक खड़ा होनेका प्रयत्न करे तो माता-

पिता तुरन्त अुसे अैसा करनेमें मदद करेंगे, रोकेंगे नहीं। माता-पिताकी अिच्छा रहेगी कि बालक निचली दशामें कमसे कम समय रहे।

फिर, बहुतेरे बच्चे जीवनमें अेक समय मिट्टीमें खेलने और मिट्टी खानेकी स्थितिमें से गुजरते हैं। लेकिन कोअी माता-पिता अुनके लिअे मिट्टी खानेकी सुविधा नहीं कर देते। अुलटे, वे यही चिन्ता रखते हैं कि अुनका बच्चा अिस स्थितिमें से झट निकल जाय।

यही नियम मानसिक विकास पर भी लागू होता है। बालक भले पक्षियों और परियोंकी कल्पनाकी भूमिकामें कुछ समय रहे। लेकिन शिक्षकका कर्तव्य अुसे अिस भूमिकामें से बाहर निकालनेका है; अुसके भ्रमोंको कायम रखने या बढ़ानेका नहीं। बादलोंकी गड़-गड़ाहट सुनकर बालक भले यह कल्पना करे कि कोअी बड़ा राक्षस जोरोंसे चिल्ला रहा है, अथवा बरसातकी धारायें पड़ती देखकर भले यह कल्पना करे कि आकाशमें से बड़े बड़े पीपोंका पानी छलनी द्वारा खाली किया जा रहा है। भले वह तुलसीके पौधेके साथ या खटियाके पांवके साथ लड़ने बैठे, या गुड़ियोंको झूलेमें सुलाकर अुसे चलाने लगे। लेकिन शिक्षकका कर्तव्य अुसकी अिस कल्पनासृष्टिका पोषण करना नहीं है। अुस सृष्टिका जबरन् नाश करना भी अुसका कर्तव्य नहीं है। शिक्षककी अिच्छा तो बालकको अिस भ्रमसे निकालकर अुसे सत्यका अवलोकन करानेकी होनी चाहिये। बालकका बालोचित कल्पना करना अेक बात है और शिक्षकका अैसी कहानियां कह कर अुसकी अिस आदतका पोषण करना दूसरी बात है।

अिसके अलावा, अेक दूसरी बात भी विचारणीय है। जिस जमानेमें जानवरोंकी कहानियों और परियों अथवा देवताओंकी कल्पनाओंकी अुत्पत्ति हुअी, अुस जमानेमें सारी अुत्पत्ति मनोरंजनके लिअे ही नहीं हुअी थी। यह बात सच नहीं है कि अुस जमानेके बड़े लोगोंको अैसी कहानियोंमें आनन्द आता था, अिसलिअे अुन्होंने अैसी कहानियोंकी रचना की। बल्कि यह कहना चाहिये कि जानवरोंकी क्रियाओं, कुदरती

घटनाओं वगैराका अवलोकन करनेवाले लोगोंको अुनके कारणोंकी खोज करते हुअे अपनी बुद्धिके अनुसार जो स्पष्टीकरण सूझे, अुनसे अिन कहानियोंकी अुत्पत्ति हुअी है। अमुक रोगके जोरोंसे फैलनेके पीछे या अेकाअेक अनेक प्राणियोंका नाश कर डालनेवाली वर्षाके पीछे किसी विशेष देवताका हाथ होना चाहिये, अैसी कल्पना की गअी; और अुससे संबंध रखनेवाली कहानियां रची गअीं। वे देव और जानवर अुन लोगोंको अपने जीवनके साथ ओतप्रोत हुअे लगते थे; अुसमें केवल कहानियोंका रस ही नहीं था। अुसी तरह यह बात भी सही नहीं कि पराक्रमके युगमें हमारे पुरखे पराक्रमकी बातें सुननेके रसिया थे। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि साहस और पराक्रम अुनके दैनिक जीवनके अभिन्न अंग थे। अुनके जीवनको देखते हुअे साहस और पराक्रमकी वृत्तिको बढ़ानेवाली बातें अुनके लिअे ठीक थीं। वे बातें अुनके लिअे झूठी नहीं, बल्कि सच्ची थीं। शिवाजी महाराजके लिअे रामायण-महाभारतकी बातें केवल मनोरंजन नहीं थीं। बल्कि अुनसे शिवाजीके जीवनको पोषण मिलता था। अिस न्यायसे बालक जब कल्पनाके युगकी भूमिकामें हो, तब भले अुसे प्राणियों और कुदरतके साथ मिलाया जाय, अुसे अिनका अवलोकन कराया जाय और अिस तरह अुसका मार्गदर्शन किया जाय कि अिनके संबंधमें अपनी बालबुद्धिसे वह स्पष्टीकरण पानेकी कोशिश करे। भले वह अैसे स्पष्टीकरण निकाले, जो हमारी आजकी वैज्ञानिक दृष्टिसे गलत हों। लेकिन अुसके लिअे वे जानबूझ कर की हुअी झूठी कल्पनायें नहीं होंगी। बादमें शिक्षाशास्त्रीका कर्तव्य यह रहेगा कि वह बालकको प्राणियों और कुदरतका ज्यादा अवलोकन करा कर अुसकी गलतियोंकी तरफ अुसका ध्यान खींचे और भ्रमपूर्ण कल्पनायें छुड़वा दे। लेकिन जब शिक्षक खुद अुसके मनोरंजनके लिअे जानवरों और परियोंकी कहानियां कहने बैठे, तब कहा जायगा कि वह जानबूझ कर बालककी बुद्धिमें झूठी कल्पनायें भरता है।

अिसी तरह जब बालक पराक्रमकी भूमिकामें हो, तब अुसे पराक्रम और साहसके जीवनकी तरफ ले जाना अुपयोगी माना जायगा। लेकिन वास्तवमें अैसा होता नहीं। बालक केवल पराक्रम और साहसकी कहानियां ही सुनता है, मनमें बड़ी बड़ी कल्पनाओंके घोड़े दौड़ाता है, लेकिन जब सपनोंकी दुनियासे जागकर देखता है तो पिंजरे जैसे अींट-चूनेके मकानमें पलथी मारकर बैठे हुअे शिक्षकसे या दादी मांसे केवल काल्पनिक 'कहानियां' ही सुनना रह जाता है। बालकका रोजका जीवन तो बस्तेका बोझ सिर पर रखकर शालासे सीधे घर जानेका ही होता है! अुसके जीवन और अुसकी कहानियोंके बीच जरा भी मेल नहीं होता। यदि विकासशास्त्रके सिद्धान्तोंमें हमारी श्रद्धा हो, तो अच्छा तरीका यह होगा कि अुसके लिअे साहसका जीवन बितानेकी अनुकूलता पैदा कर दी जाय, अुसके जीवनमें साहसका संचार किया जाय। वह थोड़े समय तक साहसका जीवन बिताकर अपने-आप आगेकी दशामें चला जायगा। लेकिन अैसे जीवनके अभावमें केवल साहस और पराक्रमकी कहानियोंसे, शार्पके कहे अनुसार, बालकमें 'व्यर्थकी भावना पैदा होती है।'

लेकिन श्री गिजुभाअीका दूसरा मुद्दा यह था कि हमारे पूर्वजोंके जीवनमें कुछ अशुद्ध भी था। अुन्होंने अुस तरहके जीवनमें कितने ही अैसे काम किये होंगे, जो हमारी आजकी नैतिक भावनाको आघात पहुंचायेंगे। अुस जीवनमें बालकको प्रत्यक्ष रूपसे घसीटना हमें पुसा ही नहीं सकता। आजकी संस्कृतिके लाभसे अुसे दूर तो हरगिज नहीं रखा जा सकता, अैसा डॉ॰ मॉन्टेसोरी भी कहती हैं। अितना बन्धन तो अुसके सिर पर होना ही चाहिये। और अिसमें भी शक नहीं कि पराक्रमकी भूमिकामें से बालकको गुजरना तो पड़ेगा ही। अैसी हालतमें बीचका ही मार्ग लेना पड़ेगा। वह यह कि अुस युगकी वृत्तियोंका बालक मानसिक अुपभोग करे। वह कुछ समय तक वनराज*की तरह दूसरे छोकरोंकी टोली बनाकर गांवको परेशान करे, यह क्या नागरिकोंके अिस

* गुजरातके प्रसिद्ध चावड़ा वंशका राजा, जिसका बचपन जंगलमें बीता था।

युगमें चल सकता है? अिसलिअे सुरक्षित मार्ग यही है कि बालकको मानसिक सृष्टिमें ही वनराज और शिवाजीका जीवन बिताने दिया जाय। सच है। अिसमें सुरक्षितता जरूर है; लेकिन किसके स्वार्थकी दृष्टिसे? नागरिकोंके स्वार्थकी दृष्टिसे या बालकोंके स्वयंविकासकी दृष्टिसे? सही तरीका तो यह होगा कि बालकके लिअे साहस और पराक्रमका जीवन बितानेके अुचित मार्ग खोजकर हम अुसे बतायें और अैसी योजनायें खोजें, जिनकी मददसे अुस जीवनकी गलतियोंकी तरफ अुसका ध्यान जल्दी खिंचे। अस्तु।

श्री गिजुभाअीका तीसरा मुद्दा यह था कि स्वयं कहानी कहनेवालेके जीवनकी दृष्टिसे भी काल्पनिक कहानियां कही जानी चाहिये। यह सच है कि मनुष्यका विकास अुत्तरोत्तर होता है, लेकिन अिससे अुसकी पिछली दशा बिलकुल छूट नहीं जाती; अुलटे, हरअेक मनुष्य अपने पिछले जीवनमें जानेकी बार-बार अिच्छा करता है। अिसे श्री गिजुभाअी जीवका बालस्वभावके प्रति रहनेवाला झुकाव कहते हैं। बूढ़ा आदमी बालक जैसा बन जाता है। बीमार आदमी बालक बनकर 'ओ मां', 'ओ बाप' चिल्लाता है। माता-पिता बच्चेके सामने बच्चे बननेकी चेष्टा करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी कमजोरीके समय पुरुषत्वका घमंड छोड़कर बालवृत्ति धारण करनेके लिअे अुत्सुक रहता है। यह अेक नियम ही है, और शिक्षक भी अिस नियमका त्याग नहीं कर सकता। शिक्षककी भी बालक बननेकी अिच्छा होती है, और अिसीसे बच्चोंके लायक कहानियां कहने और जोड़नेकी अुसे प्रेरणा होती है।

मैं स्वीकार करता हूं कि यह अवलोकन सही है। लेकिन अैसा नियम ही है — यानी कभी कभी बालक जैसा बने सिवा चल ही नहीं सकता अैसा कोअी अटल नियम है, अिस बारेमें मुझे शंका है। लेकिन अैसा नियम है यह मान लें तो भी हमें याद रखना होगा कि अिस नियमका अमल निर्बलताके समय ही होता है। मनोबल काम देता है, तब तक बीमार आदमी भी बालक जैसे बरताव पर अंकुश रखता है; बालक जैसा बरताव करनेका अुसे अभिमान नहीं होता, बल्कि

अुससे वह शरमाता है। जो लाचारी अुसे बतानी पड़ती है, अुसका अुसे दुःख होता है। अेक समझदार विकास पाया हुआ मनुष्य बालस्वभावकी सरलता, स्वाभाविकता और निरभिमानताको तो जीवनमें सदा बनाये रखनेकी कोशिश करता है, लेकिन बालस्वभावकी निर्बलता, अज्ञान या अनियंत्रित व्यवहारको कायम रखनेकी कोशिश नहीं करता। शिक्षकको यदि काल्पनिक कहानियोंमें खूब रस आता हो तो अिसे वह अपनी निर्बलता माने, अिसमें अपना विकास न समझे। निर्बलताका व्यवहार आदर्श व्यवहार नहीं कहा जा सकता।

अिसके साथ ही अेक अन्य मित्र द्वारा पेश किये हुअे चौथे मुद्दे पर भी मैं यहां विचार कर लेता हूं। अुनका यह कहना है कि असत्यको जब हम सत्यके रूपमें मनवानेका प्रयत्न करते हैं तब जरूर सत्यका भंग होता है। लेकिन किसी काल्पनिक कहानीको बालक काल्पनिक समझ कर ही सुनता है, तब अुसमें धोखा नहीं है। यानी अुसे सत्य न कहा जाय तो असत्य भी नहीं कहा जा सकता। सब बातोंके सत्य और असत्य —— अैसे दो ही विभाग करनेकी जरूरत नहीं। अेक तीसरा विभाग भी हो सकता है, जो न सत्य हो और न असत्य। असत्यको असत्यके रूपमें पहचान कर और असत्यके रूपमें ही प्रस्तुत करके जो कल्पना सामने रखी जाय, वह अिस तीसरे विभागमें रखी जानी चाहिये।

महान सिद्धान्तोंको समझानेमें अैसी काल्पनिक कहानियोंका बड़ा महत्त्व है। टॉल्स्टॉयने छोटी छोटी कहानियों द्वारा अपने किये हुअे गूढ़ विचारोंको कितने मार्मिक और प्रभावकारी ढंगसे समझाया है? पुराणकारोंके प्रयत्न अिस दिशामें कअी स्थानों पर अतिकी सीमाको पहुंच गये हैं, फिर भी अुन्होंने वार्ताओं द्वारा कितने ही अूंचे संस्कार जनताको दिये हैं। आजके अितिहास-संशोधक कहते हैं कि रामायण वाल्मीकिकी कोरी कल्पना ही होगी, अुसका वास्तविकतासे कोअी संबंध नहीं होगा। यह कथन सच हो तो भी रामायणने आर्योंको संस्कारी बनानेमें कितना बड़ा हिस्सा लिया है?

सच पूछा जाय तो हम जिस नियमका अपने व्यवहारमें बहुत बार छोटे पैमाने पर अुपयोग करते हैं, अुसका थोड़ा ज्यादा अुपयोग

ही कल्पनाकार अिसमें करता है । क्या बहुत बार अैसा नहीं होता कि हम अेकाध सच्ची घटी हुअी घटना दूसरेको सुनाना चाहते हैं, लेकिन अुससे संबंधित पात्रोंके जीवित होनेसे हम अुनके असल नाम बताना नहीं चाहते ? अुसमें जीवित पात्रोंकी कमजोरी खुल जानेके खयालसे, अुनकी बात दूसरोंको मालूम हो जानेसे अुन्हें दुःख होगा अिस खयालसे या दूसरे किसी कारणसे क्या हम अैसा नहीं कहते कि अिस घटनाके पात्रको हम 'क' या कल्याणजीके नामसे पहचानेंगे ? घटनाके वर्णनमें बातें तो सब सच्ची होती हैं, परंतु नाम बदल दिये जाते हैं । नाम बदले गये हैं, यह आप जानते भी हैं। तो फिर अिसमें सत्यका भंग कहां हुआ ? अिसी तरहसे टॉल्स्टॉयकी किसी कहानीको लीजिये । अुदाहरणके लिअे, अुनकी 'मनुष्य कितनी जमीनका मालिक हो सकता है ?' शीर्षक कहानी काल्पनिक है। जिस सिद्धान्तको समझानेके लिअे अुसकी रचना की गअी है, वह सिद्धान्त सत्य है । अुस पर रची हुअी कहानी काल्पनिक है; और वह काल्पनिक है अैसा आप भली-भांति जानते हैं । आपको अेक क्षणके लिअे भी भ्रममें नहीं रखा जाता। तो अुसमें सत्यका भंग कहां होता है ?

अिस प्रश्नका अुत्तर देना मुझे बड़ा कठिन मालूम होता है । कारण यह है कि सर्जक कल्पनाके बारेमें तात्त्विक दृष्टिसे मेरा चाहे जो मत बना हुआ हो, फिर भी दरअसल अैसी कहानियोंमें मुझे रस आता है । अैसी कुछ कहानियोंने मेरे जीवन पर भी गहरा प्रभाव डाला है।

लेकिन अूपरके मुद्देमें अेक मान्यता गलत है। किसी भी वस्तुके साथ चित्त जब तदाकार हो जाता है, तभी अुस वस्तुका हम पर गहरा असर पड़ता है, और अुस वस्तुकी असत्यताको भूले बिना चित्त अुसके साथ तद्रूप नहीं हो सकता। बहुतेरे लोगोंने यह देखा और अनुभव किया होगा कि हरिश्चन्द्र या दूसरा कोअी करुण रससे भरा नाटक देखकर प्रेक्षकोंकी आंखोंसे आंसू बहने लगते हैं। जिस क्षण आंसू बहने लगते हैं अुस क्षण प्रेक्षक अिस सत्यको भूल जाते हैं कि 'यह तो अेक नाटक है; यह हरिश्चन्द्र और तारामती केवल अभिनय करनेवाले

दो नट-नटी हैं और पैसेके लिअे ही अभिनय कर रहे हैं।' अिस सत्यको भूलकर ही प्रेक्षकगण अिन पात्रोंके साथ तदाकार हो सकते हैं। अुनकी आंखोंसे आंसू बह रहे हों, अुस समय कोअी यदि अुनसे कहे कि 'अरे भाअी, यह तो नाटक है; आप रोते क्यों हैं?' तो अुनके आंसू और आंसुओंके साथ अुनका रस भी अुड़ जाता है। और अिसके साथ ही नाटकका नैतिक प्रभाव भी मिट जाता है।

अिसी तरह काल्पनिक कहानी काल्पनिक है, अैसा भले ही सुननेवाला पहलेसे या बादमें जाने; लेकिन वह कहानी अुसके मन पर असर तभी डाल सकती है, जब वह अिस बातको बिलकुल भूल जाय कि वह झूठी है। अुसे सच्ची माने बिना चित्त अुसके साथ तद्रूप हो ही नहीं सकता। और जिसे असत्यमें सत्यका भ्रम रखनेकी आदत पड़ जाती है, अुसे आप कहानीके प्रत्येक वाक्य पर 'भाअी, यह कल्पना है', 'भाअी, यह कल्पना है' कहें, तो भी या तो वह आपकी बातको भूल जायगा या अुस कहानीसे अुसे कोअी लाभ नहीं होगा।

किसी सिद्धान्तको कहानीके जरिये समझानेवालेकी भी अैसी ही दशा होती है। यदि वह अपने सिद्धान्तको अपने जीवनमें अुतारना चाहता हो, तो अैसा कल्पना-विलास अुसे थोड़े समय तक स्वप्नसृष्टिमें रखता है, परंतु अपनी जाग्रत सृष्टिमें — प्रत्यक्ष जीवनमें — वह अुस सिद्धान्तको व्यावहारिक रूप देनेमें सफल नहीं होता।

अलबत्ता, अैसे किसी अुदात्त सिद्धान्त पर रचे गये जीवन-चित्रकी कल्पनामें केवल कल्पनासे कुछ अधिक जरूर होता है। वह अेक संकल्पका बीज है; और वह संकल्प किसी न किसी समय दुनियामें स्थूल रूपमें सिद्ध होनेवाला है। कहानीके रूपमें अैसी कल्पना क्रियाके भूतकालके रूपोंका प्रयोग करके लिखी जाती है, परंतु वस्तुतः वह भविष्यवाणी होती है। फिर भी जिस हद तक अुसमें अयथार्थता आती है, अुस हद तक वह कल्पना करनेवालेको, कहनेवालेको और सुननेवालेको कुछ न कुछ भ्रममें डाले बिना नहीं रहती और संपूर्ण रूपमें भविष्यवाणी नहीं हो सकती। भले अितने भ्रममें रहे सिवा कोअी चारा न हो, या अितना भ्रम नजरअन्दाज करना

जरूरी हो, लेकिन यह तो स्वीकार करना ही होगा कि अुसमें कुछ दोष है, कुछ असत्य है। और यह जानते हुअे भी अुसमें जो रस आता है वह मोह है, अैसा मानना पड़ता है।

अूपरके मुद्दों पर मुझे अिस तरहके विचार सूझते हैं। लेकिन अेक बात मैं यहां स्पष्ट कर देना चाहता हूं। कहानियोंके खिलाफ किसी तरहका आन्दोलन खड़ा करनेकी अिच्छासे मैंने अपना यह निबंध नहीं लिखा है। मेरा अपना भी कहानियोंका शौक —— रस जाग्रत है।

मैं कल्पनाशक्तिका विरोधी नहीं हूं। अंतःकरणकी अेक अद्भुत शक्तिका विरोधी बनकर मैं विकासकी अिच्छा कैसे रख सकता हूं? लेकिन यहां मैंने कल्पनाशक्तिकी तालीमके बारेमें अिसी दृष्टिसे विचार किया है कि वह मनुष्यकी आध्यात्मिक अुन्नतिमें, अुसके सर्वांगीण विकासमें और अुसकी सत्यकी शोधमें किस प्रकार और किस हद तक सहायक हो सकती है; और अिस दृष्टिसे मुझे अैसा लगा है और कहना पड़ा है कि अिस तालीममें जिस हद तक जानबूझ कर असत्यका पोषण करनेकी आदत डाली जाती है, अुस हद तक वह सत्यकी शोधमें और आत्मोन्नतिमें बाधक होती है।

अेक स्नेही मित्रने अैसी टीका की है कि अेक तो गुजराती भाषामें कहानियोंका आवश्यक भंडार ही नहीं है, अुस पर यदि आप कोअी कहानी सच्ची है या झूठी यह तय करनेकी जिम्मेदारी शिक्षकों पर डालेंगे, तब तो कहानी कहनेवालेका दिवाला ही निकल जायगा! यह सच है। व्यापारी भी कहते हैं कि सत्यका भंग व्यापारमें हर-गिज नहीं किया जा सकता, अैसा लफड़ा अगर आप हमारे छोकरोंके पीछे लगा देंगे तो हमारा दिवाला ही निकल जायगा! लेकिन क्या अिस डरसे बालकोंको यह कहा जा सकता है कि व्यापारमें झूठ बोला जा सकता है? अुसी तरह कहानियोंका दिवाला निकल जानेके डरसे क्या अैसा कहा जा सकता है कि कहानीमें तो झूठ बोला जा सकता है? हमें यदि सत्यके अुपासक बनना हो, तो कंजूसकी तरह सत्यकी आराधना और सेवा करनी होगी।

टिप्पणी – २

अूपर व्यक्त किये गये विचारोंमें थोड़ा सुधार करनेकी गुंजाअिश मुझे मालूम होती है। 'दूधका जला छाछको भी फूंक-फूंक कर पीता है' यह सच हो सकता है, लेकिन यह पीनेवालेकी बुद्धिमानी नहीं बताता। अुसे मुंहसे लगानेके पहले ही यह पहचानते आना चाहिये कि प्यालेमें दूध है या छाछ और वह गरम है या ठंडी।

दूसरे, कल्पनाके दूसरे दो प्रकारोंका अुपयोग हो, तो अुससे सर्जक कल्पनाका क्या संबंध? अिस शक्तिका भी अुपयोग होना ही चाहिये। जिस मनुष्यमें सर्जक कल्पनाका अभाव हो, वह सच्चे जीवनमें भी कुछ नया सर्जन नहीं कर सकता। अिसलिअे वहां तो अुसका अुपयोग है ही; और वह अच्छेसे अच्छा भी हो सकता है। लेकिन साहित्यकी दिशामें भी अुसका अैसा अुपयोग होना चाहिये, जिससे वह मनुष्यके विकासमें सहायक सिद्ध हो। सारी शक्तियोंका अमुक मर्यादामें रहकर अुपयोग किया जाय, तो ही वे हितकर सिद्ध होती हैं। अुसी तरह साहित्यमें सर्जक कल्पनाकी भी मर्यादा होगी। अुस मर्यादाको खोजना और बताना चाहिये। लेकिन साहित्यके क्षेत्रमें अुसे स्थान ही न देना ठीक नहीं होगा।

धार्मिक क्षेत्रमें सर्जक कल्पनाका दुरुपयोग हुआ है। अिसके दो कारण हैं: (१) रची हुअी कथाओंको सच्ची घटनाओंके रूपमें स्वीकार करानेका कथाकारोंका प्रयत्न; वे झूठी हैं और अुनमें से अुचित बोध ही लेना चाहिये, अैसा न कभी कहा गया और न मानने दिया गया है। (२) अेक खास श्रद्धासे अुनका कथन और श्रवण। संभव है अंधविश्वासों, भ्रमों वगैराका पोषण करनेमें काल्पनिक कथा-वार्ताओंके बजाय अिन दो कारणोंका ज्यादा हाथ रहा हो।

सामान्य जीवनमें सर्जक कल्पनाका दुरुपयोग मनुष्योंके हलके विकारों, आलस्यपूर्ण मनोरंजन और अुद्देश्यहीन वाणी-विलासका पोषण करनेमें हुआ है।

लेकिन यह अनुभवकी बात है कि जिस तरहका जीवन बितानेकी मनुष्यकी अिच्छा हो और अुसके जीवनकी जो आकांक्षाअें हों, अुन्हें पूरा करनेमें सच्चे जीवन-चरित्रोंकी तरह काल्पनिक कथा-वार्ताअें (वे काल्पनिक हैं अैसा जानते हुअे) भी मदद कर सकती हैं। अैसी वार्ताअें बालकोंके लिअे भी अुपयोगी हो सकती हैं।

अिनकी कीमत सच्चे चरित्रोंके बनिस्बत हमेशा कम ही रहेगी। अिसके अलावा, अुनमें नीचेके खतरे भी हैं:

(१) कथा-कहानी लिखनेवाला जिस प्रकारका जीवन-चरित्र चित्रित करता है, अुसका यदि अुसे व्यक्तिगत अनुभव न हो और वह कल्पनासे ही अुसे चित्रित करनेका प्रयत्न करता हो, तो संभव है अुसका चित्रण बहुत गलत हो। अैसा हो तो सुननेवालेके मनमें भी गलत या असत्य चित्र पैदा हो सकता है। और यदि वह बहुत ज्यादा आकर्षक हो, तो सुननेवालेको भ्रममें भी डाल सकता है। अुदाहरणके लिअे, सरस्वतीचंद्र*। अिसमें जीवनके कुछ आदर्श खड़े करनेका प्रयत्न किया गया है। लेकिन संभव है वैसे जीवनका थोड़ा भी अनुभव गोवर्धनराम भाअीको न हुआ हो। अुन आदर्शोंकी अुन्होंने कल्पना की, कहीं भी अुनका अनुभव नहीं किया, फिर भी अद्‌भुत ढंगसे अुन्हें चित्रित किया है। अिस कारणसे अनेक युवक और युवतियां विचित्र वृत्तियोंको आदर्श समझकर अुनका पोषण करने लगे।

(२) किसी कथामें बताया गया जीवन प्रत्यक्ष जीवनसे बहुत भिन्न प्रकारका और अेकतरफा चित्रित किया गया हो, केवल आदर्श ही हो, तो जीवनमें अुसका अमल करनेका प्रयत्न करनेवाला मनुष्य अव्यावहारिक बननेकी भूल कर सकता है। अेकाध गुणके अतिरेकसे जीवन नहीं चलता; परंतु अनेक अूंचे गुणोंके अुचित मेलसे जीवन व्यावहारिक दृष्टिसे अुपयोगी बनता है। आदर्श चित्रित करनेवाली कथायें मनुष्यको अिस सचाअीका परिचय नहीं करातीं।

---

* गुजरातीके महान अुपन्यासकार श्री गोवर्धनराम त्रिपाठीका अेक प्रसिद्ध अुपन्यास।

(३) अनुभव और कल्पनाके बीच बहुत बड़ा भेद है। कल्पना सुन्दर और आकर्षक लगती है, क्योंकि वह अच्छे पहलूको ही देख सकती है; कठिनाअियोंकी पूरी पूरी कल्पना नहीं हो सकती। लेकिन जब मनुष्य अनुभव लेना शुरू करता है, तब अुसके सामने अनसोची कठिनाअियां खड़ी होती हैं। अिसलिअे जिस मनुष्यको अनुभव नहीं, अुसकी चित्रित कल्पना मार्गदीप बननेके बजाय भ्रामक ही होती है।

अिसलिअे मैं अितना स्वीकार करता हूं कि जिस प्रकारका जीवन चित्रित किया जाय, अुसके अनुभवी द्वारा लिखी हुअी अैसी वार्ताअें श्रोताओंके लिअे अुपयोगी सिद्ध हो सकती हैं, जो केवल अेकतरफा नहीं हैं और अनिष्ट नहीं हैं।

काल्पनिक कथा-वार्ताओंका अनिष्ट स्वरूप धार्मिक साहित्यमें ज्यादासे ज्यादा प्रकट होता है। साधारण साहित्यके बनिस्बत धार्मिक साहित्यके श्रवण, वाचन और अध्ययनमें विशेष प्रकारका आदर, श्रद्धा और गंभीरता मनुष्यके चित्तमें होती है। और वह साहित्य बहुत बड़े अधिकारी पुरुषों द्वारा सच्चा अितिहास और आदर्श पेश करनेके लिअे खास तौर पर लिखा गया है, अैसी मान्यता होनेके कारण अुसे जैसेका तैसा स्वीकार कर लेनेकी लोगोंकी वृत्ति होती है। बादमें जैसे जैसे अपनी बुद्धि चलानेकी शक्ति बढ़ती जाती है, वैसे वैसे अुन कथाओंको गले अुतारनेमें देर लगती है। जो पहले सीधा-सादा सत्य मालूम होता था, वह बादमें वैसा नहीं लगता। वे किसी तरहके रूपक होंगी अैसा मानकर अुनके अर्थ स्पष्ट करनेके प्रयत्न होते हैं। परन्तु जब सारे पहलुओंसे मेल खानेवाले रूपक नहीं मिलते, तब यह प्रयत्न भी शिथिल हो जाता है और अुनके प्रति अरुचि पैदा होती है। बादमें, अिसमें से धर्मके प्रति ही अरुचि पैदा होती है। यह स्वीकार किये बिना नहीं रहा जाता कि विभिन्न धर्मोंके धार्मिक साहित्यमें घुलमिल जानेवाली काल्पनिक कथा-वार्ताअें अुस अुस धर्मके प्रति अरुचि पैदा होनेका अेक बड़ा कारण हैं।

९

प्रज्ञा

मैं नहीं जानता कि अिन्द्रियोंकी और कल्पनाशक्तिकी तालीमके बारेमें व्यक्त किये गये मेरे विचारों पर कितने शिक्षकों या विचारकोंका ध्यान आकर्षित हुआ होगा। मुझे लगता है कि जिन्होंने अिन लेखोंको ध्यानसे पढ़ा होगा, अुन्हें विचारके लिअे काफी मसाला मिला होगा। और जिन्हें अिन विचारोंमें कोअी भूल न मालूम हुअी हो, अुन्हें शिक्षण-संबंधी और आत्मोन्नति-विषयक विचारोंमें बहुत फेरबदल करने जैसा लगा होगा। मेरे विचारोंका शिक्षकों और विचारकों पर अैसा असर होगा या नहीं, यह कहना कठिन है। लेकिन मनुष्यके सच्चे विकासमें ये विचार अुपयोगी सिद्ध होंगे, अैसा माननेके कारण ही मैंने अुन्हें यहां पेश किया है।

बौद्धिक शिक्षणके खिलाफ चाहे जितने आरोप लगाये जायं, फिर भी यह निश्चित है कि आज शालाओंमें अिस प्रकारके शिक्षण पर ही जोर दिया जाता है। अेक तरफ यह कहा जा सकता है कि बुद्धिकी जितनी महिमा गायी जाय अुतनी थोड़ी है; दूसरी तरफ आजका बौद्धिक शिक्षण दोषभरा मालूम हुआ है। अिन दो परस्पर विरोधी बातोंका कारण जाननेकी जरूरत है। जिस विचारसरणीका मैंने अिन्द्रियोंकी और कल्पनाशक्तिकी तालीममें अुपयोग किया है, अुसी विचारसरणीसे मैं बौद्धिक शिक्षणके प्रश्न पर भी विचार करना चाहता हूं। वह है अनुभव और कल्पनाके बीचका भेद स्पष्ट करनेवाली विचारसरणी।

बुद्धिका विचार करनेके लिअे अंतःकरणकी शक्तियोंका ज्यादा सूक्ष्म विचार करना होगा। पाठक यदि धीरजके साथ यह विचार करनेके लिअे तैयार होंगे, तो ये लेख समझनेमें अुन्हें कोअी कठिनाअी नहीं होगी।

अन्तःकरणकी तीन शक्तियोंके लिअे आम तौर पर बुद्धि जैसा अेक ही शब्द काममें लिया जाता है। ये तीन शक्तियां हैं प्रज्ञा, तर्क

और निर्णय-शक्ति । अिनमें से तीसरी शक्तिको ही बुद्धिके नामसे पहचानना ठीक है। और अिन लेखोंमें अब बुद्धिका अर्थ निर्णय-शक्ति ही समझना चाहिये।

अिन तीन शक्तियोंमें से आजके शिक्षणमें जिसे महत्त्वका स्थान प्राप्त हुआ है, और जो होना संतोषजनक नहीं मालूम होता, वह तर्क शक्तिकी तालीम है। और तार्किक तालीम ही प्रायः बौद्धिक तालीमके नामसे पहचानी जाती है।

अब हम अिन तीन शक्तियोंके स्वरूपकी जांच करें। जिस शक्तिकी मददसे हम शक्कर और गुड़के स्वादका, सा और रे की आवाजका, गुलाब और मोगरेकी सुगंधका, ठंडी और गरम चीजके स्पर्शका, लाल और गुलाबी रंगका तथा दया और क्रोधकी भावनाका भेद पहचान सकते हैं, वह हमारी प्रज्ञाशक्ति है। प्रज्ञाशक्तिके कार्यमें दो क्रियाअें होती हैं: पहली, अिन्द्रियों या भावनाके किसी प्रकारके अनुभव (या वेदना या संस्कार) का अवलोकन (अथवा निरीक्षण या ग्रहण); और दूसरी, अुसी वर्गके दूसरे अनुभवोंका स्मरण करके अुनके साथ तुलना। हम शक्करका अनुभव कर चुके हैं; अुस अनुभवको हमने याद रखा है। बादमें हम गुड़का अनुभव करते हैं। दिमागकी तराजूमें अिन दो अनुभवोंके बीच तुलना होती है; और ये दो अनुभव अलग अलग हैं, अैसा मालूम होने पर दोनोंको हम अलग अलग नाम देते हैं। जिस तरह अेक होशियार बोहरा टीनकी चद्दरमें से बड़ी तेजीसे और प्रकार (कंपास) की मददके बिना, अेकसे गोल टुकड़े काट लेता है, अुसी तरह साधारण तौर पर ये दो क्रियाअें (नया अनुभव और पिछले अनुभवके साथ अुसकी तुलना) अितनी तेजीसे होती हैं कि अैसी दो अलग क्रियाअें होनेका हमें भान ही नहीं रहता। लेकिन अेक बार देखे हुअे किसी आदमीको जब लम्बे समयके बाद हम देखते हैं, तब अुसे पहचाननेमें हमें जिस तरह कभी कभी यादको ताजा करना पड़ता है, अुस परसे अिन दो क्रियाओंका भेद मालूम होता है।

अिस प्रज्ञाशक्तिमें अनुभवका मुख्य स्थान है, यह अुसके स्वरूपको जांचते ही मालूम हो जाता है। अवलोकनमें अनुभव होता है और

तुलनामें पिछले अनुभवका स्मरण। अिसलिअे प्रज्ञाशक्तिका आधार अनुभव है। ज्ञानेन्द्रियां और ज्ञानतंतु अनुभवोंको प्रज्ञाशक्ति तक पहुंचानेवाले दूत-मात्र हैं। ज्ञानेन्द्रियोंमें जितनी खरावी होगी, अुतनी ही खराबी सही अनुभव करनेमें होगी। अिसलिअे प्रज्ञाशक्तिकी जड़ताका अेक कारण ज्ञानेन्द्रियोंकी खराबी हो सकता है। ज्ञानेन्द्रियां अनुभव लेनेमें जितनी भूल करेंगी, अुतनी ही प्रज्ञाशक्तिकी क्रिया भूलवाली होगी। प्रज्ञाकी खराबीके अिसके सिवा दूसरे कारण भी हैं, जिन पर आगे विचार किया जायगा। लेकिन अिस परसे हम प्रज्ञाके दो भाग कर सकते हैं: ऋत (अथवा सत्य) प्रज्ञा[१] और अनृत (अथवा असत्य) प्रज्ञा। प्रज्ञाका आधार अनुभव है यह ध्यानमें रखें, तो अनुभवके यथार्थ अनुभव[२] और अयथार्थ अनुभव जैसे दो भेद होंगे।

प्रज्ञाशक्तिका कार्य अनेक प्रकारसे होता है। अिसलिअे ऋत प्रज्ञाको अलग अलग बताना कठिन है। लेकिन अनृत प्रज्ञाको दिखाकर ऋत प्रज्ञाकी बाकी निकाली जा सकती है। प्रज्ञाशक्ति अवलोकन और स्मृतिकी सहायतासे कार्य करती है, अिसलिअे यह स्पष्ट है कि अिन दोनोंमें से अेककी भी अयथार्थता प्रज्ञाको अनृत बना सकती है। अिस तरह अनृत प्रज्ञाके निम्नलिखित प्रकार होते हैं:

(१) ज्ञानेन्द्रियोंकी कुदरती खामीके कारण होनेवाले अयथार्थ अनुभव। (जैसे, कम-ज्यादा अंधापन, बहरापन वगैरा।)

(२) बाहरी निमित्तों, कामक्रोधादि विकारों, अेकाग्रताके अभ्यास वगैरासे अुत्पन्न होनेवाला विपर्यय-ज्ञान (hallucinations): अुदाहरणके

---

१. अधिक निश्चित शब्दोंका प्रयोग करना हो, तो ऋत प्रज्ञाके स्थान पर सावधानता-सूचक ऋतंभरा (अतिशय सत्यांशवाली) प्रज्ञा कहना चाहिये।

२. 'सत्य अनुभव' ये शब्द पर्यायवाचक जैसे हैं और 'असत्य अनुभव' परस्पर विरोधी शब्द मालूम होते हैं। अिसलिअे अनुभवको सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता, बल्कि यथार्थ या पूर्ण और अयथार्थ या अपूर्ण कहना चाहिये।

लिअे, अंधेरेके कारण डोरीमें सांपका अनुभव; चित्तभ्रमके कारण लकड़ीके टुकड़ेमें मरे हुअे पुत्रका अनुभव; कामादि विकारोंके कारण मुर्देमें काठका अनुभव या सांपमें डोरीका अनुभव (जैसा कि बिल्व-मंगल या तुलसीदासको हुआ कहा जाता है); जिस पदार्थका डर मनमें घुस गया हो, अुसका बार-बार भास; अेकाग्रताके अभ्यासके दिनोंमें ध्येय पदार्थका सर्वत्र भास, वगैरा। यह विपर्यय-ज्ञान अुन अुन निमित्तोंके हट जानेसे नष्ट हो जाता है और पुनः ऋत प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। अिसमें अवलोकन तो यथार्थ है, परन्तु तुलना करनेके लिअे पैदा होनेवाले स्मृतिके संस्कार अयथार्थ हैं।

(३) विविध प्रकारके संकेतों या कल्पनाओंके संस्कारोंके कारण पदार्थोंमें अुनके वास्तविक धर्मोंके अलावा होनेवाला दूसरे धर्मोंका भास (विकल्पवृत्तिके संस्कार): जैसे, देवमूर्तिमें अुसके बाहरी स्वरूप और आकारके अलावा होनेवाला देवत्वका भास; झंडेमें कपड़े और चित्रके अलावा देशाभिमानकी प्रेरणा देनेवाले धर्मोंका भास, आदि। अिसमें आवश्यक अवलोकन और स्मृतिके अलावा संकेतोंके कारण दूसरी स्मृतियां जागती हैं और अुनमें से विशेष प्रकारकी प्रज्ञा होती है। जिस पर अिन संकेतोंका संस्कार नहीं होता, अुसे अैसी विशेष प्रज्ञा नहीं होती। तात्त्विक दृष्टिसे यह अनृत प्रज्ञा ही है।*

---

* 'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः' १–९ — योगशास्त्रमें विकल्प वृत्तिकी अैसी व्याख्या की गअी है और अुसके प्रसिद्ध अुदाहरणोंके रूपमें 'पुरुषका चैतन्य', 'राहुका सिर' जैसे दृष्टान्त दिये जाते हैं। ये और अूपर दिये गये अुदाहरण अेक ही प्रकारके हैं। पुरुष और चैतन्य, नामधारी और अुसका सिर अिन दोको अलग समझनेका पहला संस्कार अैसा शब्दप्रयोग कराता है। यद्यपि पुरुष और चैतन्य तथा राहु और सिर अेक ही चीज हैं, फिर भी साधारण तौर पर पुरुष तथा नाम-धारीमें चैतन्य और सिरके अलावा अन्य अवयवों और धर्मोंका आरोपण करनेकी आदत होनेसे अैसा शब्दप्रयोग होता है। अनृत प्रज्ञाके संस्कारोंके कारण गलत शब्दयोजना हो, तो कोअी आश्चर्यकी बात नहीं।

(४) निद्रा या तन्द्राके कारण वस्तुओंका अयथार्थ अवलोकन। अिसमें अवलोकन और स्मृति दोनोंकी अयथार्थता है।

(५) स्मृतिदोषके कारण होनेवाली अनृत प्रज्ञा : अुदाहरणके लिअे, पहले देखे हुअे आदमीको न पहचानना या अुसे कोअी दूसरा आदमी मान लेना। विपर्यय-ज्ञानमें जो कारण होते हैं, वैसे कोअी कारण यहां मालूम नहीं होते; केवल स्मृतिके जाग्रत न होनेका ही दोष रहता है।

अिस प्रकार, ज्ञानेन्द्रियोंकी, ज्ञानतंतुओंकी और स्मृतिकी जाग्रति और सूक्ष्मता हो, तथा अुनकी खामी या कठिनाअी पैदा करनेवाले बाहरी निमित्त, कामक्रोधादि विकार, विकल्पोंके संस्कार तथा निद्रा, तंद्रा वगैरा विघ्न न हों, तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञा ठीक कार्य करती है, सत्यकी ओर मुड़ी हुअी है। ऋत प्रज्ञाके मार्गमें सबसे बड़ा विघ्न विकल्पोंके संस्कारोंका होता है। दूसरे सब विघ्न तो आते-जाते रहते हैं। लेकिन कल्पनाके संस्कार, जब तक अुन्हींके संबंधमें विचार न किया जाय तब तक, गहरी जड़ जमाये रहते हैं। कअी बातोंमें हमारे अैहिक हानि-लाभका संबंध अिन संस्कारोंके साथ होता है, और अिसलिअे विकल्पोंका हम प्रयत्नपूर्वक पोषण करते हैं। बहुत बार फर्क भी किया जाता है तो सिर्फ अितना ही कि अेक विकल्पको हटाकर अुसके स्थान पर दूसरा रख दिया जाता है। विकल्पोंके संस्कारोंका पूर्णरूपसे नाश किया जा सकता है या नहीं, यह अेक प्रश्न ही है। अिसलिअे केवल दो मार्ग रह जाते हैं: विकल्प... निरंतर शुद्धि की जाय और विकल्पोंको विकल्पोंके रूपमें ही पहचाना जाय। अुदाहरणके लिअे, बाहरसे अेकसे दिखाअी देनेवाले ब्राह्मण और अछूतको देखकर सनातनी हिन्दूको दो अलग प्रकारके अनुभव होते हैं; अेकके प्रति पूज्यभावका और दूसरेके प्रति अरुचि या घृणाका। किसीके लिअे पूज्यभावका संस्कार जाग्रत होनेमें दोष नहीं है, लेकिन अरुचि या घृणाका संस्कार दोषपूर्ण है। अिसलिअे अिसके संबंधमें पोषित विकल्पको शुद्ध करना पड़ता है।

प्रज्ञाके ऋत और अनृतके अलावा पर और अपर जैसे दूसरे भी दो भेद हो सकते हैं। ज्ञानेन्द्रियोंके विषयोंके भेदोंको पहचाननेवाली

प्रज्ञा अपर है। ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि और सूक्ष्मताके अनुपातमें प्रज्ञाकी सत्यता और असत्यतामें फर्क पड़ता है।

अन्तःकरणके विषयोंको पहचाननेवाली प्रज्ञा पर है। अन्तःकरणके विषय ये हैं:

(१) हर्ष-शोक, सुख-दुःख, राग-द्वेष, दया-वैर आदि वृत्तियां।

(२) ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव किये हुअे विषयोंके प्रत्यक्ष जैसे स्मरण: अुदाहरणके लिअे, स्वप्न, भास आदि।

(३) अनुभवोंके अभावोंके स्मरण: अुदाहरणके लिअे, निद्रा, मूर्छा, चित्तका लय आदि।

(४) सुने हुअे या श्रद्धासे माने हुअे अथवा तर्कसे अुपजाये हुअे विषयोंकी कल्पनाका साक्षात्कार।

(५) सचमुच अनुभव किये हुअे नहीं, बल्कि किसी प्रकारके भ्रमसे अनुभव किये हुअे विषय; जैसे सन्निपात, नशे वगैरासे होनेवाले भ्रम।

अन्तःकरणके विषयोंको पहचाननेवाली प्रज्ञाओंमें से अन्तिम दो अनृत प्रज्ञायें हैं, और पहली तीन स्मृतिकी शुद्धिके अनुसार कम-ज्यादा ऋत हैं।

जब तक अनृत प्रज्ञाके विषयोंमें सत्यताकी भावना रहती है, तब तक बुद्धि अशुद्ध रहती है और ऋत प्रज्ञा तक दृष्टि ही नहीं पहुंचती। यानी प्रज्ञाके जैसी कोअी अनुभवमूलक शक्ति है, अैसा भान ही नहीं होता। हम स्वादों और स्वरोंको पहचानते हैं, वृत्तियोंका अनुभव करते हैं, लेकिन यह सब अुन विषयोंके साथ अेकरूप होकर ही। जिसकी बदौलत यह सब पहचाना जाता है, अुस प्रज्ञा तक हमारा ध्यान ही नहीं जाता।

अैसी यह प्रज्ञाशक्ति है। वह हमारे शरीरमें रहनेवाली अनुभव लेनेकी और पहलेके अनुभवोंके साथ नये अनुभवोंकी तुलना करनेकी शक्ति है। अुसके साथ होनेवाले विकल्पवृत्तिके संयोगको हम दूर कर सकें, तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञा केवल प्रत्यक्ष प्रमाणकी वृत्ति या शक्ति है। अनुभव ही अिस शक्तिका आधार-स्तंभ है। अपर प्रज्ञाकी सूक्ष्मता और शुद्धिके आधार पर भौतिकशास्त्रोंका विकास

हुआ है। पर प्रज्ञाके विकास और परिचयके प्रयत्नमें से मानसशास्त्र और राजयोगकी अुत्पत्ति हुअी है। और तत्त्वज्ञान भी अधिकतर अिसी शक्तिका विचार करके आगे बढ़ता है। ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि (रसवृत्ति नहीं), कल्पनाशक्तिकी योग्य तालीम और सद्भावनाओंकी सूक्ष्मता अिस शक्तिके विकासमें महत्त्वके अंग हैं।

१०

तर्कशक्ति

साधारण भाषामें हम तर्क शब्दका दो अर्थोंमें अुपयोग करते हैं। जहां धुआं दिखाअी देता है वहां अग्नि होगी, अैसा जो अनुमान हम निकालते हैं वह अेक प्रकारका तर्क है। स्वर्ग और नरक, यमराजकी न्याय-पद्धति, अीश्वरके यहांका राज्य-विधान, श्रेष्ठ धाम वगैरा कैसे होंगे, अिस विषयकी कल्पना दूसरे प्रकारके तर्क हैं।

अब हम देखें कि अिन दो प्रकारके तर्कोंमें क्या भेद है। जहां धुआं है वहां अग्नि होनी चाहिये, अिस अनुमानमें धुअेंको अेक जगह देख कर (अनुभव करके) हम भूतकालमें बार बार हुअे अपने अिस अनुभवको याद करते हैं कि जहां धुआं होता है वहां अग्नि होती ही है; और अिन दो अनुभवों परसे धुअेंवाली जगह पर किस वस्तुका अनुभव होना चाहिये, अिसकी कल्पना करते हैं। अिस कल्पनाके सच होनेमें कोअी शंका अुठावे, तो हम अुसे अुस जगह ले जाकर अग्निको प्रत्यक्ष दिखा कर विश्वास करा सकते हैं।

अवलोकनसे हम किसी पदार्थका साक्षात् — प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं; अुसके साथ स्मृतिके मिलनेसे वह प्रज्ञा हो जाता है; और प्रज्ञासे हम अिस अनुभवका नाम निश्चित करते हैं। अुसके बाद स्मृतिको ज्यादा ताजी करके यह सोचते हैं कि अिस अनुभव किये हुअे पदार्थके साथ दूसरा कौनसा पदार्थ अनिवार्य रूपसे होना चाहिये। यह तर्क या विचार ही अनुमान है। अनुमान सच्चा है या नहीं, अिसका आधार अुसकी प्रत्यक्ष

अनुभव करानेकी शक्ति पर होता है। प्रत्यक्ष अनुभव किये जानेवाले पदार्थको पहचाननेमें हमारी कोअी भूल हो रही हो -- अर्थात् हमारी प्रज्ञा अनृत हो, या अुसके साथ दूसरा कौनसा पदार्थ होता है, अिस सम्बन्धकी हमारी स्मृतिमें कोअी दोष हो -- तो हमारा अनुमान गलत होगा; यानी अुसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल सकेगा। दूसरे शब्दोंमें कहें तो धुअें और अग्निका अमुक तरहका साथ बार बार अनुभव किया होनेसे धुआं हो वहां अग्नि होनी चाहिये, अैसी जो अत्यन्त संभवनीय श्रद्धा बंधती है वह अनुमान है। सच्चा अनुमान अेक अैसी श्रद्धा है, जिसका आप प्रत्यक्ष प्रमाण पा सकते हैं। लेकिन अुसे पाना आप अिस क्षण जरूरी नहीं मानते, क्योंकि आपको अपने भूतकालके अनुभवोंकी स्मृति पर पूरा विश्वास है। यह अनुभव कहिये, तर्क कहिये, या श्रद्धा कहिये -- सब भूतकालके अनुभवके आधार पर बंधा हुआ आत्म-विश्वास है और अिसकी परीक्षा प्रत्यक्ष अनुभव लेकर की जा सकती है। जो अनुमान, तर्क या श्रद्धा प्रत्यक्ष अनुभव करानेकी कसौटी पर खरी न अुतरे वह सच्ची नहीं है। *

अब हम दूसरे प्रकारके तर्कोंका विचार करें।

---

* प्रमाणशास्त्रकी दृष्टिसे अितनी कसौटी काफी नहीं होती। हमने जिस आदमीको हमेशा काला कोट पहनते ही देखा हो, अुसे हम अेक जगह बैठा हुआ देखते हैं। और अुस परसे यह अनुमान करते हैं कि वह काला कोट पहनकर ही आया होगा। हमारा यह अनुमान प्रत्यक्ष जांच करने पर सच्चा साबित हो, तो भी प्रमाणशास्त्रकी दृष्टिसे यह कसौटी काफी नहीं है। प्रमाणशास्त्र तो अुसी अनुमानको सच्चा कहता है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण केवल आज ही नहीं, बल्कि किसी भी समय वैसा हो मिल सके। काले कोटका अनुमान दस बार सच्चा साबित हो, तो भी हर बार वह केवल संभवनीय वस्तु होता है, सच्चा अनुमान नहीं। अिसलिअे जो निशानी देखकर हम अनुमान करें, अुस निशानी और अनुमानके बीच किसी तरहका कार्य-कारण-भाव जैसा दृढ़ संबंध होना चाहिये।

देवताओंकी राज्य-पद्धति, अिन्द्रकी राजधानी, देवोंके भोग-विलास वगैराके बारेमें अलग अलग धर्मके लोगोंमें अलग अलग मान्यता चली आती है। देवलोकके अस्तित्वके बारेमें हमें श्रद्धा है और अुसके स्वरूपके बारेमें हमें अनुमान है।

धुअेंवाली जगह पर अग्नि होनी ही चाहिये, अैसी श्रद्धा बंधनेका कारण हमारा पहलेका यह अनुभव है कि जहां जहां हमने धुआं देखा है, वहां वहां अग्नि भी देखी है। और धुअेंकी निशानीसे हमें अग्निका अनुमान होता है।

देवलोकके अस्तित्वसे संबंध रखनेवाली श्रद्धा अिससे भिन्न प्रकारकी है। हम जो अच्छे कर्म करते हैं, अुनका फल हमें न मिला हो तो वह मिलना ही चाहिये, अैसी हमें अिच्छा और आशा भी होती है। हम अपने मनको अिस तरह समझाते हैं कि अिस लोकमें अगर हमें अच्छे कर्मोंका फल न मिला, तो अैसी कोअी जगह होनी चाहिये जहां वह हमें मिलेगा। और अिस आश्वासनमें से देवलोकके अस्तित्वमें हमारी श्रद्धा बंधती है। यह श्रद्धा होनेमें शायद अैसे दूसरे कारण भी हो सकते हैं। लेकिन अिन सारे कारणोंकी जांच करनेसे मालूम होगा कि अुनमें पहलेके अनुभव और किसी प्रकारकी प्रत्यक्ष निशानी कारण-रूप नहीं हैं।

अुसी प्रकार देवलोकके स्वरूपके बारेमें हम जो अनुमान बांधते हैं, वे हमारी आशाअें हैं। हमें यह दुनिया सब तरहसे अच्छी नहीं लगती। हमें सब अनुभव अच्छे ही मिलें अैसी अति तृष्णा होती है। किसे अच्छा और किसे बुरा कहना, अिस विषयमें हमारे संस्कार अलग अलग होते हैं। हमारी तृष्णाके अनुसार हमें जो अच्छीसे अच्छी लगे, वैसी किसी सृष्टिके साथ देवलोकको जोड़कर हम देवलोकके स्वरूपकी कल्पना करते हैं। अिसमें भी पहले अनुभव की हुअी किसी प्रत्यक्ष निशानीसे देवलोकके अिस स्वरूपका अनुमान हुआ है, अैसा नहीं कहा जा सकता।

कोअी शंकाशील मनुष्य धुअेंवाली जगहमें अग्नि होगी अैसा माननेको तैयार न हो, तो हम अुसे वहां ले जाकर प्रत्यक्ष अग्नि दिखा सकते हैं।

लेकिन देवलोकके बारेमें अुसे अिस तरहका विश्वास हम तब तक नहीं करा सकते, जब तक अुसके चित्त पर हमारा काबू न हो जाय।

अिस तरह देखनेसे मालूम होगा कि तर्कशक्तिका सच्चा क्षेत्र वही तर्क हो सकता है, जो पहलेके अनुभवों पर रचा गया हो, जिसके मूलमें कोअी प्रत्यक्ष निशानी हो और जिसका प्रमाण प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा प्राप्त किया जा सके।

अिस प्रकारका यह तर्क यदि वर्तमान कालकी किसी वस्तु या घटनाके बारेमें हो, तो अुसकी प्रत्यक्ष प्रतीति तुरन्त ही मिल सकती है; भविष्यकालके बारेमें हो, तो भविष्यमें मिलनी चाहिये। यह तर्क यदि परोक्ष भूतकालसे सम्बन्ध रखनेवाली किसी बातके बारेमें हो, तो अुसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करना असंभव है। अिसलिअे अैसे तर्कोंके बारेमें ज्यादासे ज्यादा सावधानी यही रखी जा सकती है कि वे अपने समयके अनेक अनुभवोंके आधार पर रचे हुअे हों। लेकिन चाहे जितनी सावधानी क्यों न रखी गअी हो, फिर भी परोक्ष भूतकालके बारेमें सिर्फ अितना ही कहा जा सकता है कि संभवतः अैसा हुआ होगा। निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। अुसी प्रकार प्रत्यक्ष जीवनके द्वारा अनुभव न किये जा सकनेवाले भविष्यके बारेमें संभवनीय आशा ही रखी जा सकती है।

अूपर दिया हुआ धुअें और अग्निका अुदाहरण बिलकुल सादा है। लेकिन हम जीवनमें तर्कशक्तिका अुपयोग बड़े कठिन विषयोंकी खोजमें करते हैं। जिन विषयोंका पहले अनुभव न किया गया हो, अैसे विषयोंकी खोजमें भी तर्कशक्तिका अुपयोग किया जाता है। अुदाहरणार्थ, रसायनशास्त्रियोंने कुछ न देखी हुअी धातुओंके अस्तित्वके बारेमें पहले तर्क किया और बादमें अुन्हें खोजा। ज्योतिषियोंने युरेनस और नेपच्युनको देखनेसे पहले अुनके अस्तित्वके विषयमें तर्क किया। अिस तरह तर्कशक्तिका व्यापार सीधा-सादा नहीं है।

फिर भी, अिस व्यापारका चाहे जितना विकास किया जाय और वह चाहे जितना पेचीदा हो तो भी, यदि यह चीज हमेशा ध्यानमें रखी जाय कि पग-पग पर अुसका आधार अनुभव पर ही होना

चाहिये और अुसके फलस्वरूप जो तर्क हो अुसे भी अनुभवसे सिद्ध करना ही चाहिये, तो अनेक वाद-विवाद, मत-मतांतर, भ्रम वगैराके झगड़े कम हो जायं और तर्कशक्तिका अुपयोग वकीलोंकी तरह अपने अपने पक्षोंके समर्थनके लिअे नहीं, बल्कि सत्यकी खोजके लिअे ही हो। अिस प्रकारकी तर्कशक्तिकी तालीम लेनेवाले या देनेवालेके लिअे कभी असन्तोषजनक नहीं साबित होती।

हम अपने मनमें बातचीत चलानेका जो व्यापार करते हैं, अुसे साधारण तौर पर हम कल्पना, विचार वगैरा नामोंसे पहचानते हैं। यह स्थूल दृष्टिसे ही सच है। सच पूछा जाय तो प्रज्ञाके अधिक अटपटे व्यापार द्वारा विचार पहले पैदा होते हैं और बादमें भाषा द्वारा वे कंठमें रखे जाते हैं। जिस तरह प्रज्ञाशक्तिको पहचाननेकी हद तक हमारी दृष्टि नहीं पहुंचती, अुसी तरह प्रज्ञाका व्यापार भी हमारे अवलोकनमें नहीं आता। और अुसका कारण यह है कि अपने अन्तःकरणकी शक्तियोंका अुपयोग सत्यकी शोधके लिअे ही करनेका और अपनी श्रद्धाओंको अनुभवसे सिद्ध करनेका हमारा आग्रह नहीं होता, बल्कि चित्तके रागद्वेषोंको पोसनेका ही हमारा आग्रह होता है।

विश्वासके लायक मनुष्यके (या शास्त्रोंके) शब्द किस हद तक माने जाने चाहिये, अिसका सम्बन्ध अिस विषयके साथ ही होनेसे अिस बारेमें दो शब्द कहकर मैं तर्कशक्तिका विषय पूरा कर दूंगा।

जिस प्रकार तर्क — अनुमानका आधार पहलेका अनुभव और वर्तमानमें प्रत्यक्ष देखी हुआी निशानी होती है, अुसी प्रकार दूसरेका शब्द भी अुसके द्वारा किया हुआ अनुभव ही है। हम सब संखियाको खुद खाकर या किसीको खिला कर यह विश्वास नहीं करते कि वह जहर है, लेकिन विश्वास करने लायक मनुष्योंके वचनमें विश्वास रखते हैं। क्योंकि हमें लगता है कि अुन्होंने अैसे अनुभव किये हैं और अिसी-लिअे यह कहा है। लेकिन जिस तरह अेकाध तर्कके बारेमें किसीको श्रद्धा न बैठे तो वह अुसे प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकता है, अुसी तरह यदि किसीको संखियाके जहर होनेके बारेमें विश्वास न बैठे तो अुसके लिअे संखिया खाकर अनुभव लेनेका दरवाजा खुला है। जिस प्रकार

तर्ककी अन्तिम कसौटी अनुभवसे की जानी चाहिये, अुसी प्रकार दूसरेके शब्दोंकी कसौटी भी अनुभवसे ही की जानी चाहिये। जो चीज अनुभवमें अुतारी जा सकती है, अुस चीजकी तरफ ले जाना ही शब्दप्रमाणका सच्चा अुपयोग है, और अितना ही अुसका सच्चा अुपयोग है।*

* पाठक देखेंगे कि मैं सच्ची और दृढ़ श्रद्धा अुसीको कहता हूं, जिसका आधार अनुभव पर हो। साधारण तौर पर हमें अैसा अुपदेश मिलता है कि, "श्रद्धा रखो तो अनुभव होगा।" अिसमें अनुभवसे पहले श्रद्धाकी मांग की जाती है। सच पूछा जाय तो अुपदेशकको अैसा कहना चाहिये : "आप अिसे मान न सकें तो अनुभव कीजिये। अुससे श्रद्धा बैठेगी। या धीरज रखिये, आपको यह अनुभव होगा; मेरे या दूसरे किसीके शब्दोंको ही मान लेनेकी जरूरत नहीं।" लेकिन "श्रद्धा रखो तो अनुभव होगा" यह वाक्य दूसरे अर्थमें सच भी है। वहां "श्रद्धा रखो" का अर्थ होगा "अनुभव लेनेके लिअे लगनसे परिश्रम करो।" अगर कोअी कहे कि 'सामने जहां धुआं निकलता है, वहां अग्नि होगी ही यह मैं नहीं मानता', और अपनी अिस मान्यताके लिअे अुसका अितना आग्रह हो कि विश्वास करनेके लिअे वह हमारे साथ आनेसे भी अिनकार करे, तो अुसे अनुभव नहीं कराया जा सकता। अुसे धुअेंकी जगह जानेका कष्ट करने जितनी श्रद्धा (या अश्रद्धाका अभाव) रखना चाहिये। लेकिन श्रद्धाके अिस अर्थमें बंधनका, निश्चयका या कृतार्थताका भाव नहीं है। दूसरे प्रकारकी (अनुभव-सिद्ध) श्रद्धामें निश्चय या कृतार्थताका भाव है। लेकिन "श्रद्धा रखो" के साधारण अुपदेशमें बंधनका भाव है।

११

बुद्धि

प्रज्ञा और तर्कके बीचका भेद अच्छी तरह समझ लिया गया हो, तो बुद्धिशक्तिको पहचाननेमें ज्यादा आसानी होगी। बुद्धिको मैंने निर्णय करनेवाली शक्ति कहा है।

तर्कशक्ति और बुद्धिके बीचका भेद पहले स्पष्ट होना चाहिये।

सामान्य भाषामें हम तर्कको भी निर्णय ही कहते हैं। धुअेंवाली जगह पर अग्नि है, अैसा तर्क होता है। अुसे हम सामान्य भाषामें अैसा भी कहते हैं कि 'वहां अग्नि है अैसा मैं निर्णय करता हूं'; और कहते हैं कि यह बुद्धिका व्यापार है।

लेकिन किसी जगह अग्नि है अैसा तर्क होनेके बाद, वहां आग लगी है अिसलिअे दौड़कर जाना चाहिये, यह निर्णय होनेके बीच दूसरे मानसिक व्यापार होते हैं। और ये बुद्धिके व्यापार हैं। जिसकी बुद्धि जाग्रत न हो, परंतु केवल तर्कशक्ति ही जाग्रत हो, अुसकी वृत्ति अग्नि है अैसा तर्क करनेके बाद शान्त हो जाती है।

कर्मेन्द्रियका व्यापार करनेकी प्रेरणा होनेके पहले अुपयोगमें आनेवाली शक्ति बुद्धि है, अैसा भी साधारण तौर पर कहें तो चल सकता है। कोअी काम करनेकी अिच्छा हो, अुसके पहले बुद्धिको जाग्रत होना पड़ता है। सही या गलत रूपमें बुद्धिका कार्य पूरा होनेके बाद ही कर्म करनेकी प्रवृत्ति होती है।

कुछ अुदाहरणोंसे यह चीज स्पष्ट हो जायगी। रास्तेमें जाते हुअे अेक नाला आता है। हम अुसे कूद कर लांघ जानेकी अिच्छा करते हैं। दो क्षणके लिअे खड़े रहकर हम नालेकी चौड़ाअी देखते हैं; आसपासकी जगह देखते हैं और फिर मनमें निश्चय करते हैं कि अमुक जगहसे नालेको लांघना ज्यादा आसान होगा। फिर हम वहां जाकर खड़े रहते हैं और कूदनेके लिअे कितना जोर लगाना होगा अिसका मनमें निर्णय करते

हैं। अिस निर्णयको हम भाषामें व्यक्त नहीं कर सकते, लेकिन अपने मनमें हम अुसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। निर्णय होते ही जरूरी जोर लगाकर हम छलांग मारते हैं। मनका यह सारा व्यापार ज्यादा अभ्याससे अेक क्षणमें हो जाय या अुसमें देर लगे, लेकिन अैसा कोअी व्यापार हरअेक काम करनेसे पहले हमें करना पड़ता है।

कभी हम अैसे निर्णय पर पहुंचते हैं कि नालेको कूदकर लांघने जितना जोर हम नहीं कर सकते; अिसलिअे हम लांघनेका प्रयत्न नहीं करते। अैसे निषेधात्मक निर्णयमें सच पूछा जाय तो बुद्धि पूरा काम नहीं करती, कितना जोर लगाना होगा अिसका निश्चय वह नहीं कर पाती, बल्कि अैसा अपक्व निश्चय या शंका करके रुक जाती है कि हम जितना जोर लगा सकते हैं वह नाला लांघनेके लिअे काफी नहीं होगा।

अेक दूसरा अुदाहरण लें।

असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ है। नेतागण सरकारी स्कूल-कॉलेज छोड़ देनेकी प्रेरणा करते हैं। हमारे मनमें कुछ विचार —आवेग पैदा होते हैं। मनमें कुछ — भाषा द्वारा वर्णन न किया जा सकनेवाला — निर्णय होता है और हम सरकारी स्कूल या कॉलेज छोड़ देते हैं। यह निर्णय करनेमें हम कुछ अपनी भावनाओंका निरीक्षण करते हैं; कुछ अपने आसपासकी परिस्थितियोंका निरीक्षण करते हैं; कुछ कल्पनायें करते हैं, और तर्क दौड़ाते हैं; अपनी ताकतकी जांच करते हैं; और अन्तमें छोड़नेके निर्णय पर आते हैं। यह निर्णय बुद्धिने सही किया हो या गलत, लेकिन अुसने कार्य किया है।

दूसरा आदमी अैसे ही सारे मनोव्यापार करनेके बाद अिस निर्णय पर आता है कि शालाका त्याग नहीं करना चाहिये; अितना ही नहीं, अिस बातका विरोध करना चाहिये; और वह अैसा करनेमें लग जाता है। अुसने भी सही या गलत तौर पर बुद्धिका व्यापार चलाया ही है।

लेकिन अेक तीसरे आदमीके मनोव्यापार किसी निर्णय पर नहीं पहुंचते। असहयोगकी प्रवृत्ति अुससे हो नहीं सकती; वह विरोध करने जैसी है, अिसका भी निर्णय वह नहीं कर पाता। कहा जा सकता है कि यहां बुद्धिका व्यापार अधूरा रहता है।

तात्पर्य यह कि बुद्धि निर्णय करनेवाली शक्ति है; और यह शक्ति अपना पूरा पूरा काम करे, तो किसी भी कर्ममें हमारी प्रवृत्ति* होनी चाहिये। यह मनकी शक्ति है, वाणीकी नहीं। प्राणीमात्रमें यह शक्ति कम-ज्यादा रूपमें खिली हुआी होती है।

यदि अिस शक्तिको ही हम बुद्धिके रूपमें पहचानें, तो अिस बुद्धिकी तालीम अत्यन्त अिष्ट वस्तु है।

अब तीन बातोंका विचार करना रह जाता है: १. पांडित्य और बुद्धिके बीचका भेद, २. बुद्धिकी तालीमके अंग, और ३. बुद्धिके निर्णयकी सत्यासत्यता जाननेका मार्ग अथवा बुद्धिशक्ति सही दिशामें ही काम करे अिस तरहकी अुसकी तालीम।

पहले हम पांडित्य और बुद्धिके बीचका भेद समझ लें।

मान लीजिये, दो भाआी आपसमें अिस प्रश्नकी चर्चा करते हैं कि जगत् सत्य है या मिथ्या। और चर्चाके अन्तमें अेक कहता है कि जगत् सत्य है और दूसरा भाआी कहता है कि जगत् मिथ्या है। मान लीजिये कि अिस चर्चामें दोनोंका आधार पुराने शास्त्र और आचार्योंके भाष्य हैं और अुन शास्त्रों और भाष्योंका अर्थ लगानेके फलस्वरूप ही अैसे दो पक्ष हो जाते हैं। किसी न किसी तरह अेक भाआी जगत्‌को सत्य ठहराकर अलग होता है और दूसरा भाआी जगत्‌को मिथ्या ठहराकर अलग होता है।

मान लीजिये कि अिस निर्णयके फलस्वरूप दोनोंके जीवनमें कोआी फर्क नहीं पड़ता। जैसा पहले चलता था वैसा ही दोनोंका जीवन चलता रहता है। जगत्‌को सत्य माननेवाला भाआी जगत्‌में चिरकाल तक कायम रहनेवाला कोआी लाभ प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करता और अुसे मिथ्या माननेवाला तुच्छ-सी चीजको भी छोड़ नहीं सकता।

---

* कोआी चल रहा काम करते-करते रुक जाना या जो काम किया जाता है वह ठीक ही है अैसा बार बार निर्णय होना और अिस कारणसे अुसमें ज्यादा दृढ़ता आना भी कर्ममें प्रवृत्ति ही कही जायगी। प्रवृत्तिके विस्तारकी अमुक मर्यादा ही होनी चाहिये, अैसा नहीं।

यह सारा व्यापार केवल पांडित्य है, बुद्धि नहीं। क्योंकि पहले तो दोनोंका व्यापार केवल शाब्दिक है। अुसमें जगत्‌को स्वयं जांचकर निर्णय करनेका प्रयत्न नहीं है। दूसरे, जिस शाब्दिक निर्णय पर वे पहुंचते हैं, अुसके फलस्वरूप भी अुनकी प्रवृत्तिमें कोअी फर्क नहीं पड़ता।

अैसा वाणी-विलास बुद्धिका निर्णय नहीं है।

अिसी तरह, मान लीजिये कि हम रसायनशास्त्री नहीं हैं, कभी प्रयोग करके देखनेका हमारा विचार नहीं है, और फिर भी हम अिस चर्चामें पड़ते हैं कि कोयला और हीरा अेक ही तत्त्व है या अलग अलग। दोनों अेक तत्त्व हैं, अैसा ठहराकर हम हीरेको सिगड़ीमें डालनेवाले नहीं हैं और दोनोंको अलग तत्त्व ठहराकर भी कोअी प्रयोग करनेवाले नहीं हैं। अतः हमारी यह चर्चा केवल पांडित्य मानी जायगी, अिसमें बुद्धि नहीं है।

बुद्धि प्रत्यक्ष आ पड़नेवाले कर्मको दिशा बतानेके लिअे — हमारे प्रत्यक्ष जीवनको मार्ग दिखानेके लिअे अुत्पन्न हुअी शक्ति है।

अब हम बुद्धिकी तालीमके अंगोंका विचार करें।

बुद्धिकी शक्ति प्रज्ञाशक्ति और तर्कशक्तिसे ज्यादा अूंची है। अिसलिअे यह कहनेकी जरूरत न रहनी चाहिये कि बुद्धिकी तालीमके लिअे प्रज्ञा और तर्कशक्तिकी तालीम जरूरी है। और प्रज्ञा तथा तर्कशक्तिमें जितना असत्य होगा, अुतना बुद्धिके कार्यमें दोष आवेगा ही, यह भी स्पष्ट है। अिसके अलावा, बुद्धिके व्यापारमें हमारी कर्तृत्वशक्तिका, भावनाओंका* तथा जीवनके साथ अेकरस बने हुअे आजसे पहलेके निश्चयों और अुनके कारण दृढ़ बने हुअे रागद्वेषोंका भी हिस्सा होता है।

प्रज्ञा और तर्कके दोष दूर हो गये हैं, अैसा मानकर हम अलग अलग अुदाहरणोंके साथ अिसका विचार करें।

अेक नाराज हुअे बालकको जिमानेके लिअे अुसकी मां मनाने जाती है। अेक तरफ तो बालकमें स्वाभिमान और क्रोधके विकार हैं,

* दया, प्रेम, स्वाभिमान, कुलाभिमान, मद, वैर, क्रोध, भय, अीर्ष्या आदि अच्छी-बुरी भावनायें हैं।

दूसरी तरफ वह भूखसे व्याकुल है, और तीसरी तरफ मांके प्रति अुसका प्रेम है। अुसे यह निर्णय करना है कि स्वाभिमानकी रक्षा की जाय या खाना खाया जाय। अन्तमें भूखकी व्याकुलतासे कर्तृत्वकी भावना कम हो जाती है, मांका मनाना विकारोंको शान्त कर देता है और वह खानेका निर्णय करता है।

अेक आदमी रातमें धुआं देखकर यह तर्क करता है कि फलां घरमें आग लगी है; लेकिन वह अंधेरेसे डरता है और अिस कारणसे कुछ न करके बैठा रहता है।

दूसरा आदमी डरता नहीं और वहां जाता है। जाते जाते अुसे मालूम होता है कि जिस घरको आग लगी है वह अुसके शत्रुका घर है; यह सुनते ही वह लौट आता है।

तीसरा आदमी जाता है और शत्रुके घरको आग लगी है यह देखता है। लेकिन अुसमें कुछ दयाकी, शत्रु पर कुछ अुपकार करके अुसे अुपकारके बोझसे दबानेकी भावना पैदा होती है; अिसलिअे वह मदद करने दौड़ता है।

अिन अुदाहरणोंसे यह मालूम होता है कि अलग अलग भावनाओं, कर्तृत्व-शक्ति और रागद्वेषके बलोंके कारण बुद्धिके निर्णयोंमें कैसा फर्क पड़ता है।

कुछ दूसरे ज्यादा अटपटे अुदाहरण लें।

'क' और 'प' अेक कपड़ेकी दुकानमें जाते हैं। दुकानदार हाथ-कते सूतकी अेक सादी धोती बताता है। 'क' को लगता है कि खादी पहनना अच्छा है, लेकिन अुसे बारीक धोती ही चाहिये; अिसके अलावा अुसे जामुनी रंगकी आमकी किनारीवाली धोती पहननेका शौक है। 'प' रंग, डिजाअिन और पोतके बारेमें अुदासीन है। लेकिन अुसे 'गांधी-मत' से नफरत हो गअी है, अिसलिअे अुसने यह हठ पकड़ लिया है कि गांधी कहे वैसा हरगिज न किया जाय। नतीजा यह है कि अलग अलग विचार होते हुअे भी दोनों हाथ-कते सूतकी धोती नहीं खरीदते।

और अेक अुदाहरण लीजिये।

'व' और 'ह' रेलमें यात्रा कर रहे हैं। अेक आदमी डिब्बेके भीतर आनेकी कोशिश करता है। अुसके चेहरे और पोशाकसे दोनों यह अनुमान करते हैं कि वह कोअी अछूत जातिका आदमी है लेकिन सरकारी अफसर है। 'व' को अछूतके स्पर्शसे कोअी अेतराज नहीं है और अस्पृश्यता-निवारणके लिअे अुसका आग्रह भी है। 'ह' अिसके बहुत खिलाफ है। लेकिन अिसके साथ ही 'व' अिस बातकी बड़ी चिन्ता रखता है कि खुदको बैठनेकी तकलीफ न हो। और फिर अुसने अेक अैसा सिद्धान्त बना लिया है कि अफसरोंके सामने अकड़कर ही रहना चाहिये। अिसके विपरीत, 'ह' खुद चाहे जितना कष्ट अुठाकर भी किसीके लिअे जगह कर देनेवाला है; और अफसरोंके लिअे अुसके मनमें अैसा भय रहता है कि वह 'सत्ताके सामने सयानपन' नहीं दिखा सकता।

फलस्वरूप 'व' अस्पृश्यता-निवारणमें विश्वास रखते हुअे भी अपनी सुविधाके खयालसे और अफसरीसे द्वेष रखनेके कारण बैठनेवालेको अंदर आनेसे रोकनेका प्रयत्न करता है; और 'ह' अस्पृश्यताको धार्मिक वस्तु मानते हुअे भी सौजन्य और भयके कारण अुसे आनेसे नहीं रोकता।

अिस तरह रागद्वेष, पहलेके निश्चित सिद्धान्त और कर्तृत्व — ये तीनों बुद्धिके निर्णयमें हाथ बंटाते हैं। अिनमें से किसी अेकमें अगर कोअी दोष होगा, तो भी निर्णयमें दोष आयेगा। अिसके अलावा, भीतर आनेवाला यात्री अछूत है या सरकारी अधिकारी है, यह अनुमान करनेमें कोअी गलती हुअी, तो भी निर्णयमें दोष आवेगा।

अिसलिअे बुद्धिकी तालीमका अर्थ होगा प्रज्ञा और तर्कशक्तिकी तालीमके अलावा हमारे रागद्वेषोंकी शुद्धि, पूर्वसिद्धान्तोंकी बार-बार परीक्षा और कर्तृत्व-शक्तिकी वृद्धि।

अब बुद्धि सही दिशामें ही काम करे, अिस प्रकारकी अुसकी तालीमका मार्ग विचारना चाहिये। यह प्रश्न अितना बड़ा है कि अिसका विचार दूसरे लेखमें करना ही ठीक होगा।

१२

सत्य निर्णय

अब बुद्धि सही दिशामें ही काम करे, अिस प्रकारकी अुसकी तालीमका मार्ग विचारें।

बुद्धिकी अेक मर्यादा पहलेसे ही जान लेना आवश्यक है। मैं अेक बार फिर यह याद दिला दूं कि बुद्धिका अर्थ है निर्णय करनेवाली शक्ति। किसी प्रसंग पर मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह निर्णय करनेके लिअे जो मानसिक व्यापार होते हैं, वे बुद्धिके व्यापार हैं। चूंकि आ पड़नेवाले अवसर पर ही बुद्धि काम करती है, अिसलिअे अुसके निर्णयोंको तीनों कालोंके लिअे सत्य मानना गलत होगा। स्थूल व्यवहारके निर्णय तीनों कालोंके लिअे अेकसे होंगे ही, अैसा नहीं कहा जा सकता। आज अेक बालकको मैं खेलनेके लिअे प्रोत्साहन दूं और कल अुसे खेलनेसे रोकूं। आज मैं अेक बालकको आग्रहसे खिलाअूं और कल अुसे ही भूखा रहनेको समझाअूं। आज अुसे विद्यामें अेकाग्र होनेको कहूं और कल कर्ममें अेकाग्र होनेको कहूं। आज मैं छुतहे रोगके रोगीके संसर्गसे अपनेको बचाअूं और कल अुसी रोगीकी सेवा-शुश्रूषामें लग जाअूं। आज जिस देशमें सरकार जुल्म करती हो अुस देशको छोड़ देनेका निर्णय सही माना जा सकता है, और कल अुस जुल्मको सहकर भी देशमें रहनेका निर्णय सही माना जा सकता है। अिस तरह बुद्धिके सारे निर्णय विशेष अवसरोंके लिअे ही ठीक माने जा सकते हैं; और अवसरके भेदोंके कारण अैसे अेक-दूसरेके विरुद्ध निर्णय भी सही हो सकते हैं।

लेकिन अेक ही विषयमें अलग अलग आदमी अलग अलग निर्णयों पर पहुंचते हैं, तब दोनों निर्णय कैसे सही हो सकते हैं, यह प्रश्न सोचने जैसा है। गांधीजी स्वराज्यकी सिद्धिके लिअे अेक मार्ग बतावें और श्री केलकर शायद दूसरा और अुससे अुलटा मार्ग बतावें; गांधीजी हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकताके लिअे अेक मार्ग सुझावें और श्रद्धानन्दजी या किचलू दूसरा मार्ग सुझावें; गांधीजी अस्पृश्यता-निवारणको धर्म कहें

और शास्त्री लोग अुसे अधर्म कहें; गांधीजी चरखेके गुणगान करें और कविवर रवीन्द्रनाथ अुसका मजाक अुड़ायें। तो ये दोनों प्रकारके निर्णय अेक ही समयमें सही कैसे हो सकते हैं?

बुद्धिका कार्य किस तरह होता है, अिस विषयमें पिछले प्रकरणोंमें जो कुछ कहा गया है, अुसे देखनेसे जान पड़ेगा कि जहां जहां मत-भेद है, वहां वहां प्रज्ञा (अवलोकन, अनुभव और तुलना), तर्क, राग-द्वेषों, पूर्वसिद्धान्तों और कर्तृत्व-शक्तिके भेद मौजूद है।

अिनमें से प्रज्ञा और तर्कके दोष प्रमाणोंसे दूर किये जा सकते हैं; कुछ हद तक रागद्वेषों और पूर्वसिद्धान्तों पर भी अिसका असर पड़ेगा। लेकिन केवल प्रमाणोंसे रागद्वेषों, पूर्वसिद्धान्तों और कर्तृत्व-शक्तिके भेद टाले नहीं जा सकते। अैसी परिस्थितियोंमें साधारण मनुष्य कैसे जाने कि किसके निर्णयोंके पीछे रहनेवाले रागद्वेष विशुद्ध हैं, पूर्वसिद्धान्त अचूक हैं और कर्तृत्व-शक्तिवाले हैं? और वह अपने निर्णयोंकी सत्यता या असत्यताकी जांच किस तरह कर सकता है?

अिन प्रश्नोंके अुत्तर देना भी बड़ा कठिन है; क्योंकि मैं किसी अेक रीतिके सही होनेका निर्णय करूं, तो अुस निर्णयके पीछे मेरे राग-द्वेषों, पूर्वसिद्धान्तों और कर्तृत्वका रंग अवश्य होगा। अिसलिअे जिस निर्णयको मैं सत्य कहूं, अुसे अपने रागद्वेषादिकी दृष्टिसे ही सत्य कह सकता हूं। अिसलिअे अभी तकके लेखोंमें जिस तटस्थ-वृत्तिसे चर्चा करना संभव था, वह तटस्थता अब नहीं रह सकती। जिसके साथ मेरे राग-द्वेषादिका मेल बैठे, अुसीको मेरे निर्णय सत्य मालूम हो सकते हैं। दूसरेको न भी मालूम हों।*

विकास-विचारके प्रकरणमें हम देखेंगे कि विकासके दो महत्त्वपूर्ण प्रकार हैं: १. प्राणका सूक्ष्म विकास; और २. गुण-विकास। और दूसरे

* क्या अिसीसे 'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।' कहना पड़ा होगा? 'तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।' अैसा प्रतिपादन करने पर भी अिसी श्लोकका अर्थ बैठानेमें और अुस परसे गीताका रहस्य खोजनेमें कितना मतभेद है!

प्राणियोंसे मनुष्यकी विशेषता अुसके गुण-विकासके कारण ही है। सब मनुष्य अेक ही योनिके प्राणी हैं, फिर भी अुनमें जो अपार विविधता देखी जाती है, अुसका मुख्य कारण गुण-विकासका भेद है। मनुष्य मनुष्यतामें कितना आगे बढ़ा है, यह अुसके गुण-विकास परसे जाना जा सकता है।

गुणोंका बुद्धि पर सीधा असर पड़ता है। मानव-जाति पर अपार प्रेम होनेके कारण ही गौतम बुद्ध 'यह ब्राह्मण है और यह शूद्र' के बंधनोंको नहीं मान सके। दीनबंधु अेन्ड्रूज अिसी कारणसे अपने जातिभाअियोंके ही पक्षमें नहीं रह सकते। अेक-दो शुभ गुणोंका भी खूब विकास हो जाय, तो बुद्धिको बंधनमें रखनेवाले आवरण खुल जाते हैं। फिर वह संकुचित क्षेत्रमें ही विहार नहीं करती; वह विशाल दृष्टिसे विचार करने लगती है। जब तक गायको हम भक्ष्य वस्तु मानते हैं, स्त्रीको विषय-वासनाकी तृप्तिका साधन मानते हैं या दोनोंको अपना गुलाम मानते हैं, तब तक गोरक्षा, स्त्रियोंकी अुन्नति या मूक प्राणियों पर दयाकी भावना रखनेके विषयमें हम अमुक मर्यादामें रहकर ही विचार कर सकते हैं। अधिकसे अधिक हमारी बुद्धिकी दौड़ हमारा कार्य सिद्ध करने तक और अुनका दुःख थोड़ा कम करने तक ही सीमित रहेगी। अिन भावनाओंसे मुक्त होकर जब हम सबके प्रति मैत्री, करुणा या समानताकी भावनाको दृढ़ बनायेंगे, तब हम अिनसे संबंध रखनेवाले प्रश्नोंके बारेमें जो विचार करेंगे, वह बिलकुल भिन्न प्रकारका होगा।

जब दो आदमियोंके बीच झगड़ा होता है, तब अुसका फैसला करानेके लिअे किसी तटस्थ और निष्पक्ष आदमीका सहारा लिया जाता है। हम जानते हैं कि वह आदमी जितना अधिक तटस्थ होगा, अेक या दूसरेकी जीतके बारेमें जितना अधिक अुदासीन होगा, अुतना ही वह फैसला करनेके लिअे अधिक योग्य माना जायगा। अुसकी बुद्धि राग-द्वेषसे मुक्त होनेके कारण सत्य खोजनेके लिअे अधिक अनुकूल होगी। अिस तरह सत्य खोजनेके लिअे मनकी वृत्तिका तटस्थ होना बहुत जरूरी है। तटस्थ वृत्तिका अर्थ है पूर्वग्रहसे अधिकसे अधिक मुक्त स्थिति; किसी विशेष प्रकारके निर्णयका आग्रह न रखना।

लेकिन तटस्थ मनुष्य समभावी (सहानुभूतिवाला) या असमभावी हो, तो भी निर्णयमें बड़ा फर्क पड़ जाता है। दो आदमियोंके बीच झगड़ा हो और अुसका फैसला करनेका काम मुझे सौंपा जाय, और यदि अुनमें से अेकके प्रति मेरी सहानुभूति या समभाव हो, तो मैं पूरा पूरा तटस्थ नहीं रह सकता; दोनोंके प्रति सहानुभूति या सम-भावका मुझमें बिलकुल अभाव हो — अुदाहरणके लिअे, मेरा यह खयाल बन गया हो कि दोनों झूठे या तरकटबाज हैं, तो मैं तराजूमें तौलने जैसा शुद्ध न्याय भले दे सकूं, लेकिन अुस न्यायसे दोनोंमें से किसीका या मेरा समाधान नहीं होगा। यह निर्णय विचारदोषसे मुक्त लग सकता है, परंतु अुससे मेरी भावनाको संतोष नहीं होगा; और अिस कारणसे अुसमें कोअी न कोअी दोष महसूस हुअे बिना नहीं रह सकता। लेकिन यदि दोनोंके प्रति मेरी अेकसी समभावना या सहानुभूति हो, दोनोंके लिअे मेरी हितकी ही दृष्टि हो, तो मेरा निर्णय कुछ दूसरे ही प्रकारका होगा। अुसमें तराजूका स्थूल न्याय भले न हो, परंतु मौलिक न्याय अवश्य होगा। अिस प्रकार जिस वस्तुके बारेमें निर्णय करना है, अुसके बारेमें अुस समय मुझमें जो गुण होगा, अुसका मेरे निर्णयमें महत्त्वपूर्ण भाग होगा।

तटस्थता और समभावका अभाव कअी तरहसे हो जाता है। दूसरे गुणोंका बल अिन दोनों पर असर डालकर बुद्धि पर परोक्ष असर डालता है। केवल अेक विषयका रस भी अुस विषयके बारेमें तटस्थ भावसे निर्णय करनेमें बाधा पहुंचाता है। जैसे, अेक आदमीको गायनमें अत्यन्त रस है। अब यदि अुसकी बुद्धि अुसे अैसे निर्णयोंकी तरफ खींचे, जिनसे गायन-कलाका महत्त्व घट जाय, तो वह अिसे सहन नहीं कर सकता। अिसी तरह यदि अुसे गायन-कलाका खंडन करनेमें ही रस आने लगे, तो भी अिस विषयका वह शुद्ध विचार नहीं कर सकेगा।

यह अिस बातका विवेचन हुआ कि बुद्धिके निर्णयों पर गुणोंका किस तरह असर पड़ता है। लेकिन बुद्धिके सूक्ष्म होनेमें भी गुणोंका विकास ही प्रधान साधन होता है। सामान्यतः हमारा यह खयाल होता

है कि बाह्य जगत्के अध्ययन, अवलोकन और अनुभवसे बुद्धि सूक्ष्म बनती है। हम बहुत बार देखते हैं कि अैसे मनुष्य भी सूक्ष्म विचार कर सकते हैं, जिनका चरित्रबल बहुत बढ़ा हुआ नहीं होता। और अिसलिअे हमें अैसा नहीं लगता कि गुण-विकास और बुद्धि-विकासके बीच कोअी संबंध है। अुलटे, हमारा यह खयाल है कि बुद्धिका संबंध अेकाग्रताके साथ है; और अैसा माना जाता है कि अेकाग्र होनेके लिअे जितने गुणोंकी आवश्यकता है, अुतने गुण अेकाग्रताकी सिद्धि होने तक ही वने रहें तो भी काम चल सकता है।

किन्तु यह सूक्ष्मता अुस अर्थमें बुद्धिका विकास नहीं है, जिस अर्थमें मैं अुसे बुद्धिका विकास मानता हूं। यह तो प्रज्ञाशक्ति (अनुभव और तुलनाशक्ति) और तर्कशक्तिकी ही सूक्ष्मता है । अमुक अवसर पर किस तरहका व्यवहार करना चाहिये, यह निर्णय करनेवाली शक्ति मेरे अर्थमें बुद्धिशक्ति है; और अिस शक्तिका विकास गुणोंके विकासके बिना असंभव है।

अेकाग्रता, वृत्तियोंके निरोध आदिके अभ्याससे मैं प्रज्ञा और तर्ककी सूक्ष्मता साधकर क्षणभरके लिअे भले प्रत्यक्ष रूपसे अद्वैत तत्त्वको जानूं, आत्माकी अमरताको पहचानूं, सत्य और अहिंसाकी पराकाष्ठाकी कल्पना करूं, सत्याग्रहका सिद्धान्त समझूं, या साम्यवादी (सोशलिस्ट) बन जाअूं; अुससे मैं भले वेदान्तके तत्त्वको सिद्ध कर सकूं, सत्य और अहिंसाकी पराकाष्ठा दिखानेवाली कथा रच सकूं, सत्याग्रहकी मीमांसा लिख सकूं, या साम्यवाद पर ग्रंथकी रचना कर सकूं; लेकिन मेरे और पड़ोसीके बालकोंके बीच अभेदभावसे व्यवहार करनेमें, पड़ोसीकी सहायता करते समय मेरे शरीरको खतरेमें डालनेमें, कसौटीके समय सत्य पर डटे रहनेमें, परेशान करनेवाली बिल्ली या कुत्ते पर नाराज न होनेमें, विरोध टालनेके लिअे सत्याग्रह करनेमें या मेरे नौकरको अपनी बराबरीमें बैठने देनेमें तर्कशक्ति या प्रज्ञासे किये अथवा माने हुअे विचार या कल्पनायें बहुत सहायक नहीं होतीं। केवल प्रेम, दया, क्षमा, सहानुभूति, तेज, सत्य, प्रामाणिकता, शौर्य आदि विशिष्ट गुणोंका अुत्कर्ष ही अिसमें सहायता करता है।

बावलाकी* हत्या होते समय जिन अंग्रेजोंने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर अुसे बचानेका प्रयत्न किया, अुन्होंने आत्माकी अमरता या अद्वैत सिद्धान्तके बारेमें शायद स्वप्नमें भी विचार नहीं किया होगा। भंगीके बच्चेको स्तनपान करानेवाली स्वर्गवासी मलबारीकी मांने साम्यवादका शब्द भी कभी सुना न होगा। प्रसूतिके समय कुत्तीकी अपनी पुत्रीके जैसी सार-संभाल करनेवाली और बीमार बंदरीकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाली मेरे मित्रकी अेक पत्नी हैं; अुनकी तर्कशक्ति या प्रज्ञाशक्ति सूक्ष्म है, अैसा कोअी नहीं कह सकता। "मैं झूठ नहीं बोल सकता, मैंने पेड़ काटा है," यह वाक्य जार्ज वाशिंग्टन जिस अुम्रमें बोला था, अुस अुम्रमें अुसने सत्यकी महिमाका शायद ही विचार किया होगा। लेकिन अैसे अवसरों पर कैसा व्यवहार करना चाहिये, अिसका निर्णय ये सब लोग विशिष्ट गुणोंके विकाससे ही तुरन्त कर सके।

जिस प्रकार कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके कार्य कर्म हैं, अुसी प्रकार अन्तःकरणके कार्य भी कर्म ही हैं। अेक ही तरहके कर्मके अभ्याससे जिस तरह कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंमें कुशलता आती है, प्रज्ञा और तर्कशक्तिमें कुशलता आती है, अुसी तरह बुद्धिमें भी कुशलता आती है। जिस मनुष्यने जिस गुणका खूब विकास किया होगा, अुसके प्रत्येक निर्णयमें अुस गुणकी छाप स्वभावतः दिखाअी देगी। जिसने सत्यकी खूब सावधानी रखी होगी, अुसके बिना सोचे-विचारे किये हुअे निर्णयोंमें भी सत्य या सत्यकी ओर झुकाव दिखाअी देगा। जिसने सत्यके लिअे कम चिन्ताकी होगी, अुसके खूब सोच-विचार कर किये हुअे निर्णयोंमें भी शंका और अनिश्चितता मालूम होगी। जिसने जान-बूझकर असत्यका ही आचरण किया होगा, अुसके निर्णयों पर असत्यकी, लुच्चाअीकी छाप मालूम पड़ेगी। जिसने परोपकारके गुणका

* कुछ बरस पहले बम्बअीमें बावला नामक अेक मुसलमान गृहस्थकी रास्ते पर दौड़ती हुअी मोटरमें हत्या हुअी थी। अुस समय प्राणोंकी बाजी लगाकर भी अेक-दो अंग्रेजोंने अुसे बचानेका प्रयत्न किया था। अिस हत्यामें अिन्दौरके राजा तथा बड़े अधिकारियोंका हाथ मालूम हुआ था, और अिन्दौरके राजाको गद्दी छोड़नी पड़ी थी।

विकास किया होगा, अुसके अनायास किये हुअे निर्णयोंका झुकाव भी दूसरेके हितकी ओर ही होगा। जिसने स्वार्थ साधनेका ही ध्यान रखा होगा, अुसके निर्णयोंमें अपना हित देखनेकी ही दृष्टि सर्वोपरि रहेगी।

जिस मनुष्यमें कोअी गुण अत्यन्त विकसित हुआ होगा, अुस मनुष्यकी बुद्धि अैसी हो जाती है कि वह अुस गुणका पोषण करनेवाला चित्त-प्रकृतिका नियम (अुस गुणका पोषण करनेवाली फिलासफी) तुरन्त समझ सकता है। जिसने लोभको बढ़ाया होगा, वह पूंजीवादी अर्थशास्त्रके सिद्धान्त अच्छी तरह समझ सकेगा और अुसीमें अुसे फिलासफीकी पूर्णता लगेगी; 'धनाद्धर्मस्ततः सुखम्' यह अुसे सबसे बड़ा सिद्धान्त मालूम होगा। जिसने अिन्द्रियोंके विषयोंके आनन्दका पोषण किया होगा, वह विज्ञान द्वारा खोजे हुअे साधनों, कलाओंकी महिमा तथा अुसका पोषण करनेवाली दलीलोंको तुरन्त समझ सकेगा। और जीवनके विकासका यही पहलू अुसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जान पड़ेगा। जो दर्शन (तत्त्वज्ञान) भोग और मोक्ष दोनोंका समर्थन करता है, वह दर्शन अुसे सर्वांगपूर्ण लगेगा। सोने और कला-कौशलसे सजे हुअे देव-मंदिरों और सिंहासनों, फूलोंसे सुशोभित झूलों और झांकियों, अनेक प्रकारके भोजनों और वस्त्राभूषणों तथा दीपमालाओं, ध्वजा-पताकाओं आदिकी रचनामें वह भक्तिमार्ग देखेगा। देलवाड़ाके मंदिरोंसे जैन धर्मका और अजंताकी गुफाओंसे बौद्ध धर्मका अुत्कर्ष हुआ मानेगा। अुसी मार्गसे वह अपने संप्रदायका अुत्कर्ष साधनेका प्रयत्न करेगा। अनन्त काल तक लक्ष्मीनारायणका चतुर्भुज पार्षद या सेवक बनने, गोलोककी कृष्णलीलामें भाग लेने, या अक्षरधामके संमेलनमें जाकर बैठनेका मोक्ष अुसे पसन्द आयेगा। जिसने परोपकार-वृत्तिका विकास किया होगा, अुसे दानधर्म, सेवाधर्म और दयाधर्मकी महिमा गानेवाले बुद्धिवाद सच्चे लगेंगे। जिसने असत्य, लुच्चाअी वगैराका पोषण किया होगा, अुसे 'दुनिया चलाना मक्रसे'* अिस सूत्रमें ही सारे सिद्धान्तोंका सार मालूम होगा।

जिस मनुष्यने जिस गुणका थोड़ा बहुत भी पोषण नहीं किया होगा, अुसे अुस गुणसे अुत्पन्न हुआ दर्शन — वह चाहे जितना विद्वान

---

* छल-कपटसे।

हो तो भी —— समझमें नहीं आयेगा। असत्यमें निष्ठा रखनेवाले मनुष्यको हरिश्चन्द्रका या राजपूतोंका व्यवहार मूर्खताका प्रदर्शन लगेगा; लोभी आदमीको देशबंधु दास या जमनालाल बजाजके त्यागमें व्यवहार-ज्ञानका अभाव मालूम होगा; व्यवहार-कुशल कहे जानेवाले मनुष्योंको संत तुकाराम या रामकृष्ण परमहंसके बारेमें पागलपनका शक होगा। आर्य-दर्शनके अेक प्रसिद्ध आचार्यने मुझे अपनी संस्थाका परिचय देते हुअे बताया कि हमारा अुद्देश्य आर्य-दर्शन और पाश्चात्य दर्शनका तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन करके दुनियाके सामने आर्य-दर्शनकी श्रेष्ठता सिद्ध कर दिखानेका है। बादमें सत्याग्रह आश्रमके बारेमें बात चलने पर अुन्होंने कहा: "आपको बुरा न लगे तो मैं आपसे कहूं कि मैं गांधीजीका सत्य और अहिंसाका सिद्धान्त नहीं समझ पाता। मैं तो 'शठं प्रति शाठ्यम्' में विश्वास रखनेवाला हूं। गांधीजीके सारे विचार अव्यावहारिक होते हैं। आप गुजराती लोग भावुक होते हैं। आप अैसी बातोंमें विश्वास कर सकते हैं। परंतु हम तो व्यवहार-सिद्धिकी तरफ ध्यान देनेवाले ठहरे; हमारे गले गांधीजीके सिद्धान्त नहीं अुतरते।" तर्कभेदके पीछे भी गुणभेद रहता है, अिसका यह आचार्य मुझे ज्वलंत अुदाहरण मालूम पड़ा। जिन गुणोंका विकास न हुआ हो, अुन गुणोंके परिशीलन-मात्रसे विकास पानेवाली बुद्धि अुन गुणोंसे संबंध रखनेवाले दर्शनको समझ ही नहीं सकती। जिसके पास अुन गुणोंका थोड़ा भी बल होगा, वह अुनकी दलीलको समझ सकेगा; और जिसमें ये गुण परिपक्व हो गये होंगे, वह अुन पर अमल कर सकेगा।

अिसलिअे यद्यपि अैसा कहनेमें धृष्टता या साहस हो सकता है कि अमुक पुरुषके विचार या अमुक निर्णय सत्य ही हैं, असत्य नहीं; फिर भी यथाशक्ति सत्य निर्णयोंकी तरफ झुकनेका मार्ग अनिश्चित नहीं है। जो सत्यका ही पालन करनेका प्रयत्न करता है,* सत्यकी ही जिज्ञासा

* सत्य क्या अैसी कोअी निश्चित वस्तु है, जिसका पालन किया जा सके? सारे सत्य सापेक्ष हैं और जो मनुष्य यह दावा करता है कि 'मैं करता हूं वही सत्य है', वही असत्यवादी है। अेक दृष्टि अेक मनुष्यको सत्य लग सकती है, और दूसरेको असत्य लग सकती है;

रखता है, अुसकी तर्कशक्ति और प्रज्ञा सत्यको ही परखनेकी तरफ और बुद्धि सत्य निर्णय करनेकी तरफ ही झुकी हुआी होगी। यह

आज सत्य लग सकती है और कल असत्य। अिसलिअे किसके पालनका आग्रह रखा जाय? अैसी शंका कुछ लोग अुठाते हैं। सच पूछा जाय तो अैसी कठिनाअी पैदा करनेकी जरूरत नहीं है। जो चीज आज मुझे सत्य या असत्य लगती है, वह मेरे लिअे आज वैसी ही है। आज मेरे लिअे मन, वाणी और कर्मसे व्यवहार करनेका नियम अिस मान्यताके अनुसार ही हो सकता है। अिस बारेमें दूसरेका दृष्टिकोण चाहे जो हो, और कल मेरा दृष्टिकोण भी भले बदल जाय। जो वस्तु मुझे सत्य मालूम हो, वह दूसरेको यदि असत्य लगती हो, तो अुस परसे अुस वस्तुके बारेमें ज्यादा गहरा विचार करनेका मुझे संकेत मिलता है। क्योंकि संभावना यह है कि दोनोंमें से किसी अेककी दृष्टि गलत या अधूरी हो। अिस कारणसे अैसे मामलोंमें अपनी दृष्टिके अनुसार आचरण करानेके लिअे मैं शायद किसी पर दवाव नहीं डालूंगा। फिर, यह याद रखकर कि आज तकके समयमें मेरे विचारोंमें कितना ही परिवर्तन हो गया है, और यह भी याद रखकर कि अुत्तम गुणोंके विकासके बिना तर्कशक्तिसे किये हुअे विचारोंको स्वीकार कर लेना बहुत महत्त्व नहीं रखता, अपने मतोंके अनुसार किसीको तालीम देनेका या अुनमें किसीको शामिल करनेका मैं आग्रह नहीं रखूंगा। आवश्यक हुआ तो अपना दृष्टिकोण समझानेका मैं प्रयत्न करूंगा, लेकिन अुसे स्वीकार करानेका आग्रह रखना अनुचित माना जायगा। और यदि किसी कारणसे मुझे बोलना ही पड़े, तो मुझे जो गलत लगता हो अुसे गलत ही कहना होगा। जो चीज मुझे असत्य लगती है अुसे मैं 'अज्ञानी लोगोंके संतोषके लिअे', 'बालकोंके मनोरंजनके लिअे' या 'थोड़ी देरके लिअे बालक बन जानेकी अिच्छासे' अिस तरह नहीं पेश कर सकता कि लोग अुसे सत्य समझ लें। यदि मुझे अैसा लगे कि दूसरे लोग मेरा दृष्टिकोण नहीं समझ सकेंगे, या अुनमें अैसा बुद्धिभेद पैदा होगा कि बड़े सत्यको समझनेकी योग्यताके अभावमें वे छोटे सत्यको भी छोड़ देंगे, या समझ न सकनेके कारण मेरे आचरणसे अुन्हें दुःख होगा, तो मुझे कभी मौन रखनेका या अुनसे अलग

प्रश्न अलग है कि वह सत्य प्रिय है या अप्रिय, सुख देनेवाला है या दुःख, हर्ष अुत्पन्न करनेवाला है या शोक तथा अुससे प्रेय सिद्ध होता है या नहीं। लेकिन जो लोग सत्यको ही श्रेय मानते हों और श्रेयको

हो जानेका रास्ता भी अख्तियार करना पड़े। यदि मेरे दृष्टिकोणमें सत्य होगा, तो कभी न कभी लोगोंको अुसे स्वीकार करना ही पड़ेगा; और यदि वह सत्य न हो तो अुसमें रही भूलका नुकसान मुझे अकेलेको ही अुठाना होगा, अैसी मेरी निष्ठा होनी चाहिये। प्रचारके लिअे नहीं, बल्कि अेक शोधकके नाते ही मैं कोअी विचार पेश कर सकता हूं। मुझे जो मिथ्याचार या मिथ्या-भाषण लगता हो, अुसका मैं समर्थन नहीं कर सकता। अमुक दृष्टिवालेको वह मिथ्या न लगे यह मैं समझ सकता हूं। परंतु यदि अुस दृष्टिको बदलना कठिन समझूं, तो अुसके साथ मैं खंडन-मंडनके वाद-विवादमें नहीं पड़ूंगा।

अिसके सिवा, असत्य शब्द दो अर्थवाला है। सत्यसे अुलटा या झूठा, मिथ्या भी असत्य कहा जाता है और अधिक सत्यकी दृष्टिसे कम सत्य भी असत्य कहा जाता है। अेक वस्तु अेक ही समयमें झूठी और सच्ची दोनों नहीं लग सकती। जिस समय मुझे किसी कमरेमें सांपका भास हुआ हो, अुस समय यदि मैं किसीसे कहूं कि अिस कमरेमें सांप है, तो मेरा कथन झूठ नहीं है। लेकिन अुस भासको मिथ्या जाननेके बाद किसीको डरानेके लिअे या विनोदके लिअे मैं अैसा कहूं तो वह झूठ होगा। लेकिन लोहेके फावड़े, हथौड़ी और कुदाली तीनोंको मैं भिन्न कहूं और तीनों लोहा ही हैं अिस दृष्टिसे अुन्हें अेक कहूं, तो यहां मैं न्यून या स्थूल सत्यका और अधिक या सूक्ष्म सत्यका भेद करता हूं। फावड़े, हथौड़ी और कुदालीकी अेकता सूक्ष्म सत्य है; और अुनका भेद तो स्थूल रूपमें सत्य ही है। अुनकी अेकता और भेद दोनोंको मैं अेक ही समयमें ग्रहण कर सकता हूं। आवश्यकताके अनुसार कभी मैं अुनके भेद पर जोर दे सकता हूं और कभी अुनकी अेकता पर। अेकता पर जोर देनेके समय मैं अैसा भी कह सकता हूं कि भेद सब औपाधिक, गौण या मिथ्या (नगण्य, immaterial) हैं।

ही प्रेय मानते हों, अुन्हें अिस श्रेय और अुस श्रेयमें जितना प्रेय होगा अुतना तो मिलेगा ही।

अिसी प्रकार अमुक पुरुषके विचार सच्चे ही हैं अैसा कहना धृष्टतापूर्ण हो सकता है। परंतु यदि हम यह जानते हों कि वह पुरुष हमेशा सत्यका ही अनुशीलन करनेका और सत्यका ही जिज्ञासु बननेका प्रयत्न करता है, तो हम यह आशा रख सकते हैं कि अुसके विचारोंका झुकाव सत्यकी ओर ही होगा।

अिस तरह सत्य निर्णय करनेकी शक्ति, अपना और दूसरोंका कल्याण साधनेवाली तर्कशक्ति और प्रज्ञा, तथा अैसे तत्त्वज्ञानको समझनेकी शक्ति सत्य, प्रेम, दया आदि गुणोंके विकासके बिना असंभव है। अिंद्रियोंकी शक्तियां सूक्ष्म हों, कल्पनाशक्ति तीव्र हो, तर्कशक्ति कुशाग्र हो, चित्तको तुरन्त अेकाग्र करनेकी शक्ति भी सिद्ध हो गअी हो, परंतु यदि अुत्तम गुणोंका विकास न हुआ हो तो मनुष्यमें सही निर्णय करनेकी शक्ति नहीं आ सकती। अुसकी बुद्धिका विकास अधूरा ही रहेगा।

अूपरकी चर्चासे यह भी नहीं मान लेना चाहिये कि सूक्ष्म अवलोकन, तर्कशक्ति आदिका कोअी महत्त्व नहीं है। जैसे जैसे अवलोकन सूक्ष्म होता है, तर्कशक्ति गहरी होती है और पिछले अनुभवोंकी स्मृति स्पष्ट होती है, वैसे वैसे विचारशक्ति शुद्ध होती है। और विचार गुणोंको बढ़ाने या बदलनेका अेक महत्त्वपूर्ण साधन है। विचारसे गुणोंका विकास होता है; और विचार भी अन्तमें तो अनुभव पर ही आधार रखता है। अिस तरह ये बल कुछ हद तक अेक-दूसरे पर आधार रखते हैं, कुछ हद तक अेक-दूसरेसे स्वतंत्र हैं और कुछ हद तक अेक-दूसरेके विरोधी भी हैं।

अिसके आगेके प्रकरणोंमें यह विषय अधिक स्पष्ट होगा।

१३

श्रद्धा

आज अनेक स्थानों पर अेक ओर श्रद्धाकी महिमा गाअी जाती है, तो दूसरी ओर अुसका जड़मूलसे खंडन होता भी देखा जाता है। कौनसी वस्तु श्रद्धाके योग्य है और कौनसी नहीं, अिस बारेमें बुद्धिमान लोगोंमें भी भारी मतभेद पाया जाता है। अिस कारणसे और श्रद्धाका बुद्धिके साथ घनिष्ठ संबंध होनेसे श्रद्धाकी थोड़ी चर्चा की जा सके तो ठीक होगा।

श्रद्धा शब्दका हम अनेक अर्थोंमें प्रयोग करते हैं: जैसे (१) किसी महान भावना, व्यक्ति या कार्यके लिअे तीव्र आदर या प्रेमके अर्थमें; गीतामें 'श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्', 'श्रद्धावाननसूयश्च' आदि स्थानों पर श्रद्धा शब्द अिसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। तथा कठोपनिषद्में जहां कहा गया है कि नचिकेता बालक था, तो भी दक्षिणा ले जाअी जाती देखकर अुसके हृदयमें श्रद्धा पैठी[1]; अथवा 'विद्यार्थी श्रद्धावान होते हैं'; अथवा 'विद्यार्थियोंको श्रद्धावान होना चाहिये' आदि वाक्योंमें जो भी महान अुद्देश्यवाला कार्य, भावना या व्यक्ति हो, अुसके लिअे अत्यन्त आदरकी — प्रेमकी या कोमलताकी भावना, यही श्रद्धाका अर्थ हो सकता है।[2] (२) शक्तिसे मिलते-जुलते अर्थमें; जैसे 'अब

---

१. तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाविवेश, सोऽमन्यत। (कठ० १-१-२)

२. किसी मनुष्यके विचार जो स्वीकार किये जाते हैं, अुसमें अुन विचारोंके पीछे रहनेवाले सत्य, दलीलोंके औचित्य आदिके साथ-साथ अुस मनुष्यके प्रति सुननेवालेके आदरका भी बहुत बड़ा भाग होता है। कोअी सामान्य मनुष्य कोअी विचार बतावे तो अुसे नहीं माना जाता, लेकिन वही विचार किसी शास्त्रमें मिल जाय या कोअी प्रसिद्ध पुरुष कहे, तो अुसे तुरन्त मान लिया जाता है। अिसका कारण यह है कि

मेरी अधिक चलनेकी श्रद्धा नहीं है।' (३) विश्वास, निष्ठा या मान्यताके अर्थमें; जैसे 'मुझे अिस मनुष्यमें वहुत श्रद्धा है', 'अुसकी ओश्वर पर अखूट श्रद्धा थी', 'यह अपनी अपनी श्रद्धाकी बात है।' (४) आत्म-विश्वासके अर्थमें; जैसे 'तिलक महाराज अपना काम पूर्ण श्रद्धासे करते और अन्त तक अुस पर डटे रहते थे।' (५) प्रकृतिके किसी प्रकारके साथ दृढ़ बने हुअे आत्मभावके अर्थमें — जिस शक्तिमें मनुष्यका दृढ़ निश्चय हो वह शक्ति; जैसे गीताके १७ वें अध्यायके आरंभमें श्रीकृष्ण कहते हैं: 'प्रत्येक मनुष्यकी श्रद्धा स्वभावतः अुसके सत्त्वके अनुसार होती है; जिस मनुष्यकी जैसी श्रद्धा, वैसा ही वह कहा जाता है। . . . आसुरी संपत्तिमें जिसका **निश्चय** हो, वह तामसी कहा जाता है।' (६) दृश्य परिणामोंके अदृश्य कारणोंके लिअे किये गये अनुमानमें रहनेवाली निष्ठाके अर्थमें; जैसे प्लांचेट-जैसे साधनसे जो कुछ लिखा जाता है, वह मृत पुरुषोंके जीव लिखते हैं, यह श्रद्धा।

ये सारे अर्थ अैसे मालूम होते हैं, जो श्रद्धाके अन्तिम अर्थ निष्ठा (अथवा निश्चय) में से निकाले जा सकते हैं। अिसलिअे अिसी अर्थमें श्रद्धाके विषयकी चर्चा करनेका मेरा अिरादा है।

अुस सामान्य मनुष्यकी बुद्धि, चरित्र आदिके लिअे लोगोंमें जो आदर होता है, अुससे अधिक किसी शास्त्रकार या महात्माकी बुद्धि, चरित्र आदिके लिअे अुनका आदर होता है। महात्मा पुरुष जो कुछ कहता है वह सब सामान्य मनुष्योंको सच मालूम होता है। लेकिन अुसके समकक्ष कहे जा सकनेवाले लोगोंको अुसके विचार अुतने ही मान्य नहीं होते। क्योंकि साधारण मनुष्योंको अुसकी बुद्धिके लिअे जो आदर होता है, वह आदर अुसके समकक्ष लोगोंको नहीं होता। साधारण लोग महापुरुषके चरित्रके लिअे आदरभाव रखनेके कारण अुसकी बुद्धिके लिअे भी आदर रखते हैं। लेकिन समकक्ष लोग अुसकी बुद्धि और चरित्रके बीच भेद करके अुसके चरित्रके लिअे आदर रखते हुअे भी बुद्धिके लिअे आदर नहीं रख सकते। 'घरका आदमी बैल बराबर' या 'महात्माको अुसके पासके लोग नहीं पूजते' — अैसाके अिन वचनोंके पीछे यह अनादर अेक महत्त्वका कारण है।

मुझे लगता है कि पहली बात तो हमें यह समझ लेनी चाहिये कि श्रद्धा चित्तकी अेक अैसी प्रकृति है, जो छोड़ी नहीं जा सकती। यानी श्रद्धाका अभाव कभी हो ही नहीं सकता। श्रद्धाकी शुद्धता और अशुद्धतामें भेद हो सकता है, अुसमें तीव्रता और मंदताका भेद हो सकता है, बुद्धियुक्त या बुद्धि-रहित श्रद्धा हो सकती है, अनुभव-युक्त या अनुभव-रहित श्रद्धा हो सकती है, श्रद्धाके विषयोंमें भी भेद हो सकता है, परंतु अश्रद्धा जैसी कोअी वस्तु है ही नहीं। अैसा कोअी मनुष्य देखनेमें आ सकता है, जिसकी अेकाध विषयमें ही जीती-जागती श्रद्धा हो। लेकिन अैसे प्राणीका होना असंभव है, जिसकी किसी विषयमें किसी तरहकी श्रद्धा ही **न** हो। अिसलिअे 'अश्रद्धा' शब्दका अर्थ केवल अितना ही है कि अमुक विषयमें अश्रद्धा या मामूली श्रद्धा।

श्रद्धा प्राणीके मुख्य गुणको स्थिर बनानेवाली वृत्ति है। जिस मनुष्यकी जैसी श्रद्धा होगी, वैसा अुसका चरित्र बनेगा। हम किसी मनुष्यको लोभी या कंजूस कहें, तो अुसका अर्थ यह होता है कि अुसकी धनकी शक्तिमें तीव्र श्रद्धा है; भक्तकी अपने अिष्ट देवमें तीव्र श्रद्धा होती है; अभिमानी मनुष्यकी अपनी किसी स्थितिमें तीव्र श्रद्धा होती है; समदृष्टिवाले पुरुषकी जगतकी अेकतत्त्वतामें श्रद्धा होती है; शूर-वीरकी अपनी वीर्यशक्तिमें तीव्र श्रद्धा होती है; कायर मनुष्यकी जीवनमें तीव्र श्रद्धा होती है। अिस तरह हरअेक मनुष्य (और प्राणी) के मुख्य गुणसे अुसकी श्रद्धाका पता चल जाता है।

यदि श्रद्धामें फर्क पड़ जाय तो मनुष्यके चरित्रमें भी फर्क पड़ जाता है। किसी मनुष्यकी पैसे परकी अपार श्रद्धा बदल कर परमेश्वरमें बैठ जाय, तो तुरन्त अुसका चरित्र बदल जाता है। भोग-विलासमें श्रद्धा रखनेवाले मनुष्यकी श्रद्धा मोक्ष पर बैठते ही अुसकी विषय-परायणताका लोप हो जाता है।

अिस तरह किसी मनुष्य या बालकका स्वभाव बदलनेका अर्थ है अुसकी श्रद्धाका विषय बदलना। हृदय-परिवर्तनका भी यही अर्थ है। अेकसी तर्कशक्तिवाले मनुष्योंके मतभेदकी जांच करें, तो मालूम पड़ेगा कि अुसके पीछे श्रद्धाभेद होता है। मेरी तर्कशक्ति चाहे जितनी सूक्ष्म

हो, लेकिन यदि अमीरीमें ही मेरी अतिशय श्रद्धा हो, तो मैं टॉल्स्टॉयके अुत्पादक श्रम (bread labour) से ही जीनेके शास्त्रको स्वीकार नहीं कर सकता। यदि मेरी विषय-सुखमें अतिशय श्रद्धा हो, तो त्याग या संयमका महत्त्व मेरे गले नहीं अुतरेगा। यदि अधिकार या सत्तामें मेरी श्रद्धा हो, तो मैं न्यायवृत्तिका पालन नहीं कर सकता और प्रतिष्ठा (prestige) का विचार नहीं छोड़ सकता। यदि मुझे कुल या वर्णमें श्रद्धा हो, तो मैं अभेद दृष्टिके सिद्धान्त पर अमल नहीं कर सकता। तर्कशक्ति और बुद्धि चाहे जितनी सूक्ष्म हो जाय, तो भी वह हमेशा श्रद्धाका ही अनुसरण करती है। जिस विषयमें मनुष्यकी दृढ़ श्रद्धा होती है, अुस विषयका विभिन्न प्रकारसे समर्थन करनेमें तर्कशक्ति वकीलका काम करती है। जिस क्षण मेरी श्रद्धा विषय-सुख परसे अुठ जायगी, अुसी क्षणसे मेरी तर्कशक्ति त्याग और संयमको बल पहुंचानेमें अपनी सारी शक्ति खर्च करने लगेगी।

अिस परसे हमें अेक नियम मिल जाता है : जहां यह देखनेमें आवे कि मतभेद नहीं टाला जा सकता, वहां मूलमें श्रद्धाभेद है अैसा निश्चित समझना चाहिये। अिसलिअे संभव हो तो किसी भी अुपायसे सामनेवाले आदमीके श्रद्धाके विषयको ही बदलनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यह न मान लेना चाहिये कि अिस नियमको समझ लेनेसे सफलतापूर्वक अिस पर अमल भी किया ही जा सकता है। क्योंकि यह नियम भी चित्त-विकासके अनेक नियमोंके आधार पर काम करता है; परन्तु यदि दूसरी परिस्थितियां अनुकूल हों, तो यह नियम अपना काम अवश्य करता है।

अिस प्रकार मतभेद दूर करनेका शुद्ध अुपाय यही है कि अयोग्य विषय पर बैठी हुअी श्रद्धाको या किसी विषय पर बैठी हुअी अयोग्य श्रद्धाको शुद्ध बनाया जाय। जब तक यह नहीं होता तब तक अपनी श्रद्धाके विषयका प्रतिपादन व्यर्थ जाता है।

अिस तरह श्रद्धा और अश्रद्धाकी जांच करनेसे हम अंधश्रद्धाके बारेमें कुछ विचार कर सकते हैं।

अंधश्रद्धा अेक प्रकारकी सदोष श्रद्धा है। यहां श्रद्धाका अर्थ विश्वास या मान्यता ही हो सकता है। किसी पदार्थमें असके स्वाभाविक धर्मोंके बदले या अुन धर्मोंके अुपरांत दूसरे धर्मोंका आरोपण करना अथवा किसी परिणाममें अुसके कुदरती कारणोंके बदले दूसरे कारणोंका आरोपण करना सदोष श्रद्धा है। कअी बार अधूरे अवलोकनके फलस्वरूप अैसी सदोष श्रद्धा पैदा होती है। अुदाहरणके लिअे, रस्सीमें सांपके धर्मोंका आरोपण करके अुसे डरका कारण मानना सदोष श्रद्धा है। अिसी तरह, प्रतिबिम्बको बिम्ब मान लेनेकी गलतीसे मृगजलमें जलका होना मान लिया जाता है। ये तो कभी-कभी होनेवाली घटनाओंके अुदाहरण हैं। किन्तु व्यवहारमें और खास करके सूक्ष्म विषयोंमें हम बार बार यह गलती करते हैं। हमारे भीतरकी अनेक शक्तियों या कमियोंके कारण हमें जीवनमें जो यश-अपयश मिलता है, अुसका कारण हम बहुत बार किसी बाह्य सत्त्वमें निहित शक्तिको मान लेते हैं; और अुस बाह्य सत्त्वमें हम अपनी श्रद्धा बैठाते हैं। फिर, बहुत बार जिन कार्योंसे हमारी अुन्नति होती है, अुन कार्योंमें हम सारे जगतका कल्याण देखते हैं; अिसलिअे अैसे कार्योंमें जगहितकी दृष्टिसे हमारी श्रद्धा दृढ़ होती है। अिसका अेक सुन्दर अुदाहरण हमें महात्मा टॉल्स्टॉयकी 'तब करेंगे क्या?' पुस्तकमें मिलता है। मनुष्यमें रही हुअी दया और परोपकार-वृत्तिके पूर्ण विकासमें अुसकी अुन्नति समाअी हुअी है। जब तक यह गुण पूर्णताको न पहुंचे, तब तक मोक्ष चाहनेवालेको अिन वृत्तियोंका विकास करनेकी स्वाभाविक प्रेरणा होती है। अिसलिअे दया और परोपकारके कामोंमें अुसकी श्रद्धा बैठे बिना नहीं रह सकती। अुसके लिअे अिन वृत्तियोंका पोषण आवश्यक होनेसे जिस पर वह दया या अुपकार करता है, अुसका अिन कामोंसे भला ही होगा, अैसी अुसकी दृढ़ श्रद्धा जमती है। टॉल्स्टॉयके विषयमें भी अैसा ही हुआ था। परन्तु जब पूर्णताको पहुंचनेके बाद ये गुण सहज स्वभावका रूप ले लेते हैं तब मालूम पड़ता है कि अुपकार स्वीकार करनेवाले आदमीका भला अुन गुणोंसे हुआ या नहीं, यह विश्वासके साथ नहीं कहा जा सकता। हम मानते हैं कि सत्कर्मसे दूसरोंका हित होता

है; दूसरोंका हित हो या न हो, परन्तु सत्कर्म करनेवालेकी तो अुन्नति होती ही है और दूसरोंको अुतने समय तक सन्तोष मिलता है। लेकिन जैसे किसीके दियासलाअी मांगने पर दियासलाअी देनेमें हमें कोअी परोपकार करनेका भान नहीं होता, अुसी प्रकार बड़ेसे बड़ा दान करनेमें भी हमें कोअी विशेषता न लगे, अैसा जब तक सद्‌गुणोंका विकास न हो तब तक हममें यह श्रद्धा बनी रहती है कि सत्कर्मसे दूसरोंका हित होता है। ये सब अधूरे अवलोकनके परिणाम हैं।

दूसरा अुदाहरण लीजिये। मूर्तिको अपने अिष्टदेवकी स्मृतिको जाग्रत करनेवाला और अिस तरह ध्यानाभ्यासमें सहायता करनेवाला साधन समझना श्रद्धा है। मूर्तिके कारण पवित्रता और पूज्यताका जो भाव अुत्पन्न होता है, अुसका कारण अुसके साथ जुड़ी हुअी अिष्ट-देवकी स्मृति है। अिस प्रकार अुस मूर्तिके प्रति आदर और भक्तिका भाव अुत्पन्न हो यह अुचित है। लेकिन मूर्तिके बारेमें मनुष्यके भावोंकी कल्पना करके अुसकी अुपचार-विधि करना, सर्दीसे बचानेके लिअे अुसे रजाअी ओढ़ाना, गर्मीसे बचानेके लिअे चन्दनकी अर्चा लगाना, भूख-प्यासके वश होनेवाली मानकर अुसे भोग लगाना — अिन सबमें भक्तिनिष्ठा है, अिससे अिनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन यह भक्ति सदोष श्रद्धासे प्रेरित है। जो धर्म मूर्तिमें नहीं हैं, प्रकृतिके नियमसे मूर्तिमें हो नहीं सकते, अुनका मूर्तिमें आरोपण करके यह पूजा होती है; और अुसके द्वारा जो चमत्कार अनुभव किये जाते मालूम होते हैं, अुनमें किसी प्रकारका अधूरा अवलोकन होता है।

अिसी तरह गांधीजीने खादीके बारेमें कुछ लोगोंकी सदोष श्रद्धाका निषेध करते हुअे बताया था कि खादीमें देशका धन बचानेकी शक्ति है यह श्रद्धा ठीक है, लेकिन अैसा मानना सदोष श्रद्धा है कि अुसमें चरित्रको शुद्ध करनेकी कोअी विशेष शक्ति है। खादीका स्वदेशी धर्मके साथ सम्बन्ध होनेके कारण और सब धर्मोंका अन्तमें चरित्र-शुद्धिके साथ सम्बन्ध होनेके कारण जब तक खादीमें नवीनता

मालूम हो और स्वदेश-प्रेमके कारण अुसकी महिमा समझमें आती हो, तब तक संभव है अुसका चरित्र पर भी अच्छा प्रभाव पड़े। लेकिन यह परिणाम अुत्पन्न करना खादीकी अंगभूत प्रकृति नहीं है। अूपर बताअी हुअी मूर्तिकी पूजानिष्ठामें और खादीमें रही चरित्र-शुद्धिकी निष्ठामें प्रतिविम्बको विम्ब माननेका अधूरा अवलोकन है। मनुष्यके भीतरकी आध्यात्मिक अुन्नति करनेकी बलवान अिच्छा कोअी निमित्त या आलम्बन खोजती है, और मूर्ति या खादी यह निमित्त अथवा आलम्बन बन जाती है। अिसकी बदौलत चित्तका विकास बड़ी तेजीसे होने लगता है। अिस परसे मनुष्य अिस आलम्बन या सहारेको ही चित्तका विकास करनेवाला मानता है।

अधूरे अवलोकनसे जिस प्रकार सदोष श्रद्धा अुत्पन्न होती है, अुसी प्रकार कभी कभी योग्य पदार्थमें भी अश्रद्धा रहती है; और जिसे अैसी अश्रद्धा न हो, अुस पर अंधश्रद्धाका दोष लगाया जाता है। अुदाहरणके लिअे, श्रद्धाके बलको ही लीजिये। कोअी मनुष्य आग पर चल सकता है, अैसा माननेसे बहुतेरे लोग अिनकार करेंगे। किसीको अैसा करते देखें भी तो यह मानेंगे कि वह पांवमें कोअी दवा लगाता होगा या दूसरी चालाकी करता होगा; और जो लोग अिस बात पर श्रद्धा रखते हैं अुन्हें अंधश्रद्धालु कहेंगे। अवलोकनके अभावमें हठयोगकी, तंत्रविद्याकी और मंत्रविद्याकी अनेक शक्तियोंके बारेमें अिस प्रकार अश्रद्धा रखी जाती है, और अुनमें श्रद्धा रखनेवाले अंधश्रद्धालु माने जाते हैं।

अैसी अश्रद्धाको हमेशा दोषरूप नहीं माना जा सकता। कोअी भी मनुष्य जब तक स्वयं अनुभव न कर ले, तब तक किसी वस्तुमें श्रद्धा न रखनेका अुसे अधिकार है। अुसके द्वारा दूसरों पर लगाया जानेवाला अंधश्रद्धाका आरोप यदि गलत हो, तो अवलोकन कराकर अुसकी गलती दूर की जा सकती है। फिर, बहुत बार अैसा होता है कि जिस पर मनुष्य अंधश्रद्धाका दोष लगाता है, वह सचमुच ही अंधश्रद्धालु होता है। अिसलिअे यह भी हो सकता है कि श्रद्धा रखनेवालेकी श्रद्धाके पीछे कोअी भी अवलोकन या अनुभव न हो।

भूतयोनि जैसी चीज वास्तवमें हो, और अुसका अनुभव कर चुके लोग अुसमें श्रद्धा रखें, तो हो सकता है वह अंधश्रद्धा न हो। परन्तु मुझे यदि अैसा कोअी अनुभव न हुआ हो, किसी अनुभवी और विश्वास-पात्र मनुष्यसे अैसे अनुभवके बारेमें मैंने विस्तृत जानकारी भी हासिल न की हो, परन्तु केवल लोकज्ञानके रूपमें ही मैं अुस पर श्रद्धा रखूं, तो अिस श्रद्धाका विषय सच्चा होने पर भी अुसके बारेमें मेरी दृष्टि अंधश्रद्धावाली ही मानी जायगी।

कअी बार अंधश्रद्धाका अेक लक्षण यह होता है कि अंधश्रद्धालु मनुष्य दुनियामें दो शक्तियोंका अस्तित्व मानता है : (१) प्राकृतिक शक्तियोंका; और (२) प्रकृतिके नियमोंसे परे, प्रकृतिके नियमोंको तोड़ कर घटनाओंको जन्म देनेवाली दैवी शक्तियोंका। प्रकृतिके नियमों और शक्तिका अधूरा ज्ञान होनेके कारण जो घटनायें समझमें न आ सकनेवाले ढंगसे घटती हैं, अुनके बारेमें हमें चमत्कारकी निष्ठा होती है। अिसलिअे अुन घटनाओंके प्राकृतिक कारण खोजनेकी झंझटमें न पड़कर हम यह मान कर सन्तोष कर लेते हैं कि कोअी दैवी शक्तियां अुन्हें जन्म देती हैं। अनुभवका कोअी भी विषय प्रकृतिके नियमोंसे परे नहीं हो सकता, अिस श्रद्धा या निष्ठाका अभाव कुछ सदोष श्रद्धाओंका कारण होता है।

श्रद्धा और गुणका बहुत निकटका सम्बन्ध है। जिस क्षत्रियमें शौर्यका गुण बलवान है अुसके लिअे जीवनको अत्यन्त प्रिय समझना या जिस वैश्यमें ओमानदारीका गुण बलवान है अुसके लिअे धनको अत्यन्त प्रिय समझना अशक्य है। जिसमें प्रेमवृत्तिका गुण बलवान है, अुसकी अहिंसामें श्रद्धा होना स्वाभाविक है। जिसके स्वभावमें ही सत्य भरा है, अुसे सत्यकी अपेक्षा दुनियाकी चीजोंमें या कल्पनाओंमें कभी अधिक श्रद्धा हो ही नहीं सकती।

परन्तु भावनावश होनेका और सदोष श्रद्धाका भी निकट सम्बन्ध है। भावनाकी अुत्कटता श्रद्धाका पोषण करती है। परन्तु जहां भावनाके साथ विवेक या सावधानी जुड़ी हुअी न हो, जहां विकारकी तरह

भावना चित्त पर अधिकार कर लेती है, वहां वह अंधश्रद्धाका पोषण करती है। भयभीत मनुष्य परछाओंसे डरता है, झाड़के ठूंठको भूत या चोर मानता है। भयके साथ यदि थोड़ी सावधानी हो, तो वह परछाओं या झाड़से नहीं डरेगा; हां, सांप या बाघसे जरूर डरेगा। निर्भय मनुष्य सर्प या सिंहको साथ लेकर सोनेकी हिम्मत कर सकता है। लोभकी भावनाकी अुत्कटताके साथ यदि मैं विवेकी भी होअूं, तो पैसा पानेके लिअे खूब मेहनत करूंगा; मेरा लोभ कितना ही बलवान क्यों न हो, अपने मनका काबू मैं खो नहीं दूंगा। परन्तु मुझमें यदि विवेकका अभाव हो और केवल लोभ ही भरा हो, तो मैं शेखचिल्ली बन जाअूंगा। मनमें अुत्पन्न होनेवाली तरंगों या सपनोंको मैं सत्य मान बैठूंगा। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि जिस तरह अंधे मनुष्यका अर्थ है बिना आंखका मनुष्य, अुसी तरह अंधश्रद्धाका अर्थ है विवेकचक्षु-रहित श्रद्धा।

जिस प्रकार कभी कभी अुचित श्रद्धा पर अंधश्रद्धाका दोष लगाया जाता है, अुसी प्रकार कभी पूर्व-श्रद्धा पर भी यह दोष लगाया जा सकता है; अिसलिअे अिन दोनोंका भेद भी समझ लेना चाहिये। श्रद्धा-मात्रका अन्तिम प्रमाण और आधार तो अनुभव ही है। जिस प्रकार श्रद्धा अेक ओर तर्कका अनुसरण करती है, अथवा श्रद्धा और तर्क दोनों साथ-साथ चलते हैं, अुसी प्रकार दूसरी ओर वह अनुभव या बुद्धिके पहले आती है। अुदाहरणके लिअे, बालक खूब मेहनतसे विद्या सीखता है। विद्याके लाभका अुसे अनुभव नहीं होता। अुसने केवल कुछ तर्कसे अुसके लाभकी कल्पना की है। यह तर्क सच्चा है, अिस श्रद्धासे वह विद्या प्राप्त करनेका प्रयास करता है। विद्या प्राप्त करके यदि अुसके लाभका अनुभव करता है, तो विद्याके प्रति अुसकी श्रद्धा दृढ़ होती है, वर्ना खतम हो जाती है। अिसी प्रकार विज्ञानशास्त्री अपनी प्रत्येक खोजके लिअे परिश्रम करनेसे पहले तर्क द्वारा सत्यकी कुछ कल्पना करता है और फिर अुस कल्पना पर श्रद्धा रखकर अुसका अनुभव करनेका प्रयत्न करता है। अुस अनुभवमें यदि वह सफल होता है, तो अुसकी यह श्रद्धा सिद्धान्तका रूप लेती है। अैसी पूर्व-श्रद्धा (अनुभवके पहले

रहनेवाली, 'कच्ची' या कामचलाअू श्रद्धा) आवश्यक होती है। अुसके बिना जीवनमें कोअी भी कार्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

अूपर अंधश्रद्धाको सदोष श्रद्धा कहा है। परंतु मेरे कहनेका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक सदोष श्रद्धा मनुष्यको नीचे ही गिराती है। पूर्व-श्रद्धा और सदोष श्रद्धाके बीच यह भेद किया जा सकता है कि जब विशेष अवलोकन और अनुभव हमारी पूर्व-श्रद्धाको दृढ़ बनावें और सिद्धान्तका रूप दें तो कहा जा सकता है कि वह सच्ची श्रद्धा थी; जब विशेष अवलोकनसे पूर्व-श्रद्धाके प्रकारमें महत्त्वका परिवर्तन हो जाय और अुसका स्वरूप बदल जाय, जब पूर्व-श्रद्धा गलत मालूम हो और अुसका स्थान नअी श्रद्धा ले ले, तो माना जायगा कि वह सदोष श्रद्धा थी। पूर्व-श्रद्धा सदोष है या सच्ची, यह अुन्नतिके लिअे महत्त्वकी चीज नहीं है। महत्त्वकी बात तो यह है कि अुसके साथ अवलोकन करने और अनुभव प्राप्त करनेकी वृत्ति — विवेक — है या नहीं। वह न हो तो बादमें सत्य सिद्ध होनेवाली श्रद्धा भी अुसके लिअे अंधश्रद्धा है और असत्य सिद्ध होनेवाली श्रद्धा भी अंधश्रद्धा है।

यह विचारसरणी यदि निर्दोष हो, तो अिसमें से नीचेके नियम सामने आते हैं:

१. गुण और श्रद्धाका निकट संबंध है।

२. गुणकी अुत्कटता श्रद्धाका पोषण करती है; परंतु भावना-वशता — अर्थात् विवेकहीन भावना — अंधश्रद्धाको जन्म देती है।

३. श्रद्धा प्राणीके चित्तका स्वभाव ही है; अिसलिअे श्रद्धाका अभाव कभी संभव ही नहीं होता। अतः अश्रद्धाका अर्थ है श्रद्धाकी कमी या दूसरे किसी विषयमें श्रद्धा।

४. मतभेदकी जड़ है श्रद्धाभेद और श्रद्धाभेदकी जड़ है गुणभेद। केवल दलीलोंसे गुणभेद नहीं टाला जा सकता और अिसलिअे मतभेद भी नहीं टाला जा सकता। श्रद्धाका पोषण करनेवाला गुण निर्माण हो सके अैसा अनुभव करा दिया जाय तो ही मतभेदको दूर करनेकी दिशामें कदम अुठाया जा सकता है।

५. श्रद्धा मनुष्यके व्यक्तित्वको स्पष्ट करनेवाली चीज है।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स अेव सः।।*(गीता १७–३)

६. सदोष श्रद्धाका अर्थ है अधूरे अवलोकनवाली श्रद्धा, और अंधश्रद्धाका अर्थ है अवलोकनका अभाव होते हुअे तथा अनुभव प्राप्त करनेकी वृत्तिके बिना रखी गअी श्रद्धा। किसी पदार्थमें प्रकृतिगत धर्मोंसे भिन्न या अुनके अतिरिक्त दूसरे धर्मोंका आरोपण, अथवा दैवी शक्तिका आरोपण, या अेक शक्तिका दूसरी शक्तिके रूपमें अवलोकन और ग्रहण आदि सदोष श्रद्धाके कुछ लक्षण हैं।

७. श्रद्धाके दो विभाग हैं: कच्ची या अनुभवसे पहलेकी श्रद्धा और पक्की या अनुभवसे दृढ़ बनी हुअी श्रद्धा।

८. पूर्व-श्रद्धाका फल सिद्धान्त है; अिसलिअे श्रद्धाका विषय अनुभवसे सिद्ध हो, तभी श्रद्धा कसौटी पर खरी अुतरी कही जा सकती है।

९. तर्कशक्ति श्रद्धाकी वकील है और अुसका समर्थन करनेका प्रयत्न करती है। परंतु वह बुद्धिके आगे चलती है और अुसकी ओर अनुभवको ले जाती है।

१०. श्रद्धाकी शुद्धिका अर्थ है किसी भी विषयमें रहनेवाली अंधश्रद्धाको तथा अयोग्य विषयमें रहनेवाली श्रद्धाको दूर कर दिया जाय, सदोष श्रद्धाको सुधारा जाय और योग्य विषयमें श्रद्धाको बैठाया जाय। श्रद्धाकी शुद्धि अुन्नतिकारक है; अश्रद्धा या अंधश्रद्धा अुन्नतिकारक नहीं है।

---

* हे भारत, प्रत्येक मनुष्यकी श्रद्धा अपने अपने सत्त्व — भावना और बुद्धि — के अनुसार होती है। मनुष्यमात्र मूर्तिमान श्रद्धा ही है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है, वैसा ही वह बनता है।

ता–८

१४

विकासके प्रकार

शिक्षाशास्त्री बार बार कहते हैं कि शिक्षाकी योजना अिस प्रकार की जानी चाहिये कि जिससे बालककी शक्तियां खिलें, अुनका विकास हो। अिसके लिअे यह भी सुझाया जाता है कि बालकको हमारे विचारोंसे पढ़ानेका प्रयत्न न किया जाय, बल्कि अिस बातका पता लगाया जाय कि अुसमें क्या पढ़नेकी शक्ति है, और फिर वही अुसे पढ़ाया जाय।

अिस कथनमें अेकतरफा सत्य है। अिसलिअे जीवनके विकासका अर्थ क्या है, अिसका थोड़ा विचार करना आवश्यक मालूम होता है।

आमके जिस पेड़ परसे पाव भर वजनका अेक अेक फल अुतरता हो, अुस परसे दुगुने वजनका फल अुतरे अिस तरह अुसे सुधारना आमका अेक प्रकारका विकास है।

अुसका गूदा बढ़ाकर गुठली छोटी करना दूसरे प्रकारका विकास है।

अुसके अेक सेर रसमें पांच प्रतिशत मीठा तत्त्व हो, तो अुसके बजाय सात प्रतिशत मीठा तत्त्व करना अुसका तीसरे प्रकारका विकास है।

अिसी तरह हम प्राणियोंके विकासका विचार करें। कीड़ेकी अत्यन्त बड़ी आवृत्ति सर्प कही जा सकती है; बिल्लीकी बड़ी आवृत्ति बाघ है। अिस तरह कीड़े और बिल्लीके बनिस्बत सांप और बाघका विकास अधिक हुआ है। दोनोंके अवयव, स्वभाव और बल अेक ही प्रकारके हैं। लेकिन दोनोंका खूब विकास हुआ है। कीड़े और बिल्लीके प्रत्येक अंगकी वृद्धि होनेसे वे सांप और बाघ बने अैसा कहा जा सकता है। यह अेक प्रकारका विकास है।

सांप बहुत बड़ा और बलवान प्राणी है; कीड़ी बहुत छोटा और कमजोर प्राणी है। परंतु कीड़ीके जो अंग प्रकट रूपसे फूटे हैं, वे सांपके नहीं फूटे। कीड़ी पांवसे चलनेवाला प्राणी है; सांप पेटके बल चलनेवाला प्राणी है। सांप बड़ा हुआ, परंतु कीड़ा ही बना रहा; कीड़ी

छोटी रही, परंतु कीड़ेकी दशाको छोड़कर दूसरी जातिके प्राणीकी पंक्तिमें मिल गअी। अुसने वजन ढोनेकी शक्ति प्राप्त की है, साथ मिलकर काम करनेकी शक्ति प्राप्त की है और समाज बनानेकी शक्ति प्राप्त की है। अुसमें घर बनाकर रहनेकी और अन्नका संग्रह करनेकी वृत्ति है। सांपमें अैसा कुछ नहीं है। अिस तरह बल और शरीरकी दृष्टिसे सांपके सामने कीड़ीकी कोअी बिसात नहीं है, फिर भी अनेक गुणोंकी दृष्टिसे कीड़ी सांपसे अधिक विकास पाया हुआ प्राणी है। अिस तरह कीड़ीका विकास भिन्न प्रकारका है।

अब तीसरे प्रकारका विकास लें। हाथीने अपने प्रत्येक अंगको बढ़ाया है, परंतु अुसने दो दांतों और नाकको लंबा बनानेमें तो कोअी हद ही नहीं रखी है। खड़े खड़े ही जमीन तक पहुंचनेवाले दांत और नाक दूसरे किसी प्राणीने नहीं बढ़ाये। अिसके विपरीत, साधारण बड़े प्राणियोंमें मनुष्यकी नाक और दांत अत्यन्त छोटे हैं। यदि शरीरकी स्थूलतासे तथा दांत और नाकके बल और लम्बाअीसे विकासका नाप निकाला जाय, तो हाथी बहुत विकसित प्राणी माना जायगा।

हाथीके सामने बंदर राक्षसके सामने बौने जैसा लगता है; परंतु हाथी चाहे जितना बड़ा हो, तो भी वह सीधा नहीं बैठ सकता। अगले दो घुटनोंका आधार अुसे लेना ही पड़ता है। अुसके पांव थंभे जैसे होते हैं, परंतु किसी चीजको पकड़नेके लिअे अुसकी अंगुलियां बेकार होती हैं। बन्दर सीधा बैठ सकता है, दो पांवोंसे चल सकता है और अंगुलियोंका अुपयोग कर सकता है। अिस तरह बन्दरका विकास हाथीसे भिन्न प्रकारका है।

गाय-भैंसकी दूध धारण करनेकी शक्ति कितनी बढ़ी हुअी है? और गाय अपने बच्चे पर जो हेत और ममता रखती है, अुसने कहावतका रूप ले लिया है। फिर भी गाय दूसरी किसी गायके बछड़े पर ममता नहीं रख सकती; अुसे मारने ही दौड़ती है। अगर भूलसे दूसरी गायका बछड़ा अुसका दूध पीने चला जाय तो वह अुसे लात मारती है।

कुत्ते अपने छोटे बच्चोंके साथ खेलते हैं, अुन्हें प्यार करते हैं। बड़े कुत्ते आपसमें लड़ते हैं, लेकिन छोटे बच्चोंको प्रायः नहीं छेड़ते।

अेक बड़ा कुत्ता दूसरे बड़े कुत्तेको कोअी चीज खाने नहीं देता, अुससे छीन भी लेता है। लेकिन खुद भूखा हो तो भी वह छोटे बच्चोंके भागको नहीं छूता।

बन्दर अिससे भी आगे बढ़े हुअे हैं। हम जिस तरह दूसरोंके बच्चोंको खेलानेके लिअे लेते हैं, गोदमें अुठाते हैं, अुसी तरह बन्दर दूसरे वानर-बच्चोंको खेलाते हैं, अुठाते हैं, छातीसे लगाते हैं और कोअी बच्चा अपनी मांसे अलग पड़ गया हो तो अुसे मांके पास पहुंचाते हैं। यह पांचवें प्रकारका विकास है।

कहा जाता है कि शुतुरमुर्गने मेल ट्रेन जितनी दौड़नेकी शक्ति बढ़ाअी है। अुसके पंख केवल शोभा बढ़ानेवाले होते हैं, और अिसीलिअे अुसके नाशके कारण बनते हैं। चिड़ियाके पांव और पंख दोनों कमजोर होते हैं, फिर भी चिड़ियाके पंख शुतुरमुर्गके पंखोंकी तरह निकम्मे नहीं हो गये हैं। शुतुरमुर्गने अपनी अेक अिन्द्रियकी अुपेक्षा की है और दूसरी अिन्द्रियको बलवान बनाया है। यह छठे प्रकारका विकास है।

अब हम मनुष्यका विचार करें।

सुतार और लुहारकी भुजायें बलवान होती हैं और हरकारेके पांव बलवान होते हैं। समुद्रमें से मोती निकालनेवालेमें सांस रोकनेकी जबरदस्त ताकत होती है। मोती पिरोनेवालेकी आंखें तेज होती ह। सुनारकी छोटेसे छोटे वजनको पहचाननेकी शक्ति बढ़ी हुअी होती है; और कुशल शस्त्र-चिकित्सकमें बारीक कारीगरी करनेवाले सुतार, लुहार, सुनार, दरजी सबकी शक्ति होती है। बारीक कारीगरी करनेवालोंमें शस्त्र-चिकित्सक शायद सबसे विकसित कारीगर कहा जा सकता है। स्थूल स्नायुबलमें पहलवानोंका विकास हुआ होता है। गवैये, हलवाअी, गंधी, चित्रकार, तीरंदाज आदि लोग भिन्न भिन्न ज्ञानेंद्रियोंकी शक्ति काफी बढ़ा लेते हैं।

बेकनमें किसी भी विद्याको समझ लेनेकी महान शक्ति थी। टॉल्स्टॉयमें काल्पनिक कहानियां रचनेकी अद्‌भुत शक्ति थी। रवीन्द्र-

नाथ, शेक्सपियर आदिकी कल्पनाशक्ति असाधारण कही जायगी। राजचन्द्र*की स्मरणशक्ति अनोखी थी।

बेकन अत्यन्त बुद्धिमान था, लेकिन यह माना गया है कि अुसमें प्रामाणिकताकी वृत्तिका विकास नहीं हुआ था। औरंगजेब धर्मनिष्ठ माना जाता था, परंतु पितृभक्ति और बन्धुप्रेमका अुसमें अभाव था। अुसकी तेज बुद्धि कपटके रास्ते ही चलती थी। युरोपके अनेक कवि अत्यन्त अुच्च कोटिके माने जाते हैं, परंतु अुनमें पत्नीव्रतके विचारका संपूर्ण अभाव पाया जाता है। भारतके अनेक पुरुष वेदान्तके विषयमें निपुण माने गये हैं, परंतु अुनमें नैतिक चरित्रके विकासका अभाव था।

रामकृष्ण परमहंस और तुकाराममें अीश्वरके अनुरागकी वृत्तिका अपार विकास हुआ था, परंतु वे बेकन जैसे समर्थ विद्वान नहीं माने जा सकते। महावीरकी भूतदया पराकाष्ठाको पहुंची हुअी थी। बुद्धके मानव-प्रेमका कोअी पार नहीं था।

मनुष्यको छोड़कर दूसरी किसी अेक ही जातिके प्राणियोंके विकासका नियम लगभग अेकसा होता है। किसी बिल्लीके अमुक अवयव जितने विकसित होंगे, अुतने ही दूसरी सारी बिल्लियोंके भी विकसित हुअे मालूम होंगे। किसी बिल्लीके अगले पंजे मजबूत और किसीके पिछले मजबूत, अैसा नहीं होगा। यह भीं नहीं होगा कि किसी बिल्लीकी पूंछ लंबी तो किसीकी मूंछ लंबी है।

मनुष्य-जातिमें विविधताका कोअी पार नहीं है। सारे मनुष्योंके सारे अवययोंमें अेकसा बल नहीं होता। किसीका दाहिना हाथ बहुत मजबूत होता है, तो किसीका बायां। किसीके पांव मजबूत होते हैं, किसीकी अंगुलियां, तो किसीकी भुजायें। कोअी मोटरको रोक सके अितना बलवान होता है। किसीकी बुद्धि तेज, किसीकी भावनायें तेज तो किसीकी कल्पनाशक्ति तेज होती है। कोअी शब्दोंसे चित्र अंकित करनेवाला होता है, तो कोअी तूलिकासे। कोअी अूंची कोटिका सत्यनिष्ठ

* बम्बअीके अेक शतावधानी, जिन्होंने अपनी धार्मिक और आध्यात्मिक वृत्तिके कारण गांधीजीके प्रारंभिक जीवन पर बहुत असर डाला था। 'आत्मकथा' में गांधीजीने अिनका परिचय दिया है।

होता है, तो कोअी जबरदस्त ठग। किसीमें बेहद लोभवृत्ति है, तो किसीमें बेहद अुदारता। कोअी क्रोधकी मूर्ति है, तो कोअी दयाकी मूर्ति। रूप, रंग, आकृति, वजन, बल, स्फूर्ति (smartness), अवयव, हड्डियां, स्नायु, ज्ञानतंतु, कल्पनाशक्ति, विचारशक्ति, ग्रहणशक्ति, स्मृति, विकार, शुभ वृत्ति, अशुभ वृत्ति आदिमें जो प्रकृति जन्मसे प्राप्त हुअी हो, अुसमें वृद्धि करना ही यदि विकास शब्दका अर्थ समझा जाय, तो विशेष चरबीवालेका और चरबी बढ़ाना, बड़ी हड्डियोंवालेका अुन्हें और बड़ा करना, अेक मोटर रोक सकनेवालेका दो मोटरें रोकना, अेक कविता रचनेवालेका अनेक कवितायें रचनेकी शक्ति प्राप्त करना, अेक भाषा सीखनेवालेका अनेक भाषायें सीखना, थोड़े क्रोधीका अधिक क्रोधी बनना, थोड़े लोभीका बहुत ज्यादा लोभी बनना, चोरनेकी वृत्तिवालेका अुसीमें प्रवीणता प्राप्त करना, झूठ बोलनेकी वृत्तिवालेका बिना प्रयास झूठ बोल सकनेकी शक्ति बढ़ाना — यह सब विकास ही माना जायगा।

लेकिन स्पष्ट है कि यदि विकासका केवल अितना ही अर्थ किया जाय, तो अुसके अुलटे परिणाम आयेंगे।

अूपरके विवेचनसे मालूम होगा कि विकास छः प्रकारका है। विकास स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकारका हो सकता है। स्थूल विकासका अर्थ है किसी भी मूल शक्तिका स्वरूप कायम रहते हुअे अुस शक्तिमें वृद्धि होना; सूक्ष्म विकासका अर्थ है अुस शक्तिका किसी दूसरी जातिकी शक्तिमें रूपान्तर होना।

(१) अिस प्रकारके स्थूल विकासोंमें पहला कद-विकास माना जा सकता है। जैसे, बिल्ली और कीड़ेकी तुलनामें बाघ और सांपका विकास। जो अवयव, स्वभाव आदि बिल्ली और कीड़ेमें हैं, वे ही बाघ और सांपमें हैं। लेकिन प्रत्येकका कद बड़ा बना हुआ है।

(२) दूसरा विकास अवयवोंका होता है। अूंटकी गर्दन खूब बढ़ी हुअी होती है। दूसरे प्राणियोंकी तुलनामें हाथीकी नाक और दांत असाधारण लम्बे होते हैं। बन्दरकी पूंछ लंबी होती है। बन्दर और मनुष्यकी अंगुलियां भी लंबी कही जायंगी। खरगोशके कान लंबे होते हैं। बगलेकी चोंच लंबी होती है। अलग अलग धंधा करनेवाले लोगोंकी

धंधेमें काम आनेवाली कर्मेन्द्रियों या ज्ञानेन्द्रियोंके कद बढ़े हुअे होते हैं। यह अिन्द्रियोंका स्थूल विकास कहा जा सकता है।

लेकिन चीलकी निगाह तेज होती है। मकड़ीकी स्पर्शशक्ति तेज मानी जाती है। खरगोशके कान तेज होते हैं। कुछ प्राणियोंकी घ्राण-शक्ति तेज होती है। पोपटकी वाणीमें विशेषता होती है। घोड़े और शुतुरमुर्गके पांवोंमें विशेष बल होता है। अिस तरह अवयवोंके स्थूल कदमें नहीं, बल्कि अुन अवयवों द्वारा बल दिखानेकी शक्तिमें वृद्धि होना अिन्द्रियोंका सूक्ष्म विकास कहा जा सकता है।

(३) चींटी और पतंग पहले अंडेमें से अिल्लीका और अिल्लीमें से परिवर्तन पाकर चींटी और पतंगका रूप लेते हैं। मेंढक, पक्षी, मनुष्य आदि प्राणियोंमें अिससे भी अधिक परिवर्तन होते हैं। कुछ परिवर्तन अंडेमें या गर्भमें होते हैं, कुछ बाह्य जगत्‌में होते हैं; कुछ अंग नष्ट हो जाते हैं, कुछ नये आते हैं। अिस तरह स्थूल रूपमें परिवर्तन होता है।

मनुष्यके स्वभावमें भी अैसा अद्‌भुत परिवर्तन होता है। वह चोरसे साधु बनता है; जड़से बुद्धिमान बनता है; अुपद्रवीसे शान्त बन जाता है; अुतावलेसे गंभीर बनता है। जिस तरह प्रत्येक बालक पूर्वजोंके शरीरोंमें हुअे रूपान्तरके क्रमसे गुजरता है, अुसी प्रकार पूर्वजोंके स्व-भावके रूपान्तरका क्रम भी प्रत्येक बालक कम या अधिक समयके लिअे बताता है। माता-पिताके बचपनके दोष अुनकी बड़ी अुम्रमें सर्वथा दूर हो चुके हों, तो भी वे बालकमें कुछ समय तक वैसे ही दिखाअी देते हैं।

शरीर और स्वभावके अैसे परिवर्तन स्थूल या सूक्ष्म परिवर्तन — विकास — कहे जा सकते हैं।

(४) चौथा विकास आयुकी मर्यादाका है। सामान्यतः विभिन्न प्राणियोंकी आयु-मर्यादा निश्चित होती है। अुतने समयमें ये प्राणी बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थाके खेल पूरे कर जाते हैं। अलग अलग कारणोंसे यह मर्यादा कम-ज्यादा होती है।

(५) गाय और भैंसकी खुराक और अुनके पालनका तरीका अेकसा ही होता है। भैंस ज्यादा ताकतवर दिखती है, फिर भी गाय चंचल और तेजस्वी तथा भैंस जड़ मालूम होती है। तालीम

पाये हुअे कुत्ते और जंगली कुत्तेके तेजमें भेद होता है। सुसंस्कारी और कुसंस्कारी मनुष्यके तेजमें भेद होता है। बन्दरके हाथ-पांव मनुष्यके हाथ-पांवसे बहुत छोटे, पतले और नाजुक मालूम होते हैं, फिर भी वह अुनसे अिस तरह काम लेता है मानो वे फुटबॉलकी तरह हवासे भरे हुअे हों। मनुष्य अितनी चपलता नहीं दिखा सकता। कोअी मनुष्य पतला दिखता है, परंतु मोटे मनुष्यको हरा सकता है। यह बताता है कि अुसके शरीरके तत्त्व मोटे मनुष्यसे अधिक शुद्ध हैं। अूपर कहा जा चुका है कि जिस आमके सेरभर रसमें से पांच प्रतिशत मीठा तत्त्व मिलता हो, अुसमें अैसा सुधार करना कि सात प्रतिशत मीठा तत्त्व मिले, यह अेक प्रकारका विकास है। अुसी तरह शरीर या अिन्द्रियोंके कदमें फर्क न पड़ने पर भी अुनके तत्त्वोंकी शुद्धि बढ़े और अुससे शरीरकी या चित्तकी शक्ति बढ़ें, तो यह पांचवें प्रकारका विकास है। अिसे तेजविकास या प्राणविकास कहा जा सकता है।

(६) कुत्ते और घोड़ेमें स्वामिभक्तिकी भावनाका विकास हुआ है; चींटी, मधुमक्खी आदिमें समाज-रचना और अुद्यमशीलताकी भावना विकसित हुअी है; और सांपमें वैरकी तीव्र वृत्ति है, अैसा कहा जाता है। कुछ पक्षियोंमें सुन्दरताकी असाधारण दृष्टि होती है। मनुष्योंको देखें तो किसीमें द्वेषवृत्ति बलवान होती है तो किसीमें प्रेमवृत्ति; किसीमें झूठी बातें बनानेकी अजीब करामात होती है तो किसीमें अत्यन्त सत्यनिष्ठा; कोअी पराक्रमी होता है तो कोअी कायर; कोअी अुदार है तो कोअी कंजूस। अिस तरह विविध गुणोंका विकास हुआ दिखाअी देता है। अिसे भावना-विकास या गुणविकास कहा जा सकता है।

अब हम अिसकी चर्चा करेंगे कि अिन छः प्रकारके विकासोंमें किस प्रकारका कितना विकास मनुष्यके लिअे वांछनीय जीवन-विकास माना जायगा।

अिसका हम अनुक्रमसे विचार करें।

(१) कद-विकास — मनुष्य कितना अूंचा और मोटा हो सकता है, अिसकी किसी प्रकारकी मर्यादा होनी ही चाहिये, अैसा माननेका कोअी कारण नहीं। परंतु प्रत्येक युग और देशके लोग अपने समयके

लिअे अेक खास कदको ठीक मानते हैं; अुससे कम या ज्यादाको ठीक नहीं समझते। बहुत अूंचे मनुष्यको ताड़-जैसा कहकर, बहुत ठिंगनेको बौना कहकर, बहुत मोटेको हाथी जैसा कहकर और बहुत दुबले-पतलेको बांसकी अुपमा देकर हमने कदके प्रमाणकी अमुक मर्यादा बना ली है। अुतने कदको पहुंचना हम सबके लिअे वांछनीय समझते हैं और अुतने कदको अुस युग और देशके लिअे काफी मानते हैं। अुससे अूंची मर्यादाको सारी जाति पहुंचे तो अुसे बुरा नहीं मानते, परंतु अेकाध व्यक्तिका अिस दिशामें अपवादरूप विकास आदर्श नहीं माना जाता। अिस तरह कद-विकासकी मर्यादा बंध चुकी है। कद-विकासकी दृष्टिसे जीवन-विकासका अर्थ हमने निश्चित किया है — अुस बंधी हुअी मर्यादा तक पहुंचना। कद-विकासकी मर्यादा न बांधना और अुसे अमर्यादित रूपमें बढ़ानेके लिअे अपना सारा पुरुषार्थ लगा देना किसीको ध्येयके रूपमें स्वीकारने जैसा नहीं लगता।

(२) अब अिन्द्रिय-विकासका विचार करें। मनुष्यकी प्रत्येक अिन्द्रियके विकासकी कोअी सामान्य मर्यादा निश्चित नहीं की जा सकी है। अत्यन्त नाटा या अत्यन्त अूंचा कद जिस तरह अच्छा नहीं लगता और मजाक अुड़ाकर अुसके प्रति अनादर दिखाया जाता है, वैसा सारे अिन्द्रिय-विकासके लिअे नहीं है। शरीरके अवयवोंके कदके लिअे — अिन्द्रियोंके स्थूल विकासके लिअे — अमुक मर्यादा अवश्य मानी गअी है। गरदन, अंगुलियां, आंखें, कान, नाक आदि बहुत लंबे या बहुत छोटे हों, तो अुनकी टीका की जाती है। परंतु अिन अिन्द्रियोंकी शक्तिके लिअे कोअी मर्यादा नहीं तय की जाती। शक्तिकी दृष्टिसे अुनका असाधारण विकास आदरपात्र माना जाता है। पहलवानकी कुश्ती लड़ने, मोटर रोकने, भारी वज़न छाती पर अुठाने या सांकल तोड़नेकी शक्ति, निशानेबाजकी आंखोंकी तेजी, गायक या वक्ताका आवाज पर प्राप्त किया हुआ अधिकार, कवि या नाटककारकी अतिशय कल्पनाशक्ति, शतावधानीकी अद्भुत स्मरणशक्ति, वकीलकी तर्कशक्ति और वैज्ञानिककी अवलोकन-शक्ति जितनी अधिक हो अुतनी वांछनीय समझी जाती है। और अिस कारणसे साधारणतः यह माना गया है कि

बालककी जिस अिन्द्रियकी शक्तिमें विशेषताकी ओर जानेका झुकाव मालूम होता हो, अुसीको प्रोत्साहन देना ठीक है।

मेरी नम्र रायमें अिस मान्यता पर तीन दृष्टियोंसे विचार किया जाना चाहिये।

साधारणतः हमारा यह खयाल होता है कि हममें अनेक प्रकारकी स्वतंत्र शक्तियां हैं; अलग अलग कर्मेन्द्रियोंकी शक्ति या अलग अलग ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्ति अेक-दूसरेसे स्वतंत्र है; कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी शक्ति अेक-दूसरेसे स्वतंत्र है; ज्ञानेन्द्रियों और अन्तःकरणकी शक्ति अेक-दूसरेसे स्वतंत्र है। अन्तःकरणकी कल्पनाशक्ति, स्मृतिशक्ति, तर्क-शक्ति आदि अेक-दूसरेसे स्वतंत्र हैं। अिसलिअे अेकका अधिक विकास करनेसे दूसरी किसी बाहरी या भीतरी अिन्द्रियके कुंठित होनेका भय रखनेकी जरूरत नहीं।

यह खयाल मुझे गलत मालूम होता है।* मुझे लगता है कि किसी अेक समयमें प्रत्येक मनुष्यके पास समग्र शक्तिका अेक निश्चित भंडार होता है। हर मनुष्यका यह भंडार कम-अधिक हो सकता है; जीवनके अलग अलग समयमें अेक ही मनुष्यका यह भंडार कम-अधिक हो सकता है। बचपनमें बढ़ सकता है, बुढ़ापेमें घट सकता है; बीमारी, भुखमरी वगैराके कारण घट सकता है। व्यायाम, प्राणायाम, अन्न, औषधि आदिसे बढ़ सकता है। यह अेक ही भंडार अलग अलग अिन्द्रियोंमें बंटा हुआ होता है। यह बंटवारा कम-ज्यादा अंशमें हुआ रहता है। किसी मनुष्यकी अेक कर्मेन्द्रियमें अिसका बड़ा अंश होता है तो किसीकी दूसरीमें। किसीकी कर्मेन्द्रियमें तो किसीकी ज्ञानेन्द्रियमें। किसीकी अेक ज्ञानेन्द्रियमें तो किसीकी दूसरी ज्ञानेन्द्रियमें। किसीकी अेक कर्मेन्द्रिय और अेक ज्ञानेन्द्रियको अुसका अधिक अंश मिला होता है, तो किसीकी अन्तरिन्द्रियोंको अुसका विशेष अंश मिला होता है। अिस समग्र भंडारमें वृद्धि हुअे बिना किसी अेक

* अिस विषयमें मेरा अवलोकन पूर्णताको पहुंच गया है, अैसा विश्वास न होनेके कारण मैं यहां निश्चयात्मक क्रियापदोंका प्रयोग नहीं करता।

अिन्द्रियका अधिक विकास दूसरी किसी अिन्द्रियमें न्यूनता अुत्पन्न किये बिना नहीं हो सकता। अिसलिअे यदि किसीमें गानेकी या चित्र बनानेकी विशेष शक्ति हो और अपनी समग्र शक्तिके भंडारमें वृद्धि हुअे बिना वह केवल अपनी अिस शक्तिको ही बढ़ावे, तो दूसरी किसी अिन्द्रिय या अन्तःकरणकी शक्तिमें कमी हो सकती है।*

यह अेक बात हुअी।

मनुष्यका स्वाभाविक झुकाव अैसा मालूम होता है कि अुसे भरे हुअेमें अधिक भरना ज्यादा अनुकूल लगता है। अिसलिअे जीवनमें मालूम होनेवाले दूसरे दोषोंको दूर करनेके अुपायके रूपमें वह अैसा करता है और यह अुसे सुखपूर्ण लगता है। अुदाहरणके लिअे, मान लीजिये कि अेक मनुष्यकी समग्र शक्ति १०० तोला है। अुसमें से २५ तोले अुसकी आंखोंमें, २५ तोले अुसकी अंगुलियोंमें, २५ तोले कल्पनाशक्तिमें और बाकीके २५ तोले दूसरी कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा अन्तःकरणमें हैं। अपनी आंखों, अंगुलियों और कल्पनाशक्तिको २५–२५ तोलेके बजाय ३०–३० तोले देना अुसके लिअे आसान है; परंतु वहां २०–२० तोलेका प्रवाह भेजकर दूसरी अिन्द्रियोंको १५ तोले ज्यादा देना अधिक कठिन

* यह बात लिखनेके बाद शरीर-विज्ञान (Physiology) की अेक पुस्तक पढ़नेसे मुझे मालूम हुआ कि अूपरका कथन बेबुनियाद नहीं है। शरीरशास्त्री मानते हैं कि हमारे शरीरकी कुछ गांठें हड्डियां बढ़ानेवाली हैं, कुछ मांस, चरबी, शक्ति आदि बढ़ानेवाली हैं। अमुक आयु तक हड्डियां बढ़ानेवाली गांठें अितनी खाअू होती हैं कि हम जो कुछ खाते-पीते हैं, अुसका अधिक भाग ये गांठें ही चूस लेती हैं; यहां तक कि दूसरी गांठें भूखों मरती हैं। किसी किसी प्राणीको खुराक न मिलती हो, तो भी अुसकी हड्डियां बढ़ती मालूम होती हैं। यदि अन्नमें से रस न मिले, तो शरीरमें जो थोड़ा-बहुत मांस होता है, अुसे भी चूस कर ये गांठें हड्डियां बढ़ानेका काम करती हैं। अिसी तरह कुछ लोगोंके सब रसोंको चरबीमें बदलनेवाले भाग खूब क्रियाशील होते हैं, और कुछके दूसरे भाग। यही नियम अिस विषयमें भी लागू होता दिखाअी देता है।

और विशेष प्रयासके बिना असाध्य होता है। असलिअे अुसे २५ के बजाय ३० तोले देना अधिक सुखकारक और विकास करानेवाला लगता है। अिस तरहका विषम बंटवारा यह भान कराये बिना नहीं रहेगा कि जीवनमें कुछ कमी है। लेकिन मनुष्यके अिस झुकावके कारण अुसे अैसा लगता है कि यह कमी दूर करनेका अुपाय ३० तोलेके बजाय ३२ तोले करनेमें है। अिस तरह मनुष्य अपनी अिन्द्रियोंके झुकावका अधिकाधिक आग्रहपूर्वक अनुसरण करता है। बुद्धिमान मनुष्य मानता है कि मेरे जीवनमें मालूम होनेवाली कमी बुद्धिको ही ज्यादा कसनेसे पूरी होगी। कल्पनाशील मनुष्य कल्पनामें अधिक रमता है। ध्यानी ध्यानमें रत रहनेका प्रयत्न करता है। पहलवान यह मानता है कि जीवनमें मालूम होनेवाला असंतोष ज्यादा कुश्तियां लड़नेसे दूर होगा। गायक गा-गा कर दुःख मिटानेका प्रयत्न करता है। डॉक्टर किसी बुद्धिजीवीसे पढ़ना बन्द करनेको कहता है, तो वह अुसे ज्यादा कठिन मालूम होता है; और वह अैसा मानता है कि अिससे तो मैं अुलटा जल्दी मर जाअूंगा। यह बात कौन नहीं जानता?

यह हुआी दूसरी बात।

स्वाभाविक झुकावका पोषण करनेके सिद्धान्तके पीछे यह खयाल है कि अनुकूल परिस्थितियां ही विकासके लिअे अुपयोगी हैं। विकासके अूपर बताये हुअे प्रकारोंका विचार करनेसे मालूम होगा कि किसी विकासके लिअे अनुकूल परिस्थितियां जरूरी होती हैं; तो किसी विकासके लिअे असह्य न लगनेवाली प्रतिकूल परिस्थिति या आघात आवश्यक होता है। किसी विकासके लिअे शक्तिका अुपयोग हो अैसा श्रम करना आवश्यक होता है। और किसी विकासके लिअे शक्तिके खर्चको रोकना — अुसे संयममें रखनेका प्रयत्न करना आवश्यक है। अेक छोटा बच्चा भी घोड़ेको दौड़ा सकता है; परंतु अुसे रोकनेके लिअे होशियार आदमीकी जरूरत पड़ती है। ट्रामका ब्रेक दबाते समय ही मालूम होता है कि अुसे चलाना कमजोर आदमीके बूतेका काम नहीं है। रेलगाड़ीकी पटरीका सांधा बदलनेमें बहुत जोर लगाना पड़ता है। अुसी प्रकार अेक ही दिशामें बहते रहनेवाले शक्तिके प्रवाहको

रोककर दूसरी दिशामें मोड़ना कठिन है, लेकिन विकासके लिअे बहुत जरूरी है।

यह तीसरी बात हुअी।

गुणविकास — भावना-विकास — का विचार करते समय अिन बातोंका महत्त्व अधिक मालूम होगा।

अिन तीन बातोंका विचार करने पर यह जरूरी मालूम होता है कि जिस तरह कद और अिन्द्रियोंके स्थूल विकासकी मर्यादा बांधनी चाहिये, अुसी प्रकार अिन्द्रियोंके सूक्ष्म विकासकी भी मर्यादा बांधनी चाहिये। मैं शरीरको बलवान बनाअूंगा। किस हद तक? हाथोंको बलवान बनाअूंगा। कहां तक? सांस रोकनेकी शक्ति बढ़ाअूंगा। किस दर्जे तक? मैं कानों और आंखोंको तेज बनाअूंगा; वक्तृत्व-शक्ति प्राप्त करूंगा; गानेकी कलाका विकास करूंगा; चित्रकला सीखूंगा; तर्कशक्ति, कल्पनाशक्ति और स्मरणशक्ति तेज करूंगा। परंतु सब कहां तक? शरीर, अिन्द्रियां, अन्तःकरण सबका बलवान या तीव्र होना जरूरी है। परंतु किसी अेक अंगके अपार बल या तीव्रतामें जीवनकी पूर्णता नहीं है। अपने देश, काल, जाति, वय, परिस्थिति आदिका ध्यान रखकर किसी अंगका कहां तक विकास किया जाय, अिसकी कोअी सीमा तो होनी ही चाहिये। प्रत्येक मनुष्यमें कुछ अंगोंका दूसरे अंगोंसे अधिक विकास होगा ही। सुतारकी आंखों, हाथों वगैराका विकास होगा ही। हरकारेके पांव अवश्य मजबूत बनेंगे। केवल परिस्थितिके कारण ही अिस तरह अिन अिन्द्रियोंको मिलनेवाला शक्तिका अधिक प्रवाह अनिवार्य और अनिष्ट नहीं होता। परंतु तालीमकी बुद्धिपूर्वक योजना बनानेवालेके लिअे केवल बालकके स्वाभाविक झुकावको पोषण देनेकी दृष्टि रखना अुचित नहीं होगा।

कद-विकासके बारेमें साधारणतः यह कहा जा सकता है कि अेक अुम्रके बालक अेक ही वर्गमें आते हैं। अुनके लिअे समान व्यवस्था की जा सकती है। अमुक अुम्र तक अनिवार्य रूपसे कद-विकास करनेका नियम बनाया जा सकता है। लेकिन अिन्द्रिय-विकासके बारेमें वर्ग बनाना कठिन होता है। अेक ही अुम्रके दो बालकोंका अिन्द्रिय-

विकास अेकसा नहीं होता। किसी बालककी कोओी अिन्द्रिय जन्मसे ही अत्यन्त विकसित हो सकती है, और संभव है किसीकी वह अिन्द्रिय जरा भी विकसित न हो। जिसकी जो अिन्द्रिय विकसित होगी, अुसकी वह अिन्द्रिय सामान्य कद-विकासके साथ और शक्तिका कुल भंडार बढ़नेके साथ अधिक बलवान होगी। जिस बालकका अैसा न हो, अुसे अुस अिन्द्रियके विकासके लिअे विशेष प्रकारकी सुविधा देनी पड़ सकती है। अिसलिअे अैसा भी हो सकता है कि बालकका स्वाभाविक झुकाव जो चीज चाहे, वह चीज अुसे देनेकी व्यवस्था करनेके बजाय (कमसे कम अुसके साथ-साथ) शिक्षकका कर्तव्य अुसमें जो कमी हो अुसे पूरा करनेका हो जाय।*

(३) परिवर्तन-विकास — जगतकी विभिन्न प्रजाओं द्वारा किये गये स्वर्गोंके वर्णनोंमें चार या चारसे ज्यादा हाथों, पैरों और अनेक आंखोंवाले शरीरकी कल्पना की गअी है। नरकके वर्णनमें

---

* यह माननेका कोओी कारण नहीं मालूम होता कि जिस अिन्द्रियको जन्मसे ही विशेष शक्ति प्राप्त हुअी है, अुस पर कम ध्यान देनेसे वह शक्ति घट जायगी। दूसरी अिन्द्रियोंकी ओर शक्तिका प्रवाह मोड़नेमें श्रम करना पड़ता है, क्योंकि बलवान अिन्द्रिय अधिक विरोध करती है। 'अिन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।' बलवान पौधे या बलवान प्राणीकी अुपेक्षा करें, तो भी अन्तमें तो वही बड़ा हिस्सा दबा जानेवाला है। मेरे कहनेका यह आशय नहीं कि अिन्द्रियोंकी स्वाभाविक शक्तियोंकी वृद्धिको कृत्रिम तरीकोंसे रोका जाय, या किसीमें गानेकी शक्ति मालूम हो तो अुसके लिअे न गानेका नियम बना दिया जाय और अुस शक्तिको कुंठित करनेका प्रयत्न किया जाय। अितनी अनुकूलता अुत्पन्न कर देना काफी होगा, जिससे वह शक्ति अपने ही प्रयाससे विकसित हो सके। लेकिन शिक्षाशास्त्रीको बालककी दूसरी अिन्द्रियों पर अधिक ध्यान देना चाहिये। अिसके लिअे आवश्यक होने पर वह गानेकी प्रवृत्ति पर नियंत्रण भी रखेगा। अेक बात हमेशा याद रखना चाहिये कि सारे प्रयत्नोंके बावजूद जो प्रकृति बलवान होगी, वह अपना स्वभाव पूरी तरह नहीं छोड़ेगी। 'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ?'

सींगवाले, पेटमें आंखों या मुंहवाले और अुलटी अेड़ियोंवाले यमदूत चित्रित किये गये हैं। अिसलिअे चतुर्भुज, अष्टभुज, अुड़ सकनेवाले, सहस्राक्ष आदि प्राणियोंमें रूपान्तर पानेकी अिच्छा कुछ लोगोंको अच्छी मालूम होती है। और विकृत — विपरीत — विकास (अुलटा विकास) क्या होता है, अिसकी भी कल्पना की गयी है। परंतु साधारण मनुष्य, कमसे कम अिस जीवनमें, स्थूल परिवर्तनकी अिच्छा नहीं रखते और आज मनुष्य जितने और जैसे अवयवोंवाला प्राणी है, अुससे संतुष्ट मालूम होते हैं। अिसलिअे स्थूल परिवर्तन-विकासका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती।

लेकिन सूक्ष्म परिवर्तन-विकास अत्यंत महत्त्वपूर्ण और चिन्ता अुत्पन्न करनेवाला है।

अेक छोटे बारीक कीड़े जैसे जलचर जन्तुमें से लंबे समयके बाद जमीन पर फुदकनेवाले मेंढ़कका रूपान्तर होना चाहे जितना आश्चर्यजनक मालूम हो, फिर भी हमारा विश्वास है कि यह रूपान्तर धीरे धीरे — परिवर्तनकी गति निगाहसे न पकड़ी जा सके अिस तरह — हुआ है। नाटकमें पिस्तौलके धड़ाकेके साथ जिस तरह दृश्य-परिवर्तन किया जाता है, वैसे यह परिवर्तन अेकाअेक नहीं होता। जमीन पर हाथ-पैर मारने-वाला और रोनेके सिवा दूसरी आवाज न निकाल सकनेवाला बालक धीरे धीरे बैठने, घुटने चलने, खड़ा होने और चलने लगे तथा मामूली आवाजें करते-करते बड़ोंकी तरह स्पष्ट बोलने लगे, तब तक हम धीरज रख सकते हैं। परंतु स्वभाव-परिवर्तनके बारेमें हम अितना धीरज नहीं दिखाते। कोओी हमसे कहे कि अेक बालक परसों पैदा हुआ, कल घुटने चलने लगा और आज दौड़ने लगा है, तो हम अिसे अद्भुत मानकर अुसकी तरफ कोओी ध्यान नहीं देंगे। लेकिन जिस बालकको आज चोरी करनेकी आदत है, दूसरे ही दिन अुसके सुशील बन जानेकी आशा हम छोड़ नहीं सकते। हमारी अैसी मान्यता दिखाओी देती है कि स्वभावके परिवर्तनमें मानो कोओी क्रम ही नहीं है, जादूके खेलकी तरह वह अेकाअेक हो जाता है। पिता स्वयं जिस हठ, कुटेवों और दुर्गुणोंका शिकार हो चुका हो, अुनका दर्शन बालकमें

होने पर वह अधीर बन जाता है और अुनसे बालकको छुड़ानेके लिअे जमीन-आसमान अेक कर डालता है। लेकिन स्वभावका जो परिवर्तन माता-पितामें हुआ होगा, वह परिवर्तन यथासमय — कोअी खास रोकनेवाले कारण न हों तो — बालकमें हुअे बिना नहीं रहेगा। अुससे अधिक परिवर्तन होनेमें अिससे ज्यादा लंबा समय लगेगा; और अुसका परिणाम बहुत लंबे समयके बाद देखनेमें आयेगा। स्वभावके परिवर्तनकी गति अितनी सूक्ष्म होती है कि स्थूल दृष्टिसे तो अैसा ही लगता है कि मूल स्वभाव कभी मिट ही नहीं सकता।

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।। (गीता ३–३३)

(ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वभावके अनुसार ही व्यवहार करता है। प्राणीमात्र अपनी प्रकृतिकी तरफ ही जाते हैं; निग्रह क्या कर सकता है?)

फिर भी, यह अंतिम सत्य नहीं है। धीरे धीरे ही क्यों न हो, स्वभावमें परिवर्तन अवश्य हो सकता है। और जान-अनजानमें अिस बातको हम जानते भी हैं, तभी तो अिस दिशामें अनेक प्रकारकी प्रवृत्तियां होती रहती हैं। शालाओं, जेलों, रिफॉर्मेटरियों, धार्मिक संप्रदायों तथा सामाजिक और राजनीतिक सुधारके आन्दोलनोंका हेतु व्यक्ति या प्रजाके स्वभावमें परिवर्तन करानेका ही होता है। अिस तरह सूक्ष्म भूमिकाके विकासमें हम किसी प्रकारकी मर्यादा नहीं बांधते।

(४) आयु-विकास — अिस विषयमें कुछ लोगोंकी महत्त्वाकांक्षा शरीरको अमर बनाने तक पहुंची है। लेकिन साधारणतः १०० वर्षकी आयुको हमने अत्यन्त संतोषकारक और ७५ वर्ष तक पहुंचनेमें संतोष माना है। केवल दीर्घायु वांछनीय भी नहीं लगती। दीर्घायुके साथ शरीरकी, अिन्द्रियोंकी, बुद्धिकी शक्तियां बनी रहें, नये संस्कार प्राप्त करनेकी शक्ति कुंठित न हो और जिन साथियोंके साथ हमारा जीवन बीता हो वे हमें छोड़कर चले न जायं, तो ही दीर्घायु स्वागतके योग्य मालूम होती है। अिसलिअे आयु-विकासके बारेमें भी हमने आकांक्षा-को मर्यादित रखा है।

(५) अब तेज या प्राण-विकासके प्रश्न पर विचार करें। गुजरातीके कवि नानालालने गांधीजीकी दुर्बलताको ध्यानमें रखकर अुन्हें 'मानव तिनका'—तिनके जैसा मानव—कहा है। गांधीजी शरीरकी शोभा बढ़ानेके लिअे कोअी मेहनत नहीं करते। अुनकी चमड़ी भी गोरी नहीं है। फिर भी अुनके मुंह पर आंखोंमें समा जानेवाली कांति दृष्टि-गोचर हुअे बिना नहीं रहती। अुनके अंग-प्रत्यंगसे जैसा जीवन फूटता दिखाअी देता है, वैसा बहुतसे व्यायाम करनेवालोंमें भी नहीं दिखाअी देता। अुनकी बुद्धि कभी कुंठित नहीं होती। सूक्ष्म और पेचीदा बातोंके पीछे रहे तत्त्वको भी वे तुरंत समझ लेते हैं। दूसरी ओर देखें तो अनेक विषयोंमें अुनकी जानकारीका भंडार अुससे बहुत कम है, जिसकी अपेक्षा अैसे महान कार्य करनेवाले पुरुषसे रखी जा सकती है। जान-कारीके भंडारका अर्थ यदि हम ज्ञानकी समृद्धि करें, तो बहुत बार गांधीजीका अज्ञान आश्चर्यजनक माना जायगा। अुनकी काम करनेकी शक्ति पहलवानोंको भी शरमानेवाली है। सारे दिन काम करने पर भी न तो अुनका मन थकता है और न शरीर। कमसे कम आरामसे अुनका काम चल जाता है। सख्तसे सख्त बीमारीके बाद भी वे तेजीसे स्वास्थ्य-लाभ कर सकते हैं। यह सब बताता है कि गांधीजीकी प्राण-शक्ति अत्यन्त बलवान है। यदि गेहूं और बादामकी अुपमा काममें ली जाय, तो कह सकते हैं कि अनेक लोगोंके शरीरमें यदि गेहूंके तत्त्व होते हैं, तो गांधीजीके शरीरमें बादामकी गिरी भरी हुअी है।

बोझ ढोनेवाले घोड़े और सवारीके घोड़े, भैंस और गाय, भेड़ और बकरी, कायर और शूरके बीच अैसा प्राण-विकासका भेद ही समझा जा सकता है।

कद-विकास और अिन्द्रिय-विकाससे भी प्राण-विकासका अधिक महत्त्व है।* शक्तिके भंडारकी वृद्धि, अिन्द्रियोंकी शक्तिकी वृद्धि और

---

*अैसा नहीं समझना चाहिये कि किसी भी प्रकारका विकास दूसरे प्रकारके विकाससे बिलकुल स्वतंत्र है। प्रत्येक विकास कुछ हद तक दूसरे विकास पर आधार रखता है, कुछ हद तक स्वतंत्र रूपसे सिद्ध किया जा सकता है और कुछ हद तक अेकका विकास दूसरेके विकासका विरोधी होता है। अिसकी अधिक चर्चा अन्यत्र की गअी है।

प्राणशक्तिकी वृद्धि अेक ही है, अैसा नहीं मानना चाहिये। अहमदाबादमें मैंने अेक अैसा शक्तिशाली पहलवान देखा है, जो मेरे जैसोंके हड्डे केवल दो हाथोंके बीच दबाकर ही तोड़ सकता था। परन्तु मैंने देखा कि मेरे जैसा ही दुबला-पतला अेक कारकुन असके साथ अितनी अुद्धततासे बात करता था कि वह अुसे सह कैसे सकता होगा, यह मेरी समझमें नहीं आता था। पहलवानकी शक्तिमें तेजस्विता नहीं थी। कोयलेका पूरा थैला अेक ही बारमें सुलगा दें, तो भी अुसके प्रकाशमें पढ़ा नहीं जा सकता। परन्तु अेक छोटीसी मोमबत्तीके प्रकाशमें पढ़ा जा सकता है। अर्थात् दोनोंके तेजधर्मी होते हुअे भी दोनोंमें गुणभेद है। मोमबत्तीकी तेजशक्ति अधिक शुद्ध है। अिसी तरह बालकका प्राण-विकास हो, अुसकी सारी शक्तियां अधिक तेजस्वी बनें, यह महत्त्वकी चीज है।

लेकिन अतिशय प्राण-विकास भी मनुष्यताका विशेष लक्षण नहीं कहा जा सकता। बाघ और सिंह भी अतिशय तेजस्वी प्राणी हैं। यह कहा जा सकता है कि जहां जहां पराक्रम है, वहां वहां प्राणकी अधिकता है। परन्तु अैसे अनेक पराक्रमी पुरुष हैं, जिन्हें अधम पुरुष कहा जा सकता है। परशुराम और रावण अथवा सिकंदर और नेपो-लियन प्राणवान मनुष्योंकी अूंची श्रेणीमें रखे जा सकते हैं, परन्तु वे आदर्श नहीं कहे जा सकते।

(६) अन्तमें गुण-विकासके प्रश्न पर विचार करना चाहिये।

संभव है अिन्द्रिय-विकासके विषयमें मैंने जो दृष्टि सामने रखी है, वह अरुचिकर मालूम हो। किसी बालकका किसी विशेष अिन्द्रियकी शक्तिकी ओर स्वाभाविक झुकाव मालूम होता हो, तो अुसीके पोषणके लिअे अनुकूलता अुत्पन्न करनेके बदले किसी अन्य अिन्द्रियके विकासके लिअे परिश्रम करना कुछ लोगोंके विचारसे अनुचित है। परन्तु अिसी सिद्धान्तका गुण-विकासके सम्बन्धमें अमल करनेसे कितना विपरीत परिणाम आयेगा, यह आसानीसे समझा जा सकता है। मनुष्यको जिस तरह अिन्द्रियोंकी शक्तिकी अत्यन्त विविध प्रकारकी विरासत मिली होती है, अुसी तरह गुणोंकी विरासत भी अत्यन्त विविध होती है। बहुत अंश तक यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्यकी विशिष्टता

अिन दो कारणोंसे है। कोअी बालक बचपनसे ही क्रोधी होता है और कोअी क्षमाशील होता है; कोअी अुदार होता है तो कोअी कंजूस; और कोअी परोपकारी होता है। क्रोधीके क्रोध गुणका और कंजूसके अनुदारता गुणका विकास करना क्या अुचित होगा? अथवा अुसकी क्रोधवृत्तिको किसी दूसरे गुणकी ओर मोड़नेका प्रयत्न अुचित माना जायगा?

अभ्यास -- अर्थात् अेक ही प्रकारका सतत परिश्रम -- अेक ही शक्तिको बढ़ाता और दृढ़ करता है; आगे चलकर वह अितनी दृढ़ हो जाती है कि यंत्रकी तरह अुसका अुपयोग किया जा सकता है। टाअिपिस्ट आंख मींचकर टाअिप कर सकता है। कंपोजीटर आंख मींचकर टाअिप जमा सकता है। कर्मेन्द्रियोंके सम्बन्धमें अिन्द्रियोंकी अैसी दृढ़ आदत बन सकती है, अिसमें हमें कोअी शंका नहीं होती। परन्तु यह नियम ज्ञानेन्द्रियों और अन्तःकरणको भी लागू होता है। आंखोंको सीधा-टेढ़ा देखनेकी ठीक तालीम मिल जानेसे वे तुरन्त सीधे और टेढ़ेको पहचान सकती हैं; अेक क्षणमें लक्ष्यको अच्छी तरह बींध सकती हैं। अन्तःकरणके व्यापार भी अिसी नियमसे चलते हैं। झूठी बातें बनानेकी आदत डालते डालते बिना प्रयास झूठी बातें गढ़ लेनेका अभ्यास हो जाता है। कल्पनायें करनेका स्वभाव बनाते बनाते बिना प्रयास मनमें नअी नअी कल्पनायें स्फुरित होनेकी आदत पड़ जाती है। शब्दालंकारवाले वाक्य बोलनेकी आदत डालने पर अुसमें भी कुशलता प्राप्त हो जाती है। जिस दिशामें विचारोंके प्रवाहको मोड़ें, अुस दिशाके विचार स्वयं स्फुरित होते मालूम होते हैं। दलीलके भीतर रही हुअी गलती आसानीसे खोजी न जा सके अिस प्रकार दलील करनेका अभ्यास वकील लोग करते हैं, और कुछ समय बाद वह अुनका दृढ़ स्वभाव बन जाता है। बादमें अनजाने भी प्रत्येक विषयमें अुन्हें शब्दोंकी गहराअीमें अुतर कर बालकी खाल निकालनेकी आदत हो जाती है। स्मृतिको कसते कसते अुसमें भी अनोखी प्रवीणता प्राप्त हो जाती है।

यही बात गुणोंको भी लागू होती है। क्रोध करते करते मनुष्य हवाके साथ भी लड़ पड़े अैसा क्रोधी बन जाता है। लोभ बढ़ाते

बढ़ाते अितना बढ़ सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्य पा लेने पर भी सन्तोष न हो।

जो बात दुर्गुणोंके लिअे सच है, वही सद्गुणोंके लिअे भी है। 'अुत्तर-रामचरित' में अिस आशयका अेक श्लोक है कि सामान्य मनुष्योंकी वाणी घटनाओंका वर्णन करती है, परन्तु सत्पुरुषोंकी वाणीके पीछे घटनायें आती हैं। सत्यकी अुपासना करते करते अैसा स्वभाव बन जाता है कि अनायास बोला हुआ वाक्य भी सत्य ही निकले। अहिंसाकी अुपासना करते करते अहिंसा ही मनुष्यका स्वभाव बन जाती है। किसीके साथ विरोधका प्रसंग अुत्पन्न होने पर हमें खोजने पर भी सत्याग्रहके अुपाय नहीं सूझते; किसी क्रोधयुक्त विरोधका ही मार्ग सूझता है। और गांधीजीको, मानो विचार किये बिना ही, सत्याग्रही अुपाय ही सूझते हैं।

हमारी प्रत्येक छोटी-मोटी क्रिया और हम पर बाहरसे पड़नेवाला प्रत्येक छोटा-बड़ा संस्कार केवल हमारी अिन्द्रियों अथवा अन्तःकरणको ही किसी प्रकारका मोड़ नहीं देते, बल्कि हममें किसी गुणका संस्कार भी डालते हैं। अेक ही प्रकारका अैसा संस्कार पड़नेसे वह गुण दृढ़ बनता है, और समय पाकर वह हमारी दृढ़ प्रकृति बन जाता है। प्रत्येक मनुष्यकी अैसी दृढ़ प्रकृति ही अुसका स्वभाव है।

हमारी अपनी अुन्नति-अवनति, सुख-दुःख, शान्ति-व्यथाका आधार हमारे कद-विकास, अिन्द्रिय-विकास या प्राण-विकाससे अधिक हमारे गुण-विकास पर होता है। हम जिस समाजमें और जिन प्राणियोंके बीच रहते हैं, अुनकी अुन्नति-अवनति, सुख-दुःख और अुनकी शान्ति-व्यथाका आधार भी हमारे गुण-विकास पर ही रहता है। प्रेमल और ममतालु मनुष्य स्वयं ही सुखका अनुभव नहीं करता, परन्तु अपने पड़ोसियोंको भी सुख देता है; दयालु मनुष्य स्वयं ही सात्त्विक आह्लाद अनुभव नहीं करता, दया लेनेवालेको भी सुखी करता है। व्यवस्थित मनुष्य स्वयं ही व्यवस्थाके लाभ नहीं अुठाता, बल्कि आसपासके सभी लोगोंको अुसका लाभ मिलता है। जिस प्रकार अूंची जातिके परन्तु छोटे आमका मीठा रस जो स्वाद दे सकता है, वह बड़ा लेकिन

खट्टा आम नहीं दे सकता, अुसी प्रकार नाटा, छोटी अुमरका, विकलेन्द्रिय, बहुत शक्ति न रखनेवाला परन्तु मीठे स्वभावका मनुष्य जो संतोष दे सकता है, वह संतोष शक्तिशाली, सारी अिन्द्रियोंमें परिपूर्ण और अत्यन्त प्राणवान होते हुअे भी दुर्वासा जैसा क्रोधी मनुष्य नहीं दे सकता।

अिस तरह विचार करने पर पता चलता है कि सद्गुणोंका विकास अेक अैसी चीज है, जिसके साथ यदि अन्य प्रकारका विकास हुआ हो तो अधिक अच्छा फल अवश्य मिलता है; परन्तु सद्गुणोंके विकासके बिना अन्य सारे प्रकारोंका विकास न केवल जीवनको या समाजको सुख-शान्ति देनेमें निष्फल सिद्ध होता है, बल्कि अभिशापका रूप भी ले सकता है। गीताके श्लोकार्धमें थोड़ा परिवर्तन करके कहा जा सकता है:

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य कल्याणाय भवेत् सदा।

(अिसका अल्पांश भी कल्याणको देनेवाला ही होता है।)

किसी अेक ही सद्गुणका अतिशय विकास मनुष्यको अेकांगी और अेक दृष्टिवाला बना सकता है; अुतने अंश तक अुसमें अपूर्णता भी रह सकती है। फिर भी अेक ही सद्गुण अुसे और समाजको सुखी बनानेमें अवश्य हाथ बंटाता है। अैसे अनेक गुणोंका विकास अुसे मनुष्योंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कराता है।

विचारनेसे मालूम होता है कि मनुष्यके मनुष्यत्वका विकास अुसके गुणोत्कर्षमें है; अुसके स्नायुबल, कारीगरी, कल्पनाशक्ति या सूक्ष्म बुद्धिमें भी नहीं है।

अिसलिअे विकासमें गुण-विकासका सबसे बड़ा महत्त्व है। अुसके साथ अन्य सब प्रकारका विकास आशीर्वादरूप हो सकता है। वह हो तो फिर प्राण-विकास कितना भी बढ़ाया जा सकता है; अिन्द्रियों और कदका विकास भी अनुकूलताके अनुसार बढ़ सकता है। परन्तु गुण-विकासके अभावमें मनुष्य या तो असुर रहेगा या पशु रहेगा।

१५

विकासके मार्ग

विकासके विषयका विचार करते हुअे मुझे अैसा लगा कि विकासवादके शास्त्रियोंने जितना कद-विकास, अिन्द्रिय-विकास और परिवर्तन-विकासका विचार किया, अुतना प्राण-विकास और गुण-विकासका नहीं किया है। और अिसलिअे दूसरे विकासों पर होनेवाले अुनके परिणामोंका भी विचार नहीं किया है।

अिसके सिवा, विकासका अवलोकन तो हुआ है, परन्तु अुसके कारणोंका बहुत विचार नहीं किया गया। अेक कोषके 'अेमीबा' का विकास होकर वह दो कोषवाला प्राणी बना यह बात तो कही गअी, परन्तु अिस बातका विचार किया मालूम नहीं होता कि अिस तरह अेक कोषवाले प्राणीके दो कोषवाला हो सकनेका कारण क्या है।

अुसी प्रकार बिल्ली अितनी छोटी क्यों रही और बाघ अितना बड़ा कैसे हो सका, वानर और मनुष्यके बीच भेद निर्माण होनेका कारण क्या है—अिस पर भी कोअी विचार किया गया हो अैसा मालूम नहीं होता। गुण-विकासके प्रश्नको तो छुआ ही नहीं गया है।

विकासके कारणोंमें भी बाह्य परिस्थितियोंके कारण विकास पर जो असर होता है अुस असरका जितना विचार किया गया है, अुतना प्राणीके आचरणका विचार नहीं किया गया। देश, हवा, ॠतु, सुकाल, दुष्काल, अनुकूलता, प्रतिकूलता अित्यादिके परिणामोंका विचार तो किया गया है, परन्तु प्राणीके स्वतंत्र आचरणके परिणामोंका विचार नहीं किया गया।

अिसका अेक कारण तो यह मान्यता रही है कि प्राणी केवल बाह्य परिस्थितियोंके दबावसे अुत्पन्न होनेवाली प्रेरणा (instinct) से चलनेवाले जीव हैं। यह स्वीकार नहीं किया गया कि अुनमें संयम अथवा आत्म-नियमन (self-regulation) की कोअी शक्ति है।

मनुष्योंके बारेमें यह सच नहीं है, अैसा जरूर माना गया है; परन्तु अन्य प्राणियोंके विषयमें भी यह सोलह आने सच नहीं है।

फौलादको लोहचुम्बकके साथ घिसा जाय तो वह स्वयं लोहचुम्बक बन जाता है। कच्चे लोहेको घिसा जाय तो जितने समय तक वह लोहचुम्बकके साथ जुड़ा हुआ रहता है अुतने समय तक अुसमें लोहचुम्बकके धर्म पाये जाते हैं, परन्तु अुससे अलग करने पर वह फिर अपनी मूल स्थिति ग्रहण कर लेता है। लोहचुम्बककी शक्तिको वह अपने भीतर टिकाये नहीं रख सकता। लोहेमें लोहचुम्बककी शक्ति प्रकट करनेकी शक्ति होती है; परन्तु कच्चे लोहेमें और साधारण फौलादमें वह शक्ति साम्यावस्था (equilibrium) में रहती है। अुत्तरमुखी और दक्षिणमुखी शक्तियां अिस तरह स्थित हैं कि वे अेक-दूसरेके कार्यको पूरी तरह मिटा देती हैं। दूसरे लोह-चुम्बकके समीप आनेसे यह साम्यावस्था भंग हो जाती है और अुत्तर-मुखी शक्ति अेक तरफ और दक्षिणमुखी शक्ति दूसरी तरफ व्यवस्थित हो जाती है। कच्चा लोहा तत्काल तो अिस नअी व्यवस्थाके वशमें हो जाता है, परन्तु अुसे पचा नहीं सकता। लोहचुम्बकको दूर हटानेसे वह पुनः साम्यावस्थामें चला जाता है। फौलाद अिस नअी व्यवस्थाको सदाके लिअे पचा लेनेकी क्षमता रखता है; परन्तु अेक बार पास आने पर वह तुरन्त ही लोहचुम्बक नहीं बन जाता। समान रूपमें बार बार यह क्रिया अुस पर करनेसे धीरे-धीरे अुसके कण नअी व्यवस्था स्वीकार करते जाते हैं और अंतमें वह स्वयं लोहचुम्बक बन जाता है। अैसा कहा जा सकता है कि लोहचुम्बककी शक्ति प्रकट करनेमें कच्चे लोहेके कणोंकी अपेक्षा फौलादके कण अधिक विकसित होते हैं; और फौलादकी अपेक्षा लोहचुम्बक बने हुअे फौलादमें ये कण विशेष व्यवस्थित रूपमें होते हैं। अिसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि फौलादमें अपनी स्थिति बनाये रखनेकी शक्ति कम है। वह न केवल बाह्य आघातके वश हो जाता है, बल्कि अुससे अुसके स्वरूपमें स्थायी परिवर्तन हो जाता है। अिसके विपरीत साधारण लोहा बाह्य आघातके तुरन्त वश होता दिखाअी देते हुअे

भी अुस आघातके दूर होने पर तुरन्त अपनी मूल स्थितिको अुसी प्रकार स्वीकार कर लेता है, जिस प्रकार बाढ़में अथवा जोरकी आंधीमें बड़े बड़े वृक्ष बह जाते या टूट कर गिर जाते हैं, परन्तु बारीक और कोमल घास तुरन्त नम गयी मालूम होते हुअे भी अपनी मूल स्थिति कायम रखती है। अिस तरह फौलादकी अपेक्षा लोहा अधिक शुद्ध है, अैसा कहा जा सकता है।

लोहेमें किसी प्रकारका बल नहीं मालूम होता; लोहचुम्बक बने हुअे फौलादमें बल प्रकट रूपमें अुत्पन्न होता है, क्योंकि चुम्बक फौलादकी अेक विशेष अवस्था (व्यवस्था) है। परन्तु लोहेमें चुम्बकके बलके सामने अपने रूपको कायम रखनेकी शक्ति है, जब कि फौलाद आघातके वश हो जाता है।

अिसी प्रकार विकास-विचारके भी दो पहलू हैं: (१) आघातोंके सामने टिके रहनेकी शक्ति; और (२) बलको प्रकट करनेकी शक्ति। बलको प्रकट करनेमें व्यवस्थितताका विकास होता है।

व्यवस्थितताका विकास स्वरूप-स्थितिको टिकाये रखनेकी शक्तिका विरोधी है, अैसा पहली दृष्टिमें मालूम होगा। परन्तु स्वरूप-स्थितिको टिकाये रखनेकी शक्तिका नाश नहीं होता। नया स्वरूप ग्रहण करनेके बाद अुस नअी स्थितिको टिकाये रखनेकी शक्तिका नाश नहीं होता, परन्तु वह शक्ति बादमें अुस नअी स्थितिको टिकाये रखनेका काम करने लगती है।

दूसरे शब्दोंमें कहें तो, शक्ति पहले प्रतिकूल परिस्थिति पर विजय पानेका प्रयत्न करती है। यदि अिसमें वह असफल रहती है, तो नअी परिस्थितिके अनुकूल हो जाती है। परन्तु जब फिरसे दूसरे प्रकारकी प्रतिकूल परिस्थिति अुत्पन्न होती है, तब वह शक्ति अुसका विरोध करनेके लिअे कटिबद्ध हो जाती है। अिस प्रकार यह क्रम चलता रहता है।

आघातोंके विरुद्ध अपना स्वरूप कायम रखनेकी योग्यता जितनी अधिक होगी अुतना प्राण-विकास अधिक शुद्ध माना जायगा और

जितनी बलको अधिक प्रकट करनेकी योग्यता होगी अुतना प्राण-विकास अधिक बलवान माना जायगा। अिन दोनोंका प्रमाण जितना यथायोग्य होगा, अुतना ही विकास अधिक पूर्ण माना जायगा।

मिट्टीके ढेले पर घूंसा मारें तो वह बदलेमें अितने जोरका आघात करता है कि हमारे हाथको चोट पहुंचती है; परन्तु साथ ही ढेलेका अैसा चूरा हो जाता है कि अुसका मूल स्वरूप नष्ट हो जाता है। पानी पर घूंसा मारें तो जवाबमें अुसका आघात अुतना प्रबल नहीं होता, परन्तु वह केवल थोड़ा अुछलकर फिर जैसेका तैसा हो जाता है। वायुका प्रत्याघात अिससे भी कम बलवान होता है; परन्तु वह न तो अितनी अुछलती है और न अुसके स्वरूपमें किसी तरहका परिवर्तन होता है। आकाश प्रत्याघात करता है, अैसा कहा भी नहीं जा सकता; अुसी तरह वह स्वयं हिलता भी नहीं। पृथ्वीका बल देखनेमें बहुत जबरदस्त मालूम होता है, परन्तु अुसकी जीवन-शक्ति कम है। पानी अुसे काटकर अन्दर चला जाता है; वह क्षारोंके अेक-अेक कणको अलग कर देता है और अुन्हें घुलाकर अदृश्य बना देता है। वायु तो पानीमें भी प्रवेश कर जाती है; और आकाश सबको व्याप्त कर लेता है। बल जितना अधिक सूक्ष्म होगा अुतनी अुसकी शुद्धि अधिक होगी, परन्तु बाहरी दिखाव कम होगा। बल जितना अधिक स्थूल होगा अुतना अुसका बाहरी दिखाव अधिक होगा, परन्तु शुद्धि कम होगी। पदार्थकी रचना जैसे जैसे व्यवस्थित और सूक्ष्म बनती जायगी, वैसे वैसे अुसका प्राण अधिक शुद्ध और बलवान बनेगा। बल जितना अधिक सूक्ष्म होगा, अुतना दिखावमें कम और अधिक अदृश्य रूपमें काम करनेवाला होगा।

जिस प्रकार जड़ सृष्टिमें यह नियम काम करता दिखाओी देता है, अुसी प्रकार चेतन सृष्टिमें भी काम करता है। हाथीका स्थूल बल दिखनेमें मनुष्यसे बहुत ज्यादा होता है, फिर भी मनुष्य हाथीका स्वामी है; हाथीका शरीर सिंहसे बहुत बड़ा होता है, परन्तु सिंहका बल अधिक सूक्ष्म होनेसे वह हाथियोंके समूहकी भी परवाह नहीं करता।

मनुष्य मनुष्यके बीच पाये जानेवाले भेदमें भी यही नियम है। अेक तिनके जैसा दुबला-पतला मनुष्य अनेक मनुष्योंको घबरा सकता है, अनेकोंको अपने वशमें रख सकता है। जड़ मनुष्य जिस रिवाजको पकड़ रखता है, अुसे न छोड़नेके लिअे काफी बल काममें लेता है; परन्तु जब हार जाता है तो अिस तरह नये रिवाजके वश हो जाता है कि अुसे भी अुतने ही आग्रहसे पकड़ रखता है।

यह प्राण-विकासका विशेष विवेचन हुआ। परन्तु यह प्रश्न तो खड़ा ही है कि अैसे विकासका साधन क्या है।

यंत्रोंके विकासमें हम देखते हैं कि ज्यों-ज्यों अुनमें सुधार होता जाता है, त्यों-त्यों अुनके भीतर अुन्हें व्यवस्थित रखनेकी क्रियाअें, जिनके लिअे पहले मनुष्यको सावधानी रखनी पड़ती थी, अपने-आप होने लगती है। यंत्र केवल हमारा काम ही नहीं करते, परन्तु अुसका नियमन भी अपने-आप करते हैं। आजके अेंजिनमें भाप प्रवेश करनेका द्वार जब खुलना चाहिये तब वह अपने-आप खुल जाता है, और जब अुसे बन्द होना चाहिये तब वह अपने-आप बन्द हो जाता है। तेलके छिद्रमें तेल अपने-आप नियमित रूपमें टपकता रहता है। कोअी चीज कम-ज्यादा हो तो अुसका संकेत वह कर देता है। यंत्र जितने अधिक आत्म-नियामक (automatic) होते हैं, अुतने ही वे यंत्रकलाकी दृष्टिसे अधिक विकसित माने जाते हैं।

जीवनके अधिकाधिक विकासमें भी अैसा ही होता है। कुछ प्राणियोंके चित्तमें अिच्छा अुत्पन्न होते ही वे तुरन्त अुसके वश होकर क्रिया करते हैं। धीरे-धीरे वह चित्त विशेष व्यवस्थित बनता है; वह क्रियाको रोक सकता है; अिच्छाका परीक्षण कर सकता है; स्वयं अपना नियमन कर सकता है; अपनेको पहचान भी सकता है। अैसा कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों चित्तमें आत्म-नियमनकी शक्ति बढ़ती है, त्यों-त्यों अुसका विकास अधिक होता है।

हम देख सकते हैं कि आत्म-नियमनकी यह शक्ति निरोध या संयमसे अुत्पन्न होती है। अिच्छाके अुद्‌भवके साथ ही क्रियाकी प्रेरणा होती है; अिस क्रियाकी प्रेरणाका किसी भी कारणसे संयम या

निरोध हुआ कि तुरन्त वह शक्ति कोअी दूसरा मार्ग ग्रहण करती है। यह संयम या निरोध अिच्छाके विरुद्ध किसी प्रबल कारणसे हो तो वह मृत्युकी ओर भी ले जा सकता है। परन्तु अुसमें अिच्छा मिल जाय तो वह विकासके मार्ग पर ले जाता है।

अिस प्रकार यह देखा जा सकेगा कि विकासका अेक कारण संयम है। अुदाहरणोंके साथ हम अिस पर विशेष विचार करें।

बिल्ली और बाघ अथवा वानर और मनुष्यमें अेक भेद यह दिखाअी देगा कि बिल्ली और वानरमें बाघ और मनुष्यकी अपेक्षा काम-विकार अधिक जल्दी अुत्पन्न होता है। बिल्ली और बाघके बारेमें हमारा अवलोकन नहीं है, परन्तु वानरके बारेमें हम जानते हैं। किसी भी क्रियाकी प्रेरणा होने पर क्रियाको रोकनेकी शक्ति वानरकी अपेक्षा मनुष्यमें बहुत अधिक होती है। वानरके स्नायुओंमें बहुत बल होता है, चपलता होती है; किन्तु अुसमें आत्म-नियमनका विकास नहीं हुआ है।

अेक ही जातिके परन्तु कदमें और आयु-मर्यादामें भेद रखनेवाले प्राणियोंको देखनेसे पता चलेगा कि बड़े और दीर्घायुषी प्राणीमें विकारोंको वशमें करनेकी शक्ति अधिक होती है; अुनकी पौगण्डावस्था (puberty) देरसे आरंभ होती है और लम्बे समय तक टिकी रहती है। अिस पौगण्डावस्थाके समयमें प्राणियोंके कद, बल और आयुकी वृद्धि बड़ी तेजीसे होती देखनेमें आती है। अिस समयमें जो प्राणी अपनी प्रेरणाओंको अधिकसे अधिक टिकाये रख सकता है, अुसका अनेक प्रकारका विकास अधिक तेजीसे होता है।

साधारणतया सब प्रकारका आत्म-नियमन, पौगण्डावस्थाके कालमें वीर्यकी स्थिरता और अूर्ध्वगमन — ये विकासके मुख्य आन्तरिक कारण कहे जा सकते हैं।

आत्म-नियमन और पौगण्डावस्थाका ब्रह्मचर्य कद-विकास, आयु-विकास और स्थूल अिन्द्रिय-विकास तथा प्राण-विकासके प्रत्यक्ष आन्तरिक कारण हैं; जब कि अिन्द्रिय-शक्तिके विकास, सूक्ष्म प्राण-विकास, चित्त-विकास और परिवर्तन-विकासके वे परोक्ष आन्तरिक कारण हैं।

पौगण्डावस्थाके बादका ब्रह्मचर्य पहले प्रकारकी शक्तियोंको टिकाये रखनेमें सहायक होता है, और दूसरे प्रकारके विकासको बढ़ानेका आवश्यक कारण बनता है।

जिनका ब्रह्मचर्य भलीभांति स्थिर रहता है, अुनकी दीर्घायु, जीवनके अन्त तक अिन्द्रियोंकी कार्य करनेकी शक्ति आदि टिकी रहती है, अिसका प्रमाण मिलना कठिन नहीं है।

मनुष्यके विकासमें अेक अन्य बड़ा और आन्तरिक कारण विचार है। यहां विचारका अर्थ किसी भी वस्तु या क्रियाके विषयमें 'कैसे ?' और 'क्यों ?' का प्रश्न किया जा सकता है। जीवनमें कअी बातोंको हम गृहीत मानकर चलते हैं; अनेक क्रियाअें केवल रिवाज या आदतके वश होकर करते हैं। जब अिन मान्यताओं और क्रियाओंके औचित्यके विषयमें शंका अुत्पन्न होती है, तब विचारकी जागृति पैदा होती है। क्रोधका त्याग करना चाहिये; जीवहिंसा अधर्म है; व्यभिचार पाप है; सूर्य और चन्द्रका ग्रहण राहुके वैरसे होता है; जपयोग श्रेष्ठ है; अस्पृश्यता कलंक है — आदि आदि बातोंमें 'क्यों' और 'कैसे' के प्रश्न अुठें और अुनके विषयमें स्वतंत्र रूपसे सोचनेकी प्रवृत्ति हो तो अुसे विचार कहा जायगा। अिस प्रकार विचारके अुठनेमें मनुष्यका अपना अवलोकन कारणभूत होगा या दूसरोंकी प्रेरणा; अुस विचारके फलस्वरूप मनुष्यकी मूल मान्यता स्थिर बनेगी अथवा अुसमें परिवर्तन होगा; तथा अुस विचारमें तर्कदोष होगा, अवलोकन-दोष होगा या वह शुद्ध होगा — यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी अुसकी प्रकृतिको दृढ़ बनाने या बदलनेमें अिस विचारका बड़ा हाथ होगा। कोअी विचार मनुष्यके जीवन-संबंधी दृष्टिकोणको पूरी तरह बदल डालनेवाला होता है। अुसके कारण मनुष्यका संपूर्ण जीवन जड़मूलसे बदल जाता है। प्रत्येक वस्तु अब अुसे दूसरे ही रूपमें दिखने लगती है। जगत्को वह दूसरी ही दृष्टिसे देखने लगता है। अिस दृष्टि-परिवर्तनसे अुसके शरीर, मन, बुद्धि — सबमें परिवर्तन हो जाता है; अुसकी प्रवृत्तियोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। रत्नाकर जैसा लुटेरा वाल्मीकि बन जाता है। जिसे लोग पवित्र आचरणवाला मानते हैं, वह दुराचारी बन जाता

है। कर्ममें अुत्साह न रखनेवाला मनुष्य कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है। और बड़े बड़े काम हाथमें लेनेवाला मनुष्य कर्म-संन्यासी हो जाता है। यह सब विचारका ही परिणाम है। *

ठंडे पानीको चूल्हे पर गरम करनेके लिअे रखते हैं तब कुछ समय तक अुसकी अुष्णता बढ़ती रहती है। ७० अंश गरमी हो तो वह बढ़ते बढ़ते २१२ अंश तक पहुंचती है। अिसके बाद पानी अुबलने लगता है। हम अुसे चूल्हे पर रहने दें तो भी बादमें अुसकी अुष्णता २१२से बढ़कर २१५ नहीं होती; वह अुबला करता है और भाप बनकर अुड़ता रहता है। पानीके गरम होनेकी जब चरम सीमा हो जाती है, तो अुसके बादकी गरमी अुसे भापका रूप देनेमें काम आती है। भापका रूप पानीसे अधिक सूक्ष्म होता है। अेक खास मर्यादाके बाद गरमी अुसके स्वरूपको अधिक सूक्ष्म बनाती है।

अिसी प्रकार ब्रह्मचर्य कुछ समय तक हमारे शरीर और अिन्द्रियोंकी शक्तियोंको स्थूल रूपमें बढ़ाता है। पौगण्डावस्थामें वीर्यकी स्थिरता हमारी हड्डियों, रक्त आदिको बढ़ाकर हमारे सारे अवयवोंको बढ़ाती है। पूर्वपरम्परा आदिके कारण हमारी कद बढ़ानेवाली शक्तिकी सीमा आ जाती है। अुसके पश्चात् ब्रह्मचर्यका कोअी विशेष अुपयोग हो सकता है, यह खयालमें नहीं आता। क्योंकि अुसका माप रुक जाता है। परन्तु अुसके बाद यदि वीर्य स्थिर रहे तो वह हमारा सूक्ष्म विकास करनेमें अुपयोगी होता है। हाथ ३० अिंच लंबा और १२ अिंच परिधिवाला ही रहे तो भी अुसमें बल बढ़ानेकी शक्ति आती है; आंखें बड़ी नहीं होतीं, किन्तु अुनकी शक्ति सूक्ष्म होती है। मन, बुद्धि, स्मृति सबकी शक्ति बढ़ती है। अिसका अर्थ यह हुआ कि अेक खास मर्यादाके पश्चात् ब्रह्मचर्य हमारी शक्तियोंको सूक्ष्म और तेजस्वी बनाता है। अिस दृष्टिसे ब्रह्मचर्य प्राण-विकासका अेक प्रत्यक्ष या सीधा कारण है।

---

* दूसरे प्राणियोंमें विचारका बिलकुल अभाव है, अैसा मानना ठीक नहीं। अनुभवसे वे भी समझदार बनते हैं; अर्थात् अुनमें भी थोड़ा विचार पैदा होता ही है। परन्तु यहां हमें केवल मनुष्यका ही विचार करना है।

परन्तु गुण-विकासके लिअे ब्रह्मचर्यका होना ही काफी नहीं है। क्रोधी मनुष्य ब्रह्मचारी हो तो संभवतः वह अधिक क्रोधी बनेगा; लोभी मनुष्य ब्रह्मचारी हो तो अुसका लोभ बढ़ सकता है; कायर ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यके होते हुअे भी कायर ही रहता है, अैसा भी देखनेमें आता है। अिसका कारण यह है कि गुणके विषयमें मनुष्यकी जो मूल शक्ति होती है अुसे ब्रह्मचर्य पराकाष्ठाको पहुंचा देता है, परन्तु गुणमें परिवर्तन करनेके लिअे केवल ब्रह्मचर्य पर्याप्त नहीं होता। अुसके लिअे तो विचार और दूसरे संयम ही मुख्य होते हैं।

विचार ब्रह्मचर्यकी तुलनामें अधिक सूक्ष्म शक्ति है। भावनाओंको प्रेरित और विकसित करनेवाले मूल स्थानके साथ विचारका संबंध है। विचार-भेद होनेसे भावनामें भेद होता है, और अुससे गुणमें भेद होता है।

अिस प्रकार बाह्य परिस्थितियोंसे पैदा होनेवाले कारणोंके अलावा विचार, ब्रह्मचर्य और संयम जैसे आन्तरिक कारणोंका विकासमें कम हाथ नहीं होता। और विशेषतः मनुष्यके गुण-विकास तथा बुद्धि-विकासके भेदोंमें ये तीन कारण बहुत बलवान होते हैं। *

---

* गुण (अथवा दृढ़ बनी हुअी भावना) की अुत्पत्ति विचारसे होती है। बाह्य स्पर्श ज्ञानतंतुओं पर असर करते हैं; ज्ञानतंतु स्मृतिको जाग्रत करते हैं और किसी सहचारी विचारका स्मरण कराते हैं; अुस विचारसे ज्ञानतंतुओं पर प्रतिक्रिया होती है; अुस प्रतिक्रियाका असर स्नायुओं पर होता है; और यह असर भावनाके रूपमें पहचाना जाता है। अुदाहरणके लिअे, कोअी दुःखी मनुष्य हमारी नजरमें आता है। वह दर्शन दुःखका स्मरण कराता है। दुःखकी स्मृति अैसा सहचारी भाव पैदा करती है कि यह अनिष्ट और दुर्भाग्यकी बात है तथा यह दुःखी मनुष्य हमारे जैसा ही मनुष्य है; अुसकी प्रतिक्रिया ज्ञानतंतुओं पर होती है; और अुसके फलस्वरूप स्नायुओं पर जो असर होता है, अुसे हम दयाकी भावनाके नामसे पहचानते हैं। अिस भावनाका स्वभाव पड़ जाने पर वह गुण बन जाती है।

१६

जीवनमें आनंदका स्थान

मेरे निबंधोंकी पांडुलिपि पढ़कर अेक मित्रने मुझसे यह प्रश्न पूछा कि आपके विचारसे जीवनमें आनन्दका कोअी स्थान है या नहीं ? अुन्नतिकी दृष्टिसे या सत्यकी शोधकी दृष्टिसे आपने काल्पनिक कहानियों, साहित्य, संगीत, कला आदि पर टीका की है, परन्तु क्या आनन्दमें कोअी अुन्नतिकारक बल नहीं है ? और अिसलिअे बालकको आनन्दका अनुभव करानेके लिअे ही शिक्षकको कोअी प्रयत्न करना चाहिये या नहीं ?

अिस विषयका विचार करनेके लिअे आनन्दकी भावनाका थोड़ा विश्लेषण करना होगा, अैसा समझकर अिस विषय पर मैं अेक स्वतंत्र लेख लिखनेको प्रेरित हुआ हूं।

सामान्य भाषामें हम अेक ही प्रकारकी भावनाको आनन्दके नामसे नहीं पहचानते। बालक माताको देखकर आनन्दित होता है, अुसी तरह मिश्रीका डला मिलनेसे भी अुसे आनन्द होता है; मनुष्यको अित्र लगानेसे आनन्द होता है, खुली हवामें घुमनेसे अथवा थक जानेके बाद स्नान करनेसे आनन्द होता है, ताजमहल देखनेसे आनन्द होता है, अुसी तरह अुसे व्रत करनेसे, पूज्य पुरुषके दर्शनसे, देव-दर्शनसे या तीर्थमें स्नान करनेसे आनन्द होता है। 'भद्रंभद्र'* जैसी पुस्तक पढ़नेसे भी आनन्द होता है और किसी भूखेको अन्न देनेसे भी आनन्द होता है। कुछ लोगोंको जीभर कर क्रूरता बतानेमें भी आनन्द आता है, और

* यह गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक श्री रमणभाअी नीलकंठकी लोकप्रिय रचना है। अिसके मुख्य पात्रका नाम भी भद्रंभद्र है। अिसमें लेखकने अंग्रेजी सभ्यताको हिन्दू समाजमें दाखिल करनेका विरोध करनेवाले कट्टर सनातनी लोगोंका मजाक अुड़ाया है।

व्यसनीको व्यसनके सेवनसे भी आनन्द होता है। स्त्रियोंको विवाहादि प्रसंगोंसे तथा सुन्दर वस्त्र या आभूषण पहननेसे आनन्द होता है और बालक या पतिका मुंह देखनेसे भी आनन्द होता है। अैसे विभिन्न अनुभवोंके कारण जो भावनाअें पैदा होती हैं, अुन सबको हम आनन्द नाम देते हैं।

सच पूछा जाय तो ये सारी भावनायें समान नहीं हैं; और अिनमें से कुछ अच्छी हैं, कुछ बहुत मामूली हैं और कुछ तो निश्चित रूपसे बुरी हैं। फिर भी अिन सारी भावनाओंमें अेक अंश समान है और वह है अनुभव करनेवालेको थोड़े समय या अधिक समयके लिअे खुश करना।

अिसलिअे प्रश्न यह अुठता है कि आनन्दके कौनसे प्रकारको जीवनमें स्थान देना अुचित कहा जायगा?

पानीके स्थिर होने पर यदि हम यह कहें कि वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें है, तो जब वह तरंगाकार हो तब यह कहा जा सकता है कि वह अस्वाभाविक स्थितिमें है। तरंगसे पानीमें दो प्रकारके विकार अुत्पन्न होते हैं: अेक अुसे अपनी स्वाभाविक सतहसे अूंचा अुठानेवाला और दूसरा अुससे नीचे ले जानेवाला। अिन दोनों प्रकारके विकारोंका बिना रुके सतत जारी रहनेका नाम तरंग है। पानी अपनी सतहसे अूंचा तो चढ़े परन्तु नीचे न अुतरे, अिस प्रकार अुसमें तरंग अुत्पन्न होना असंभव है। वह जितना अूंचा चढ़ेगा, अुतना स्वाभाविक स्थितिसे नीचे अवश्य अुतरेगा। परन्तु प्रत्येक तरंग अपनी गतिके दौरानमें अेक क्षणके लिअे पानीको अुसकी स्वाभाविक स्थितिमें लाती है। अूपरसे नीचे गिरते हुअे अथवा नीचेसे अूपर चढ़ते हुअे पानीको क्षणभरके लिअे अपनी स्वाभाविक स्थितिमें से गुजरना ही पड़ता है। पानी सतत तरंगाकार होता ही रहे, तो भी अुसे थोड़े थोड़े समयके अन्तरके बाद अपनी स्वाभाविक स्थितिसे गुजरना पड़ता है।

पानीके साथ चित्त और भावनाओंके सम्बन्धकी तुलना की जा सकती है। भावनायें चित्तरूपी जलमें अुठनेवाली तरंगें हैं। चित्तकी

निश्चल दशाको अुसकी स्वाभाविक सतह कहें तो भावनाओंको अुस सतहकी खलबलाहट कहा जा सकता है। यह खलबलाहट चित्त-जलको सतहसे अूपर भी ले जाती है और नीचे भी अुतारती है, और थोड़े थोड़े समयके अन्तरके बाद अुसके प्रत्येक भागको स्वाभाविक दशामें भी लाती है। चित्तकी स्वाभाविक दशाको किसी भावनाका नाम देना हो तो वह केवल प्रसन्नताकी स्थिति कही जा सकती है; अुसमें न तो हर्षका अुभार है और न शोकका गड्ढा है। अुसमें विराम — विश्रान्ति — है; और थके हुअे मनुष्यको विश्रामसे जितना और जैसा सुख अनुभव होता है, अुतना और वैसा ही सुख अिस शुद्ध प्रसन्नतामें है।

चित्तकी अैसी प्रसन्नताको ही यदि आनन्द कहा जाय तो वैसा आनन्द चित्तकी सहज स्थिति है; अन्य सारी भावनाओंको आनन्दका नाम दिया जाय या दूसरी किसी भावनाका नाम दिया जाय — वे हैं सब विकार ही।

प्रसन्नता चित्तका स्वरूपभूत धर्म है; वह बाह्य परिस्थितियोंसे निर्माण नहीं होता है, चित्तके भीतर ही रहता है। प्रसन्नताके आधार पर ही चित्तमें अन्य सारी भावनाओंका अुदय-अस्त होता है। थोड़े थोड़े समयके अन्तरके बाद वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें से गुजरता है।

फिर भी प्रयत्नके बिना यह हमारे ध्यानमें नहीं आता। जिस प्रकार तरंग-रहित समुद्र हम नहीं देखते, अुसी प्रकार निश्चल चित्त भी हम साधारणतः नहीं देखते। समुद्रमें तरंगोंके निरन्तर अुठते रहने पर भी जिस प्रकार अुसके पानीकी प्रत्येक बूंद थोड़े थोड़े समयके अन्तरके बाद अपनी स्वाभाविक सतह पर आ जाती है, अुसी प्रकार चित्त भी थोड़े थोड़े समयके अन्तरके बाद अपनी सहज प्रसन्नताकी भूमिका पर आ जाता है। यह ध्यानमें न आनेका कारण यह है कि हमारा अवलोकन गहरा नहीं होता, तथा चित्तकी तरंगोंकी गति अितनी अधिक अटपटी और विविध है कि अुसका पृथक्करण नहीं हो सकता। फिर, बहुत बार चित्तकी स्वाभाविक दशाका ताल बहुत लम्बे समयके बाद और क्षणभरके लिअे ही आता है। चित्तके अटपटेपनमें ही अितनी मोहकता है कि साधारणतः अुसकी सहजता देखनेकी अिच्छा भी नहीं होती, जिस तरह

कि सामान्य मनुष्यको समुद्रकी अुत्ताल तरंगें देखनेका आनन्द लेनेमें अिस बातका निरीक्षण करनेकी अिच्छा ही नहीं होती कि समुद्रका पानी अपनी स्वाभाविक दशामें कब आता है। फिर, जिस प्रकार समुद्र पर अनेक स्थानोंसे अलग अलग ढंगसे वायुका दबाव पड़नेके कारण सारा समुद्र अेक ही समयमें स्वाभाविक सतह पर नहीं आता, परन्तु अलग अलग बूंदें अलग अलग क्षणोंमें अुस स्वाभाविक दशासे गुजरती हैं, अुसी प्रकार चित्त पर भी अनेक अिन्द्रियों द्वारा अनेक प्रकारके बल अेकसाथ असर डालते हैं। अिसके कारण चित्तके सब भाग अेक ही समय सहज स्थितिमें कठिन प्रयत्नके बिना नहीं आ पाते; और अैसा प्रयत्न करनेवाले मनुष्य विरले ही होते हैं।

फिर भी चित्तका प्रत्येक भाग थोड़े थोड़े समयके अन्तरके बाद अपनी सहज दशामें आता है, अिसीलिअे हमें अुस दशाकी कल्पना कर सकने लायक थोड़ा-बहुत अनुभव रहता है और अुस दशाको प्राप्त करनेके लिअे जाने-अनजाने हमारे प्रयत्न चलते रहते हैं।

हम समुद्रकी तरंगें देखने बैठते हैं तब हमारा ध्यान अिस बातकी ओर ही होता है कि वे सतहसे कितनी अूंची अुठती हैं; जिस समय अेक भाग अूंचा चढ़ा हुआ होता है, अुसी समय अुसका कुछ भाग और थोड़े समयके बाद अुसका अूंचा चढ़ा हुआ भाग भी सतहसे अुतना ही नीचे अुतर जाता है। परन्तु अुस अुतारकी ओर ध्यान देनेकी हमारी अिच्छा ही नहीं होती। तरंगोंका चढ़ाव ही हमारी आंखोंमें भर जाता है, अुतारकी ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता। अिसी प्रकार चित्तमें अेक प्रकारकी भावनाका चढ़ाव आनेके कुछ समय पश्चात् विरुद्ध और अुससे अुलटी भावनाका अुतार आये बिना नहीं रहता। परन्तु जब तक चढ़ती हुअी भावनाके प्रति हमारा पक्षपात होता है, तब तक हमें अुतरती हुअी या स्वाभाविकताकी भावना पर ध्यान देनेकी अिच्छा नहीं होती। हमारा ध्यान जबरन् अुसकी ओर खिंचता है, तब अुभरती हुअी भावनाके प्रति हम चित्तको हर तरहसे खींचनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु यह नहीं समझ पाते कि वह प्रयत्न ही बादमें अुतरती हुअी भावनाकी तरफ जानेमें कारणभूत होता है।

अतः जो भावनायें हमें प्रिय लगती हैं अुन्हें आनन्दकी भावनायें कहें, तो वैसी प्रत्येक भावना अपने साथ जुड़ी हुआी अेक शोककी भावनाका बीज होती है।

अिस तरह कमसे कम अेक प्रकारका आनन्द और अुसका जोड़ीदार अेक प्रकारका शोक — अिन दोके बीच हरअेक प्राणीका चित्त अेकसा झूलता रहता है। प्रसन्नता अिनमें से अेकमें भी नहीं होती, परंतु दोके बीचमें होती है। अिसका ताल जितने समय बाद आता है अुसी पर प्राणीकी वास्तविक शान्तिका आधार रहता है। चित्तकी प्रसन्नताका ताल बार-बार आवे अैसा प्रयत्न करना वांछनीय है।

तात्पर्य यह कि चित्तकी प्रसन्नता बाहरसे निर्माण होनेवाली कोअी वस्तु नहीं, वह चित्तका आन्तरिक धर्म ही है। परंतु हमारे चित्तके तार सदा हिलते ही रहते हैं; जिस प्रयत्नसे यह गति अैसी नियमित हो कि चित्त बार-बार अपनी स्वाभाविक स्थितिमें आता रहे, वह प्रयत्न प्रसन्नता लानेके लिअे अनुकूल कहा जायगा।

परंतु प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिअे किया जानेवाला प्रत्येक प्रयत्न यह अुद्देश्य पूरा करनेमें समान रूपसे सफल नहीं होता। अिसका अेक कारण तो हमारे प्रयत्नकी गलत दिशा ही होती है। प्रसन्नताको भीतरसे देखने और विचारकी सहायतासे विकसित करनेके बजाय हम बाहरसे देखने और बाहरी वस्तुओंमें से प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। हम भूल जाते हैं कि बाहरी वस्तुओंमें हमें बहुत बार जो आनन्द मालूम होता है, अुसका कारण हमारे चित्तकी आन्तरिक प्रसन्नता होती है। वह आनन्द वस्तुकी किसी मोहकताके कारण नहीं मालूम होता।

मेरे देखनेमें अैसा आया है कि कुछ बाहरसे विनोदी और खुश-मिजाज माने जानेवाले लोगोंके हृदयकी जांच करें तो वह किसी भारी शोकके भारसे दबा हुआ मालूम होता है। वे दूसरोंको खूब हंसा सकते हैं, स्वयं भी अुतने समय तक आनन्द-मग्न मालूम होते हैं, परंतु अुनके हृदयके भीतर तो मानो होली जलती रहती है। अिसके विपरीत, कुछ मानो 'काजीजी दुबले क्यों, शहरके अंदेशेसे' कहावतके

अनुसार चिन्ताका भार अपने सिर लेकर घूमनेवाले, गपशप मारनेके लिअे अेकत्र हुअे मंडलोंमें शायद ही बैठनेवाले और जीवनके गंभीर पहलूका ही विचार करनेवाले लोगोंमें अैसी प्रसन्नता देखनेमें आती है, जिसकी अुन विनोदी और खुश-मिजाज लोगोंमें गंध भी नहीं होती।

मैंने सुना है कि पहले प्रकारके लोगोंमें अेक फ्रेंच विदूषकका अुदाहरण प्रसिद्ध है। अतिशय विनोदी होनेके कारण वह विनोदके खेल करके लोगोंको खुश करता और अुससे खूब पैसा कमाता था। मनोरंजनके लिअे लोग भारी फीस देकर अुसके प्रयोग देखने जाते थे। वही विदूषक अेक बार अेक डॉक्टरके पास गया, जो अुसे जानता नहीं था, और कहने लगा कि मुझे जीवनमें कोअी रस नहीं मालूम होता, अिसलिअे आप जांच कर देखिये कि मुझे क्या हो गया है। डॉक्टरने अुसे जांचकर कहा कि आपको कोअी रोग नहीं है, परंतु आपके चित्त पर शोकका भार है। अुसे दूर करनेके लिअे आपको थोड़ा मनोरंजन करना चाहिये। अैसा कहकर डॉक्टरने अुसे अुसीका नाम देकर कहा कि आप फलां विदूषकके खेल देखने थोड़े दिन जायं तो आपका मन प्रसन्न हो जायगा। जब अुसने डॉक्टरसे कहा कि वह प्रसिद्ध विदूषक तो मैं ही हूं, तब डॉक्टरके आश्चर्यका पार नहीं रहा। प्रत्येक मनुष्य अपने आसपास अैसे अनेक अुदाहरण ढूंढ़ सकता है।

अिससे अुलटा अुदाहरण गांधीजीका है। अुनकी गिनती गंभीर मनुष्योंमें की जायगी। अुनके लेखोंमें कभी कभी विनोदकी झांकी देखनेको मिल जाती है, परंतु साधारणतः अुनके लेख गंभीर कहे जायेंगे। और कुछ लोगोंको तो अुनमें अतिशय गंभीरता भी मालूम हो सकती है। कहावतके काजीको केवल सारे शहरकी ही चिन्ता थी, किन्तु गांधीजी तो दिनरात सारे देशकी चिन्ता करते रहते हैं; फिर भी अुनके सहवासमें आनेवाले लोगोंने शायद ही कभी अुन्हें प्रसन्नतासे रहित और दूसरोंको प्रसन्न किये बिना बिदा करते देखा होगा। गांधीजीके पास बैठनेवालोंको बार-बार अुनके या दूसरे लोगोंके अट्टहासकी आवाज सुनाअी दिये बिना नहीं रहेगी। साधारणतया हम मानते हैं कि कटाक्ष (satire), शब्दचातुरी (wit) और हास्य (humour) — ये तीन

हास्यरसके साधन हैं। अिन तीनमें से अेक भी प्रकारकी भाषा-चातुरीमें गांधीजीके पारंगत होनेकी ख्याति नहीं है। फिर भी विनोदी लेखकोंकी अपेक्षा अुनके मण्डलमें अधिक हास्य खिलता रहता है। यह प्रसन्नता शोकके बीच भी अुनके चित्तमें अनुभव होनेवाली प्रसन्नतासे ही अुत्पन्न होती है। शब्दों आदि बाह्य वस्तुओंका हाथ अुसमें बहुत कम होता है।

अिसलिअे प्रत्येक मनुष्य सदा दो जुड़ी हुअी भावनाओंका अनुभव करता है; परंतु अुनमें से अेक भावनाका संसारको परिचय होता है और दूसरी भावनाको अुसके समीपके लोग ही जान सकते हैं। यही कारण है कि जगत् अुसे जिस गुणके लिअे प्रसिद्धि देता है, अुससे विरोधी गुण अुसके पासके लोग अुसमें देखते हैं।

अिसीलिअे बहुत बार हम देखते हैं कि सब लोग जिसे समझदार, भला, हंसमुख, परिश्रमी आदि गुणोंवाला बताते हैं, अुसे समीपके लोक मूर्ख, निष्ठुर, चिड़चिड़ा, घरकी परवाह न करनेवाला कहते हैं। समाजको जो मनुष्य कठोर मालूम होता है, वही समीपके लोगोंको प्रेमल और ममतालु मालूम होता है। मनुष्य बाह्य समाजमें यदि अपने स्वभावका अेक ही पहलू बताया करे तो अुस स्वभावका अुलटा पहलू अुसके व्यक्तिगत जीवनमें प्रकट हो जाता है। अत्यन्त शुद्ध चित्तका मनुष्य ही भावनाकी दोनों सीमायें सबके सामने समान रूपमें प्रकट करता है।

भीतर प्रसन्नताका अनुभव हो रहा हो तब बाह्य सृष्टिके प्रति हमारी भावना — हमारा आनन्द या हमारा शोक — और भीतरकी प्रसन्नताका ताल खो बैठे हों तब कृत्रिम अुपायोंसे आनंदित होनेका प्रयत्न — अिन दोनोंके बीचका भेद हम थोड़े विचारसे जान सकते हैं।

भीतरी प्रसन्नताका ताल अनुभव करनेके बाद जब तक अुसके स्मरणका असर रहता है तब तक कृतार्थताकी — धन्यताकी — तृप्तिकी — भावना अुठती रहती है। यदि अैसे मनुष्यकी क्रियाशक्ति बलवान हो, तो वह अपनी प्रसन्नताको बाहर प्रकट करनेका और अुसकी छूत

फैलानेका प्रयत्न करता है। वह बाह्य सृष्टिके रूप, रंग अथवा गुणसे आकर्षित नहीं होता, परंतु रूप, रंग अथवा गुणका विचार अुठे बिना ही सारी बाह्य सृष्टि अुसे सुन्दर मालूम होती है। बाहरकी सचेतन सृष्टिके प्रति अुसका भाव थोड़ी-बहुत शुद्धिवाले प्रेमका होता है।

अिसके कुछ अुदाहरण मैं यहां देता हूं।

बालकको अपनी प्रसन्नताका ताल मिल जाता है, तब अपनी मांको देखकर वह हंस पड़ता है, अुससे मिलनेके लिअे दौड़ता है, मांके प्रति अुसका प्रेम अुमड़ पड़ता है। अिस प्रेमके पीछे अिस बातका विचार ही नहीं होता कि मां सुन्दर है या कुरूप, लाड़ लड़ानेवाली है या लड़नेवाली, गरीब है या अमीर। 'मैं प्रसन्न हूं, और यह मेरी मां है'—ये दो बातें ही अुसे आनन्दसे भर देनेके लिअे काफी होती हैं। अिस प्रसन्नताके अनुभवसे अुत्पन्न हुअी कृतार्थताके कारण अेक अक्षरका 'मां' शब्द ही तथा मांका अुसे प्रोत्साहन देनेवाला हास्य ही 'मेरा जीवन धन्य है' की भावना बालकमें पैदा करनेके लिअे काफी होता है। अिस धन्यताके अवसर पर जगत्‌की अत्यन्त आकर्षक वस्तु भी अुसके रंग, रूप अथवा गुणके कारण बालकको अधिक प्रिय नहीं लग सकती।

परंतु जब अिस प्रसन्नताका ताल खो जाता है, तब बालक केवल मातामें से ही अिस रसके घूंट नहीं पी सकता। वही मां अनेक तरहसे अुसे मनाने—समझाने—का प्रयत्न करती है तो भी बालकको कृतार्थता—धन्यता—का अनुभव नहीं होता। अुस समय हम सब बड़े लोग तुरन्त अुसका ताल अुसे खोजकर दे नहीं सकते, अिसलिअे अिन्द्रियोंको ललचानेवाले कुछ अुपायोंसे अुसे बहलाने या बहकानेका प्रयत्न करते हैं। सुन्दर खिलौना या चित्र बताकर, मिश्रीकी डली देकर, घंटीकी आवाज सुनाकर, अेकाध 'चिड़ा-चिड़ीकी कहानी' कहकर या अैसे ही किसी अन्य अुपायसे हम अुसे खुश करनेका प्रयत्न करते हैं। अिसके परिणामस्वरूप वह अेक प्रकारके तनावके अनुभवमें से दूसरे प्रकारके तनावकी ओर खिंचता है। कभी वह अनुभव पहली ही बार होनेसे, कभी अुस अनुभवकी अचानकतासे, तो कभी

अुसके साथ रागात्मक भावनाका पूर्व-संस्कार होनेसे बालककी पहली भावनाको हम भुला सकते हैं, अुसे खुश कर सकते हैं और अुतनेसे हम संतोष मान लेते हैं तथा धीरे धीरे अैसे ही प्रकारोंसे संतोष माननेकी अुसे आदत डालते हैं। अिसमें आनन्दके नामसे पहचानी जानेवाली किसी भावनाको अुत्तेजन जरूर मिलता है, परंतु प्रसन्नतासे वह सर्वथा भिन्न होती है। अुसमें कृतार्थता —— धन्यता —— तृप्ति—का अनुभव नहीं होता। अेक खिलौना अनेक बार बालकको रिझा नहीं पाता, मिश्रीकी अेक डलीसे हमेशा काम नहीं बनता, अेक कहानी कहनेके बाद अुलटी दूसरी कहानी सुननेकी प्यास बढ़ती है। क्योंकि आन्तरिक प्रसन्नताका ताल मिले बिना ये सब बाह्य अुपाय मृत्युकालके ठंडेपनको औषधि मलकर दूर करनेके प्रयत्न जैसे हैं।

जो बात छोटे बालकके लिअे सच है, वही हम सबके लिअे भी सच है। जब प्रसन्नता भीतरसे अुत्पन्न होती है, तब जिस चेतन-अचेतन पदार्थके साथ हमारा ममत्व बंधा होता है अुसका रूप, रंग अथवा गुण कैसे ही क्यों न हों, वह हमें प्रिय ही मालूम होता है। अुस समय अुसका संबंध हमें सुखकी वेदना करानेवाला है या दुःखकी, अिसकी हम परवाह नहीं करते। अैसी कौनसी भूमि है जो अुसके निवासीको 'स्वर्गादपि गरीयसी' नहीं लगती? राजपूतानेका रेगिस्तान किसी राजपूतको अुतना ही प्रिय होता है, जितना कि गुजरातीको बगीचे जैसा हराभरा गुजरात। हम गाते जरूर हैं कि:

'कहां हिमालय होगा अैसा,
कहां पुण्य पावन गंगा?'

परंतु वह हिमालय भारतसे अुड़कर चीनमें चला जाय, अथवा युरोपका आल्प्स पर्वत अुससे अधिक अूंचा हो जाय और गंगा अफ्रीकामें चली जाय तथा अुसकी जगह कोअी चीनकी नदी आकर बहने लगे, तो भी अुस समयका भारत हमें कम प्रिय नहीं मालूम होगा। अिसका कारण यह है कि हिमालय या गंगाके कारण हमें भारत श्रेष्ठ भूमि नहीं लगता, बल्कि भारतके साथ हमारा ममत्वका संबंध अुसे हमारी दृष्टिमें प्रिय बनाता है; और अिस भारतके साथ हिमालय और गंगाका संबंध

होनेसे वे भी हमें प्रिय लगते हैं। हिमालय अथवा गंगाके प्रति हमारा आदर अुसकी अुच्चतमता अथवा विशालताके कारण नहीं, बल्कि अिस-लिअे है कि वह हमारे देशमें है।

अिस देशके प्रति जब तक मेरे मनमें ममत्वका भाव बना रहता है, तब तक अिसके साथ संबंध रखनेके कारण मुझे सुख हो या दु:ख, मेरी समृद्धि बढ़े या मुझ पर विपत्तिके बादल टूट पड़ें, अुसके खातिर मुझे मरना ही क्यों न पड़े, तो भी अिन सबमें मुझे धन्यताका ही अनुभव होता है। क्योंकि मेरे भीतरकी प्रसन्नताके तालमें से वह प्रेम और ममता अुत्पन्न हुअी है।*

परंतु जब किसी कारणसे मैं अपनी प्रसन्नता खो बैठता हूं, तब अपने आचरणसे ही मुझे संतोष नहीं मिलता। फिर मैं हिमालय, काश्मीर, महाबलेश्वर या मेरा वतन छोड़कर अन्य किसी स्थान पर जाना चाहता हूं। परंतु अुन अुन स्थानोंके साथ मैं ममत्व नहीं बांध सकता, अिसलिअे अुनके रूप-रंगके सौन्दर्यसे आनन्द प्राप्त करनेका प्रयत्न करता हूं। मेरी भीतरी प्रसन्नता चली गअी है, अिसलिअे मैं बाहरकी सुन्दरताको ध्यानपूर्वक देखता हूं। अपनी प्रसन्नताके अभावमें सामान्य वस्तुमें रही सुन्दरताको देखनेकी मेरी बुद्धि जड़ बन जाती है। अिस

---

* अूपर कही बातका अर्थ यह होता है कि आन्तरिक प्रसन्नताका ताल मिल जाय, अुस समय बाह्य सृष्टिके जिस भागके साथ हमारा अहं – ममत्वका संबंध होता है, अुसके प्रति प्रेमका अनुभव होता है। ये दो ही बातें प्रेमके लिअे आवश्यक होती हैं। बाह्य पदार्थके रूप, रंग या गुण अित्यादिकी प्रेमको अपेक्षा नहीं होती। जब अहं – ममताका अत्यन्त नाश हो जाता है, तब प्रियताका भाव भी नहीं रहता। बाह्य सृष्टिका चित्तमें अत्यन्त अभाव कर दिया जाय तभी अैसा कहा जा सकता है। जब अहं – ममता सृष्टिके जितनी व्यापक बन जाती है, तब सारी सृष्टि अुसके रूप-कुरूप, गुण-दुर्गुण, कला-विकला, सुख-दु:खके बाव-जूद प्रेमपात्र ही लगती है। यह अूपर बताये हुअे चित्तकी ही व्याव-हारिक दशाकी स्थिति है।

लिअे जो वस्तु असामान्य होनेके कारण मेरी अिन्द्रियोंको अपनी ओर खींचती है अुसे मैं सुन्दर मान लेता हूं। अपनी प्रसन्नताके कालमें मेरा कपासका खेत ही मुझे संतोष देता है। परंतु प्रसन्नताके अभावमें काश्मीरका केसरका खेत देखनेके लिअे मैं तड़पता हूं, जिसकी चौकीदारी बिजलीके दीये जलाकर की जाती है।

अिसी तरह प्रसन्नताके कालमें कौनसी मांको अपना बालक सबसे अच्छा नहीं लगता? वह बालक काला है या गोरा, रोगी है या नीरोग, सुडौल है या बेडौल, सर्वांग है या विकलांग, बुद्धिशाली है या जड़, गुणवान है या गुणहीन -- किसीका भी मांको खयाल नहीं होता। बालक दुराचारी हो तो भी अुसे किसी सद्‌गुणी बालकसे बदलनेका विचार अुसे असह्य लगता है। अपनी प्रसन्नताके ताल पर दृष्टि रखकर ही वह बालकको देखती है; बालकके रूप, रंग अथवा गुण पर दृष्टि रखकर वह बालकको नहीं देखती।

पति या पत्नीको अपनी प्रसन्नताके कालमें अपने जीवन-साथीके रूप, रंग या विद्वत्तादि गुणोंका विचार भी मनमें नहीं अुठता। जब वे प्रसन्नताका अनुभव नहीं कर सकते और वफादारीकी भावना अुनमें कमजोर हो जाती है, तभी वे परस्त्री या पर-पुरुषके रूप-रंगादिसे आकर्षित होते हैं।

दो घनिष्ठ मित्रोंके गुणोंमें बहुत बार अत्यधिक विरोध होता है। अैसा लगता है मानो दोनोंके जीवनके ध्येय अेक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न हैं। फिर भी अुनकी घनिष्ठता टूटती नहीं। दोनों हृदयके भीतरकी स्वयंभू प्रसन्नताका अनुभव करते हों, अुस समय बंधी हुअी मित्रतामें ही अैसा होता है। जो मित्रता बाह्य निमित्तोंसे निर्माण होती है, वह टूट सकती है।

'भावे कोअु सुन्दर कहो, भावे कोअु कारे
हमकुं ये ही रूप बिना और सकल खारे।'

परंतु अिस अन्तःप्रसन्नताके परिणामस्वरूप होनेवाली बाह्य क्रियाअें विविध प्रकारकी होती हैं। अुन सबमें प्रेम -- धन्यता -- का तत्त्व तो समान होता है, परंतु प्रयोजन, विवेक-शक्ति, शिक्षण,

पूर्व-संस्कारों, दृढ़ कल्पनाओं आदिके भेदसे अुन क्रियाओंके अनेक प्रकार हो जाते हैं।

अन्तःप्रसन्नता अनुभव करनेवाले नागर नरसिंह महेता हों, या मिल-मजदूर बालू हो, दोनोंको समान रूपसे 'आजकी घड़ी सुन्दर' मालूम होती है। अैसे समय अपने किसी प्रियजनका सत्कार करनेका अवसर आये तो सत्कार करनेके ढंगमें दोनोंकी अच्छे-बुरेकी कल्पना, योग्यता और विवेक-बुद्धिके भेदके अनुसार फर्क पड़ता है। नागर नरसिंह मेहताको अुस समय,

'हांरे हुं तो मोतीडांना चोक पुरावती,
मारा वालीडानी आरती अुतारती हो जी रे.'*

अैसा ठाटबाट जमानेकी अिच्छा होती है और मिल-मजदूर बालू दीनभावसे अपनी स्वाभाविक संपत्ति अर्पण करके कृतार्थ होता है। वह :

'मखमल मसुरियानी गादी नथी मारे,
फाटेली गोदडी में छे पाथरी—'+

कह कर संतोष मानता है।

अन्तःप्रसन्नताके कालमें मैं अकेला होअूं तो अपने संस्कारोंके अनुसार गीत गाअूंगा, वाद्य बजाअूंगा, पुस्तकें पढ़ूंगा, चित्र बनाअूंगा, कविता रचूंगा, आकाशकी शोभा निहारूंगा, खेतमें काम करूंगा, कातूंगा, घरको साफ-स्वच्छ करूंगा या दूसरा कोअी काम करूंगा। परंतु यह सब मेरे अपने लिअे, स्वान्तःसुखाय ही होगा। अिस बातकी मुझे परवाह नहीं होती कि कोअी मेरी अिन सारी क्रियाओंकी कद्र या प्रशंसा करे। मेरी क्रियाओंको कोअी जानता है या नहीं, अिस बारेमें भी मैं लापरवाह रहता हूं।

---

* मैं तो मोतीके चौक पूरती हूं और अपने प्रियजनकी आरती अुतारती हूं।

+ मेरे पास मखमल और मशरूकी गादी नहीं है; मैंने तो अपनी फटी पुरानी गुदड़ी ही तुम्हारे लिअे बिछाअी है।

मुझे अिसकी आवश्यकता नहीं मालूम होती कि कोअी मेरा गीत सुने, या अुसे पूर्ण बनानेके लिअे कोअी तबले या सितार बजाये, मेरी रची हुअी कविता या चित्र कोअी देखे या प्रकाशित करे अथवा मेरी कलाका जगत्में प्रचार हो। कोअी मेरे रागको बेसुरा कहे या मेरी कविताको प्रतिभाहीन कहे, अिस विषयमें भी मैं अुदासीन रहता हूं। क्योंकि ये सब काम मैं किसी दूसरेके लिअे नहीं करता; मेरी अन्त:प्रसन्नतामें से वे सहज रूपमें ही अुत्पन्न होते हैं।

अपनी अन्त:प्रसन्नताके समय मैं किसीके संपर्कमें आता हूं, तब अपने संस्कारोंके वश होकर मैं विविध प्रकारकी क्रियायें करता हूं, परंतु अुन सबमें मेरा संपूर्ण हृदय अुंडेला हुआ होता है। मेरा मुख्य अुद्देश्य अपनी प्रसन्नता व्यक्त करनेका अथवा सामनेवाले व्यक्तिको अुसकी छूत लगानेका होता है। यह छूत लगानेके संबंधमें कभी मैं सामनेवाले व्यक्तिके संस्कारों, कभी प्रयोजन, और कभी मेरी विशेष योग्यताओंके साथ अपने विवेकका मेल बैठानेकी दृष्टिसे आचरण करता हूं। छोटा बालक हो और मेरे पास कहानियोंका भंडार हो, तो अुसे मैं कहानियां सुनाकर प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता हूं; कहानियोंका भंडार न हो अथवा अुस विषयमें मेरे विवेककी कसौटी कड़ी हो, तो मैं दूसरा तरीका खोजता हूं। माता-पिता हों तो मैं अुनकी मनपसन्द या आवश्यक सेवा करनेके लिअे प्रेरित होता हूं; कोअी मेहमान हो तो अुसकी और मेरी अच्छे-बुरेकी कल्पनाका मेल साधकर अुसकी आव-भगत करनेके लिअे प्रेरित होता हूं; कोअी गरीब हो तो अुसे अपनी कोअी वस्तु देनेके लिअे प्रेरित होता हूं; और कोअी बीमार हो तो अुसकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिअे प्रेरित होता हूं। अिस तरह अपनी आन्तरिक प्रसन्नताके फलस्वरूप अिनमें से किसी न किसीके लाभके लिअे अपनी किसी वस्तु या शक्तिका किसी भी तरह त्याग करनेकी दृष्टिसे मेरी सारी क्रियाअें होती हैं। अिस त्यागके लिअे मुझे पश्चात्ताप नहीं होता; अिससे मेरी प्रसन्नता घटती नहीं; अुलटी मेरी कृतार्थता—धन्यता—की भावनामें वृद्धि होती है, भले वह त्याग कितना ही बड़ा क्यों न हो।

भीतरकी प्रसन्नताके अभावमें मेरी सारी क्रियायें अैसी ही हों, मेरा त्याग अितना ही बड़ा हो, तो भी वह सब अेक बोझ ही मालूम पड़ता है। समयपत्रमें कहानीका समय रखा गया है अिसलिअे बालकोंको कहानी कहनी पड़ती है, माता-पिताने आज्ञा की है अिसलिअे अुनके पैर दबाने बैठना पड़ता है, मेहमान आ गये हैं अिसलिअे अुनकी व्यवस्था करनी पड़ती है, पैसे मांगनेके लिअे आनेवाला व्यक्ति नेता है अिसलिअे चन्दा देना पड़ता है, बीमारको कहीं फेंक नहीं सकते अिसलिअे अुसकी सेवा-शुश्रूषा करनी पड़ती है। अिन सब कार्योंमें कला, सामग्री, धन, श्रम आदिका कितना ही अधिक खर्च क्यों न किया गया हो, कितना ही अट्टहास क्यों न जोड़ा गया हो, फिर भी अुससे धन्यता — कृतार्थता — का अनुभव नहीं होता।

असलमें, भीतरकी प्रसन्नता और सामनेवाले व्यक्तिके प्रति रहे प्रेमके अुद्रेकमें से अपने अपने विवेक और अच्छे-बुरेकी कल्पनाके अनुसार दूसरोंके प्रति किये जानेवाले शिष्टाचारके तरीके पैदा होते हैं। परंतु जैसे-जैसे जीवनमें प्रसन्नताके ताल गुम होते जाते हैं, वैसे-वैसे प्रसन्नता और प्रेमके अुद्रेकका स्थान शिष्टाचारकी क्रियाओंका बढ़ा हुआ आडंबर लेता जाता है। बादमें मेहमानके लिअे ५ व्यंजन बनाये जायं या ८५, राजाको ११ तोपोंकी सलामी दी जाय या १०१ की, अिसकी सूक्ष्म विधियां निश्चित करके अुनका शत-प्रतिशत पालन करनेवालेको और जिसके लिअे वे की जाती हैं अुसको संतोष मानना पड़ता है; — संतोषका अनुभव नहीं होता, परंतु संतोष मानना पड़ता है। ये सब कृत्रिम जीवनके कृत्रिम आनन्द हैं। अिन्हें हम आनन्द तो कहते हैं; परंतु अुनमें प्रसन्नता — कृतार्थता — धन्यता नहीं होती।

सच कहा जाय तो प्रसन्नता हर्ष अुत्पन्न करनेवाली भावनाओंके लिअे अधिक पक्षपात करनेवाली और शोक करानेवाली भावनाओंको नापसन्द करनेवाली नहीं होती; क्योंकि हर्ष और शोक दोनों चित्तकी तरंगके अनिवार्य पहलू होते हैं। हर्ष अुत्पन्न करनेवाली भावनायें प्रसन्नता लानेवाली तथा शोक अुत्पन्न करनेवाली भावनायें प्रसन्नताका

नाश करनेवाली हों, अैसा नहीं है। परंतु अमुक प्रकारके हर्ष और शोक प्रसन्नताके तालको समान रूपसे निकट लानेवाले होते हैं।

गुरुजनोंके प्रति मुदिता (आनन्द) का अुद्रेक, साथियों और जनताके प्रति मैत्रीका अुद्रेक, आश्रितों और प्राणियोंके प्रति वात्सल्यका अुद्रेक, दूसरोंको सुखी देखकर अथवा दूसरोंके या अपने हाथों हुअे सत्कर्मसे संतोषकी अुत्पत्ति — ये प्रसन्नताके समीप रहनेवाले चित्तमें हर्ष अुत्पन्न करनेवाले पहलू हैं। दुःखीको देखकर करुणाका अुद्भव, अपनी गलतियोंके पश्चात्तापसे होनेवाला अनुतापका अुद्भव, किसीको पापमें डूबा हुआ देखकर अुसके प्रति अनुकंपाका अुद्भव, अपराधीके प्रति क्षमावृत्तिका अुद्भव — ये सब प्रसन्नताके समीप रहनेवाले चित्तके शोक करानेवाले पहलू हैं।

अन्तमें बताअी गअी सारी भावनाओंमें अुस क्षण शोकका अनुभव होता है; परंतु वह शोक न हो अैसी हमारी अिच्छा नहीं होती। दुःखीको देखकर करुणा अुत्पन्न न हो, पापका अनुताप न हो, अैसा नहीं लगता। क्योंकि अुसीमें से प्रसन्नताका ताल हाथमें आता है।

अिसके अलावा, प्रसन्नतासे अुत्पन्न होनेवाला आनन्द किसी भी प्राणीको पीड़ा पहुंचाये बिना या बोझरूप बने बिना (भोगना हो तो) भोगा जा सकता है; जब कि बाह्य वस्तुओंके जरिये प्राप्त किये जानेवाले आनन्दमें वे वस्तुअें अुत्पन्न करने तथा अुनके द्वारा आनन्द भोगनेमें अनेक निर्दोष प्राणियोंको कष्ट अुठाना पड़ता है। ताजमहल और अजन्ताकी गुफायें भले कला और सौन्दर्यके भंडार हों, परंतु अुस ताजमहलके पत्ते-पत्ते और फूल-फूलमें अेक जालिम बादशाह द्वारा हजारों गरीब कारीगरों और मजदूरोंसे जबरन् कराअी गअी मजदूरीका त्रास भरा हुआ है; और अुसे देखनेवाले लोग देशके करोड़ों अधभूखोंके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाला धन बरबाद करके ही वहां जा सकते हैं।

अजन्ताकी गुफायें भले बौद्धकालमें हमारे देशके कुछ साधुओं द्वारा कला-कौशलमें प्राप्त की हुअी पराकाष्ठाकी प्रतीक मालूम हों; परंतु वे बुद्ध भगवानके आदर्शोंको खो बैठनेवाले, सामान्य कर्ममार्गके त्यागका

मूल कारण भूल बैठनेवाले तथा राष्ट्रके अन्न पर जीकर भिक्षुके वेशमें भी विलास और वैभव भोगनेवाले लोगोंकी भी प्रतीक हैं।

मैंने सुना है कि नअी दिल्लीमें बड़े भव्य और सुन्दर सरकारी भवन बन रहे हैं। मुगल बादशाहोंकी शान-शौकतको भी पीछे रख देनेवाली भव्यता और सुन्दरता अुनमें लानेका प्रयत्न किया जाय तो कोअी आश्चर्यकी बात नहीं होगी। परंतु वे सुन्दर भवन किस बातके स्मारक होंगे? क्या वे अेक कंगालसे कंगाल देश पर शासन करनेवाले लोगोंकी निष्ठुरता और अहंकारके ही स्मारक नहीं होंगे? जिस दिन मुगलोंकी तरह अंग्रेजोंका साम्राज्य भी धूलमें मिल जायगा, अुस दिन तो नअी सत्ताके प्राचीन अिमारतोंकी रक्षा करनेवाले विभागको ही ये भव्य अिमारतें सौंपी जायंगी; और अिस विभागके अुत्पन्न होनेमें विलम्ब हुआ, तो अुतने समयमें गीदड़ और कुत्ते ही अुनके मालिक बनेंगे। अिन अिमारतोंको देखकर भविष्यके यात्री शायद भारतकी समृद्धि और खुशहालीकी कल्पना करेंगे; परंतु जिस धरती पर वे खड़ी हैं, वह धरती दुनियाकी गरीबसे गरीब धरती है यह क्या हम नहीं जानते?

कला और सौन्दर्यके ये अूंचेसे अूंचे नमूने आनन्दके निर्दोप साधन हैं, यह कैसे कहा जा सकता है?

बाहरसे प्राप्त किये जानेवाले आनन्दमें अेक दूसरी विलक्षणता भी होती है। हम किसी गायक, वादक, नर्तकी, चित्रकार, शिल्पी, नट, भाट-चारण या अवधानीकी अद्‌भुत शक्ति पर मुग्ध हो जाते हैं। अुसकी कुशलता पर हमें आश्चर्य होता है। परंतु अुसके साथ हमारा संबंध कैसा होता है? और अपनी कुशलतासे स्वयं अुसे कितनी कृतार्थता अनुभव होती है? हम देखते हैं कि जब हम अुसकी कलासे आश्चर्यचकित हो जाते हैं, अुस समय वह अपनी कलाकी अपेक्षा हमें ही अधिक महत्त्व प्रदान करता है। वह हमारी वाहवाहीका और अिनामका भूखा होता है। अितनी अद्‌भुत कलाका स्वामी होते हुअे भी वह हमारी खुशामद करता है, और हम भी अुसकी कला पर मुग्ध होते हुअे भी मनमें तो अच्छी तरह समझते हैं कि हम अुसके आश्रयदाता हैं

और वह हमारा आश्रय चाहनेवाला है। अिसलिअे साधारणतः आश्रय-दाता और आश्रितके बीच जैसा संबंध रहता है, वैसा ही संबंध हम अुसके साथ रखते हैं। यदि कालिदासके संबंधमें हमारी दन्तकथायें सत्य हों तो कविकुलगुरु होते हुअे भी अुनकी कवितादेवीके भाग्यमें तो अेक राजाकी चाटुकारिता करना ही लिखा था। अुनके काव्य केवल अुनकी प्रसन्नताको ही प्रकट नहीं करते थे। किसी कलाकारको अपना आश्रित माननेके कारण हम अुसके साथ समानताका व्यवहार नहीं करते, बल्कि हमसे नीचेकी पंक्तिका मानकर अुसके साथ अैसा व्यवहार करते हैं, मानो अुस पर हम कृपा — मेहरबानी — बरसा रहे हों। सुन्दर कलासे हमारा मनोरंजन करते हुअे भी अुसे अैसा नहीं लगता कि वह हम पर कोअी मेहरबानी कर रहा है; बल्कि हममें मूर्खसे मूर्ख परंतु कला-रसिक कहलानेकी अिच्छा रखनेवालेकी प्रशंसा या अिनामसे वह अपनेको अनुगृहीत हुआ मानता है।

यह सब बताता है कि वह कला स्वयं अुसे भी तृप्त नहीं कर सकती। अुसमें कृतार्थताकी भावना अुत्पन्न नहीं कर सकती। यदि और जब यह वस्तु भीतर अनुभव की हुअी अुसकी स्वाभाविक प्रसन्नतासे अुत्पन्न हुअी हो, तो और तब वह अुसे आनन्दका साधन नहीं मालूम होगी, परंतु भीतरके आनन्दकी अेक स्थूल अथवा कामचलाअू (rough) निशानी मालूम होगी। वैसी स्थितिमें वह अपनी कलाका प्रदर्शन करना नहीं चाहेगा; और दूसरोंकी कद्र पर अपनी कृतार्थताका आधार भी नहीं रखेगा। परंतु अैसा वह क्वचित् ही अनुभव करता है। जो वस्तु अपने स्वामीको भी तृप्त — आत्मसंतुष्ट — नहीं कर सकती, वह हमें कृतार्थ कर सकती है यह मान्यता क्या गलत नहीं है?

वस्तुस्थिति यह है। अिसलिअे बालकको या अन्य किसी व्यक्तिको आनन्दित करनेका अुपाय संगीत, कला, कहानी, मजाक, चित्र अथवा ताजमहल या अजन्ताकी गुफायें बताना नहीं है; बल्कि अिसका सच्चा अुपाय अुस व्यक्तिके प्रति हमारा प्रेमोद्रेक और अुस व्यक्तिका हमारे प्रति प्रेमोद्रेक है। प्रेमका अुद्रेक हो तो दोनों अेक-दूसरेके सामने चुप-चाप देखा करें तो भी कृतार्थता अनुभव करते हैं; अुसके अभावमें

कृत्रिम साधनों द्वारा आनन्दके नामसे पहचाने जानेवाले विकारोंको तो अुत्तेजित किया जा सकता है, किन्तु प्रसन्नताका अनुभव नहीं किया जा सकता। प्रेमका अुद्रेक होने पर यह भय रखनेकी आवश्यकता नहीं कि विवेकको बहुत सूक्ष्म कर देंगे, तो आनन्दके बहुतेरे साधन अशुद्ध मालूम होनेके कारण हाथसे चले जायेंगे, और फिर दूसरोंको रिझाने या खुश करनेके मार्ग ही नहीं रह जायेंगे। आवश्यकता केवल अिस बातकी है कि हम अपनी अन्तःप्रसन्नतासे दूसरोंके प्रति देखें, और बालकको अुसकी प्रसन्नता खोज कर दे दें। यह हमारी और अुसकी सद्-भावनाओंके पोषणसे हो सकता है। बालकको अपने माता-पिता, भाओी-बहन, गुरुजन, मित्र, अपनी शाला, अपना घर, अपना कुत्ता या बिल्ली, दूसरोंके लिअे कुछ करना, दूसरोंका दुःख सहन न कर सकना — यही सब आनन्दरूप लगता है; अुस आनन्दके फलस्वरूप वह जो कुछ अपने विवेकके अनुसार स्वयंस्फूर्तिसे करेगा, वही अुसे आनन्दित बनानेका अुत्तम अुपाय है।

अैसी प्रसन्नता जीवन-विकासमें अमूल्य मानी जायगी। भीतरसे ही सदैव प्रसन्न रहनेका स्वभाव जीवनके सारे आवश्यक आशीर्वाद — स्वास्थ्य, प्राण, सद्गुण, अेकता, प्रेम आदि — प्रदान करनेवाला होता है। अिनमें से कुछ आशीर्वादोंका अभाव हो तो भी अैसा स्वभाव मनुष्यको शांति प्रदान करता है। यह प्रसन्नता बालकमें पैदा करना — अर्थात् जब अुसका ताल खो जाय तब अुसे खोज देना — अवश्य ही शिक्षकोंका अेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। परंतु यह अकृत्रिम या साहजिक प्रसन्नता शिक्षक अपनी प्रसन्नतासे अुत्पन्न होनेवाले प्रेमके द्वारा ही देर-अबेर प्राप्त करा सकता है। हमारी प्रसन्नताकी छूत तुरंत ही सामनेवालेको नहीं लग सकती; परंतु हममें धैर्य हो तो सामनेवाले व्यक्तिकी ग्रहण करनेकी शक्तिके अनुसार देर-अबेर वह छूत लगे बिना रहेगी नहीं। अैसी प्रसन्नताको यदि आनन्द कहा जाय तो अिस आनन्दके जितने घूंट पिये और पिलाये जा सकें अुतने अिष्ट ही हैं।

१७

वह तालीम कौनसी ?

सं० १९८० के मार्गशीर्ष महीनेके 'युगधर्म' में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके दो भाषणोंका अनुवाद छपा है। दोनों भाषण विचार करने और परीक्षण करने योग्य हैं। हमारे देशकी स्थितिकी जांचके फलस्वरूप अुन्होंने जो कुछ बताया है, अुसमें से कुछ बातें अितनी सत्य हैं कि वे आज हमें अच्छी लगें या न लगें, किसी दिन अुन्हें स्वीकार करके जड़से ही अुनका अिलाज किये बिना हम शांतिकी दिशामें प्रगति नहीं कर सकेंगे। फिर भी श्री रवीन्द्रनाथके भाषणोंका कुछ भाग अैसा है, जिसकी विवेकके साथ जांच न की जाय तो बिना कारण लोगोंमें बुद्धिभेद अुत्पन्न हो सकता है। अिसके विपरीत, यह भी संभव है कि रविबाबूके भाषणोंको विवेकाग्निमें तपानेसे जिस सत्यकी ओर वे समाजका ध्यान खींचना चाहते हैं, अुसका लोगोंको अधिक स्पष्ट दर्शन हो। अिस प्रकार अुनके भाषणोंकी समालोचना सत्यकी शोधमें सहायक होगी, अैसा मानकर रविबाबूकी तुलनामें खड़े होनेमें असमर्थ होते हुअे भी मैं आलोचना करनेका साहस करता हूं।

श्री रविबाबू अपने 'समस्या' नामक पहले भाषणमें यह प्रतिपादित करते हैं कि भारतवर्षकी जनताको दो प्रश्नोंका संतोषकारक हल खोजना है। पहला प्रश्न अबुद्धिके नाशका, और दूसरा प्रश्न हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकताका है।

अिनमें से पहले प्रश्न और अुसके लिअे सुझाये गये हल पर पहले विचार करें।

"अबुद्धिके प्रभावसे हमारे मन दुर्बल हो गये हैं; हम अेक-दूसरेसे विच्छिन्न हैं; केवल विच्छिन्न ही नहीं, अेक-दूसरेके विरुद्ध भी हैं। हम वास्तविक जगत्को वास्तविक रूपमें ग्रहण नहीं कर सकते, अिसलिअे हम जीवन-यात्रामें प्रतिदिन हार जाते हैं। अबुद्धिके प्रभावसे हमने स्वबुद्धिके प्रति अश्रद्धा रखकर आन्तरिक स्वाधीनताके अुछलते

हुअे झरनेके मुंह पर संपूर्ण देश जितना परवशताका पत्थर ढांक रखा है। अिस समस्याका हल अेकमात्र तालीम ही हो सकती है।"

प्रश्न यह नहीं है कि यह समस्या सचमुच कोअी समस्या है या नहीं; वास्तविक प्रश्न यह है कि वह तालीम कौनसी है, जिसकी सहायतासे अबुद्धिका नाश हो सकता है और स्वबुद्धि पर हमारी श्रद्धा बढ़ सकती है? श्री रविबाबूने अपने भाषणमें मान लिया है कि अुन्होंने अिसका अेक अैसा अुत्तर दे दिया है जो सरलतासे सबकी समझमें आ जायगा। परंतु मुख्य प्रश्न तो यही है कि जिस 'तालीम' से यह समस्या हल हो सकती है, वह 'तालीम' है क्या चीज? रविबाबूके दोनों भाषण अिस मुख्य प्रश्नके बारेमें चुप हैं; और अिस सम्बन्धमें जो कुछ भाषणोंमें कहा गया है वह अधूरा होनेके कारण असंतोषकारक है।

भाषणके पहले भागसे लगता है कि श्री रविबाबू तालीमका अर्थ बुद्धिका विकास करते हैं। बुद्धि अेक अैसा शब्द है, जो साधारणतया स्पष्ट समझमें आ सकता है। अैसा मान लें तो भी यह जांचना बाकी रहता है कि बुद्धिके विकासका अर्थ क्या है और वह कैसे हो सकता है। क्योंकि श्री रविबाबू यह स्वीकार करते हैं कि हमारे देशमें अनेक लोग 'तालीम प्राप्त किये हुअे' हैं, फिर भी "अुनमें से बहुतोंमें बुद्धिकी मुक्तिका बल बहुत देखनेमें नहीं आता; वे भी अुच्छृंखल भावसे चाहे जो मान लेनेको तैयार हैं; वे अंधभक्तिके अद्‌भुत मार्गमें अकस्मात् यात्रा करनेके लिअे तैयार हैं; आधिभौतिक व्यापारोंकी आधिदैविक व्याख्या करते अुन्हें जरा भी संकोच नहीं होता; वे भी अपनी बुद्धिके विचारकी जिम्मेदारी दूसरोंको सौंपते लजाते नहीं, बल्कि आनन्द अनुभव करते हैं।"

स्पष्ट है कि जिस अबुद्धिका नाश और स्वाधीन बुद्धिका विकास करना वांछनीय है, वह विश्व-विद्यालयोंकी अुपाधियों अथवा षड्‌दर्शनके अध्ययनसे होता ही है अैसा नहीं दिखाअी देता। अतः अिस बातका कोअी विश्वास नहीं कि विज्ञानशास्त्रकी पढ़ाअीसे, भाषाओंकी पढ़ाअीसे अथवा न्याय और दर्शनशास्त्रोंकी पढ़ाअीसे अबुद्धिका नाश हो ही जायगा।

अिसलिअे यह प्रश्न तो खड़ा ही है कि जिस तालीमकी मददसे समस्या हल होनेवाली है, वह क्या चीज है ?

सच बात तो यह है कि अबुद्धिके नाश, स्वबुद्धि पर विश्वास और अंधश्रद्धाके त्यागका अतिशय पांडित्य या तार्किक सूक्ष्मताके साथ कोअी अनिवार्य संबंध नहीं है। परन्तु अबुद्धिके नाशका संबंध भावनाओंके विकासके साथ अवश्य है।

जब तक मनुष्यमें भय अथवा लालसा रहेगी, तब तक अबुद्धिके साम्राज्यसे कोअी मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता। अुसके सर्वविद्या-संपन्न मस्तिष्कके किसी कोनेमें भी कुछ अबुद्धि, कुछ अंधश्रद्धा जरूर छिपी हुअी मालूम पड़ेगी।

अिस भय अथवा लालसाके साथ मनुष्यमें कर्तृत्व-शक्ति होगी, तो वह अधिक स्वावलंबी, स्वाधीन साधनों पर आधार रखनेवाला, तथा वास्तविक जगत्को कमसे कम बाह्य दृष्टिसे अधिक वास्तविक रूपमें ग्रहण करनेवाला मालूम होगा। परंतु जगत्के प्रति अुसका दृष्टिबिन्दु जगत्के लिअे सुखदायी नहीं होगा। वह जगत्के लिअे भयका, त्रासका कारण तो रहेगा ही, क्योंकि वह स्वयं भय या लालसासे मुक्त नहीं है, और वास्तविक जगत्को **पूर्णतया** वास्तविक रूपमें ग्रहण करनेमें अशक्त है। जहां और जिस क्षण अुसके कर्तृत्वका बल कम हुआ मालूम होगा, वहां और अुस क्षण अुसके मस्तिष्कमें रहा अबुद्धिका अंकुर तुरन्त प्रकट होगा।

अिस भय और लालसाके साथ जिस मनुष्यमें कर्तृत्वका अभाव होगा, अुसमें अबुद्धिका पूर्ण साम्राज्य होगा। सारी भाषाओंका ज्ञान, सारी वैज्ञानिक विद्याओंका ज्ञान और सारे दर्शनशास्त्रोंका ज्ञान भी अुसे अबुद्धिकी गुलामीसे नहीं छुड़ा सकेगा। जहां जहां पांडित्यके होते हुअे भी किसी 'खूंटीश्वरी' * में श्रद्धा पाअी जाय, वहां परीक्षा करने पर भय, लालसा और कर्तृत्वका अभाव दिखे बिना नहीं रहेगा।

---

* श्री रविबाबूने अपने भाषणमें अिस प्रकार अेक कहानी कही है : अेक बार अेक आदमी अपनी बकरीके साथ किसी गांवके चौकमें आया। रात पड़ जानेसे अन्यत्र कहीं ठहरनेकी जगह न खोजकर रास्तेके

कहनेका मतलब यह कि भय, लालसा और अकर्तृत्व ये तीनों अबुद्धिके पोषक हैं। यदि और जिस हद तक विद्वत्ता अिस त्रिपुटीके नाशमें सहायक होगी, तो और अुसी हद तक अिस दिशाकी तालीम हमारा ध्येय सिद्ध करनेमें अुपयोगी मानी जायगी।

परंतु वास्तवमें यह पाया जाता है कि पांडित्यके बिना भी मनुष्यमें भय, लालसा और अकर्तृत्वका अभाव हो सकता है, और पांडित्यसे अिनका अनिवार्य रूपमें नाश नहीं होता। परंतु मूलमें अिस त्रिपुटीका अभाव हो अथवा अुसका नाश करनेकी वृत्ति हो, तो विद्वत्तासे मनुष्यकी स्वाधीन बुद्धि अधिक शोभा पाती है, तथा अुसका कार्य-क्षेत्र और समाजकी दृष्टिसे अुसकी अुपयोगिता बढ़ सकती है।

अिसलिअे केवल 'तालीम' कहनेसे ही समस्या हल नहीं हो जाती। परंतु जिस तालीमसे भय और लालसाका अुच्छेद तथा कर्तृत्वका अुचित मात्रामें विकास हो सके, वही तालीम हमारी समस्या हल कर सकेगी।

'कर्तृत्वकी अुचित मात्रा' कहनेमें मेरा विशेष हेतु है। केवल अपार कर्तृत्व सुखदायी नहीं होता। केवल संतोष प्रगतिकारक नहीं होता। कर्तृत्व और संतोषका यथायोग्य समन्वय ही प्रगतिकारक और सुखावह होता है।

बीचमें ही अुसने अेक लकड़ीकी खूंटी गाड़ दी और बकरीको अुससे बांधकर सो गया। सवेरे सूर्योदयके पहले ही वह अुठा और बकरीको खोलकर चल दिया। परंतु जो खूंटी अुसने रास्तेके बीच गाड़ी थी, अुसे अुखाड़नेकी अुसने परवाह नहीं की। सवेरे गांवके लोगोंको रास्तेके बीच गड़ी हुअी खूंटी देखकर आश्चर्य हुआ और अुन्होंने अनुमान कर लिया कि यह किसी अदृश्य शक्तिका कार्य होना चाहिये। अुसकी वजहसे आने-जानेमें लोगोंको असुविधा होती थी, परंतु अुसे अुखाड़नेकी हिम्मत कौन करे? अुलटे लोगोंने यह तय किया कि अुसी स्थान पर अुसकी पूजा की जाय। अिस तरह रास्तेके बीच 'खूंटीश्वरी' देवीकी स्थापना हुअी!

रोगकी परीक्षा करनेसे डॉक्टरके मनको अवश्य संतोष होता है, परंतु रोगीको केवल परीक्षासे संतोष नहीं हो सकता। अुसे तो रोगकी परीक्षा और अुसका सुलभ अुपचार दोनों चाहिये। अुसी तरह देशके रोगकी दवा (मेरी बताअी हुअी) तालीम है, अैसा कहनेसे भी अुसका रोग दूर नहीं होगा। प्रश्न यह है कि अुस तालीमके प्रचारका अुपाय क्या है? अबुद्धिका नाश करनेवाली तालीम जनताको किस तरह दी जा सकती है?

काफी विचार करने पर भी अिसका कोअी राजमार्ग मालूम नहीं होता।

किसी अपढ़ विद्यार्थीको सालभरमें पाणिनिका व्याकरण सिखानेका बीड़ा शायद अुठाया जा सकता है; परंतु यह कह सकना संभव नहीं है कि दूसरा कोअी अुसके भय, लालसा और अकर्तृत्वका नाश अमुक समयमें कर ही देगा। जिसमें सीखनेकी जिज्ञासा है, अुसे सर्वथा अपरिचित विषयका ज्ञान भी थोड़े समयमें दिया जा सकता है; परंतु क्या सीखनेकी जिज्ञासा नये सिरेसे पैदा करानेवाला कोअी अचूक अुपाय है? शायद अिसका भी अुपाय है, अैसा कहा जाय; क्योंकि पढ़नेके स्थूल और लालसाका पोषण करनेवाले फल हो सकते हैं। परंतु लोगोंकी कल्पनामें यह चीज अुतारना भी कठिन होता है कि अुपर्युक्त त्रिपुटीके नाशके फल सुखदायी होते हैं।

क्योंकि जो सच्ची तालीम है, जिस पर मनुष्यताके विकासका आधार है, वह तालीम कुअेंके पत्थर पर लकीर या निशान बनानेकी कला जैसी है। आप लोहेकी छड़ घिसते रहें तो भी अेक दिनमें अुस पत्थर पर कोअी असर नहीं होगा। परंतु कच्ची रस्सीकी रोजकी घिसाअीसे अुस पर सुन्दर चिकनी लकीर या निशान बन जाता है। अबुद्धिके संस्कारोंका नाश गुणों — शुभ भावनाओं — दैवी संपत्ति — के अुत्कर्षसे ही हो सकता है। और वह किसी बड़ेसे बड़े विद्वान् या महान् वक्ताकी सहायतासे अथवा पढ़ाअीके विषयोंसे भरपूर समयपत्र बनानेसे नहीं होता। अुदात्त चरित्रवाले आदर्श सन्त तथा अुनके छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े कर्म ही अैसी तालीम देनेवाले शिक्षक बन सकते

हैं। हजारों वर्षमें पैदा होनेवाला अैसा अेक शिक्षक भी मानवताके विकासके जिज्ञासुओंके लिअे सदियों तक प्रकाश-स्तंभका काम देता है। अुस प्रकाश-स्तंभकी ओर बढ़नेवाला नम्र साधक भी कुछ अंशमें यह तालीम दे सकता है। परंतु मनुष्यत्वका विकास करनेवाली सार्वजनिक शालायें खोली जा सकती हैं या नहीं, अिस बारेमें शंका है। यह कार्य थोड़े-बहुत अंशमें भी केवल अुदात्त भावनाओंका श्वासोच्छ्वास लेनेवाले सतत जाग्रत पुरुषोंके जीवनसे ही हो सकता है। जाग्रत पुरुषोंके विद्यार्थियोंके लिअे पंडित बनना अनिवार्य नहीं है; परंतु अुनके साथ संपूर्ण तादात्म्य साधना अत्यन्त आवश्यक होगा।

समस्याका सच्चा हल अिस प्रकारका है। अिसलिअे श्री रवीन्द्रनाथने चरखा, गुरुमुखता (गुरुको सर्वस्व समझना) आदि विषयोंके विरुद्ध जो अुद्गार प्रकट किये हैं, अुनमें थोड़ा विचारदोष मालूम होता है।

अिनमें से पहले हम चरखेको लें। श्री रविबाबू कहते हैं, "पहले सूत कातेंगे, कपड़ा बुनेंगे, खायेंगे-पियेंगे और अुसके जरिये स्वराज्य प्राप्त करेंगे। अुसके बाद अवकाश मिलने पर मनुष्यत्व प्राप्त करेंगे — ये वचन मनुष्यके नहीं हो सकते।" अिस अुद्गारके पीछे अैसी मान्यता दिखाअी देती है कि सूत कातना, कपड़ा बुनना आदि काम मनुष्यत्वकी प्राप्तिमें बाधक हैं।

यह मान्यता गलत है। जिस मनुष्यने यह समझ लिया है कि मनुष्यत्व किस बातमें है, और अुसकी प्राप्तिकी कुंजी जैसे सतत विचारमय जीवनमें जो सदा जाग्रत रहता है, अुसके लिअे प्रत्येक शुद्ध क्रिया विकासकी दिशामें ले जानेवाला अेक कदम ही है। परंतु जिसे यह समझमें नहीं आया है, जिसके हाथमें विचारकी कुंजी नहीं आअी है, अुसके लिअे जगत्की सारी पुस्तकोंका परिचय (अथवा संगीत और कला-कौशल भी) व्यर्थका भार ही सिद्ध होनेवाला है। जगत्में अैसी बहुत थोड़ी पुस्तकें हैं, जो मनुष्यत्वकी प्राप्तिमें सहायक होती हैं; और साहित्य, संगीत तथा कला ही अुसकी प्राप्तिके साधन हैं, यह अनेक अंधविश्वासोंमें से अेक अंधविश्वास है।

यह मैं साहित्य, संगीत आदि विषयोंकी निन्दा करनेके लिअे नहीं लिख रहा हूं। फिर भी जो मनुष्य दिनका महत्त्वपूर्ण भाग मानसिक भोजनकी प्राप्तिके लिअे बितानेमें जीवनकी सफलता मानता है, अुसे दूसरोंके हितोंका भी विचार करना चाहिये। बुद्धिकी भूख अन्नकी भूखसे बढ़कर होगी और अुसमें अधिक संस्कारिता भी होगी, परंतु अन्नके बिना बुद्धिभोजीका भी काम नहीं चलता, अिस सत्यकी अुपेक्षा नहीं की जा सकती। अन्न खाते हुअे भी यदि मैं अन्न अुत्पन्न करनेमें भाग न लूं, तो स्पष्ट है कि दूसरे किसीको मेरा और अुसका अपना अन्न अुत्पन्न करनेमें समय लगाना ही होगा। अिसी प्रकार मेरा अन्न या भोजन तैयार करनेमें, वस्त्र बनानेमें तथा मेरे अुपभोगकी प्रत्येक वस्तु तैयार करनेमें किसी दूसरेको समय खर्च करना ही होगा। अिसके अुपरान्त, अुसे अपनी आवश्यकतायें पैदा करनेमें तो समय खर्च करना ही होगा। अर्थात् शरीरके लिअे जिस आवश्यक सामग्रीका मैं नित्य अुपभोग करता हूं, अुसके बनानेमें यदि प्रतिदिन १० घंटे लगते हों तो दुनियामें किसी न किसीको यह १० घंटेका समय देना ही होगा; अुसके सिवाय, अपनी खुदकी आवश्यकताओंके लिअे भी अुसे अितना ही समय देना होगा। अिसका परिणाम है जगत्की वर्तमान स्थिति: (१) कोअी २० घंटे परिश्रम नहीं कर सकता; परंतु मेरे लिअे तो अुसे १० घंटे परिश्रम करना ही होगा, अिसलिअे अुसे अपने शरीरकी आवश्यकतायें अधूरी रखकर मेरे लिअे — मैं पंडित हूं, बुद्धिशाली हूं अिसलिअे — खपना होगा। और (२) जिस बुद्धिके भोजन पर मैं अितना मुग्ध हूं, अुसकी तृप्तिकी अुसे तो आशा ही छोड़ देनी चाहिये। क्योंकि अिस पृथ्वीकी परिक्रमा २४ घंटेमें ही पूरी हो जाती है और चौबीसों घंटे परिश्रम करनेकी शक्ति सुरक्षित रखनेकी मनुष्यमें ताकत नहीं है।

यदि बुद्धिभोजी लोग बुद्धि-भोजनके अनुपातमें शरीरके अुपभोग कम करते हों अथवा गरीबसे गरीब मनुष्यके जितने ही रखते हों, तो भी श्रम-विभाजनकी किसी पद्धतिसे अथवा यंत्रकलासे अैसा कोअी हल ढूंढ़नेकी आशा रखी जा सकती है, जिससे सबको संतोष हो। परंतु

देखा यह गया है कि बुद्धिभोजीकी शारीरिक अुपभोगोंकी भूख बुद्धिके अनुपातमें ही बढ़ती रहती है; बुद्धिभोजी मनुष्य पैसा-बाजारकी स्थितिके संबंधमें अुदासीन नहीं रहता। वह पैसा-बाजारमें भी अपनी बुद्धिकी कीमत अूंची करानेकी अिच्छा रखता है। अुसने बुद्धि प्राप्त की है, अिस-लिअे अुसकी दृष्टिमें अपना समय बहुत महत्त्वका होता है। अिस दुनियामें अेक ही स्थान पर बैठकर जीवनके सारे व्यवहार नहीं हो सकते, और हर स्थान पर चलकर जानेमें समय बरबाद होता है, अिसलिअे अुसे कोअी सवारी अवश्य चाहिये। अुसका समय बड़े महत्त्वका है। अपने विचार भी स्वयं लिखने बैठनेमें या डाकमें पहुंचानेमें अुसका समय खर्च नहीं होना चाहिये। अतः अुसे कारकून और चपरासी चाहिये; अच्छेसे अच्छा दीपक चाहिये; अच्छेसे अच्छा मकान चाहिये; लिखने-पढ़नेके लिअे टेबल-कुर्सी चाहिये। अिसके अलावा, अुसकी बुद्धिको शोभा देनेवाला सम्मान भी अुसे मिलना चाहिये। और अुस सम्मानकी रक्षाके लिअे आवश्यक टीमटाम और तड़क-भड़क बनाये रखनेके लिअे दूसरे खर्च करनेकी सुविधा भी होनी चाहिये।

आवश्यक हो तो ये साधन अुत्पन्न करनेमें बड़े बड़े यंत्रोंका अुप-योग किया जाय या यंत्रोंका बहिष्कार किया जाय, परंतु अितना तो निश्चित है कि अपना समय बचानेके लिअे अथवा अपनी बुद्धिकी महिमा दूसरोंको समझानेके लिअे मैं जिन जिन सुविधाओंका अुपभोग करूं, अुनके बदले दुनियामें दूसरे किसीको अितना समय देना ही चाहिये; अर्थात् अुसे अपनी बुद्धिकी भूख मिटाना भूलना ही चाहिये।

परिणाम :— पांडित्यकी मेरी अपार अभिलाषाको पूरा करनेके लिअे दूसरे अेक ही मनुष्यको नहीं — परंतु सामान्य मनुष्योंकी अपेक्षा मेरी आवश्यकतायें अधिक होनेके कारण — अनेक मनुष्योंको अपना बुद्धि-विकास थोड़ा भी न होने देनेकी स्थिति स्वीकार करनी चाहिये। यदि बुद्धि-विकास मनुष्यकी पूर्णताके लिअे सर्वथा अुचित हो और यदि न्यायवृत्ति मनुष्यत्वका अेक आवश्यक अंग हो, तो मेरा बुद्धि-विकास कितना ही क्यों न रुके, दूसरोंको हानि पहुंचा कर अपनी भूख तृप्त करनेकी मुझे कभी भी अिच्छा नहीं रखनी चाहिये।

परंतु पंडितवर्ग कहता है: "अिसमें सचमुच कोअी अन्याय नहीं होता; सच बात तो यह है कि अनेक मनुष्योंको बुद्धिकी भूख ही नहीं होती। वे शारीरिक श्रम करके जीवन बितानेमें संतोष मानते हैं। बुद्धिका विकास करनेकी अुनमें योग्यता भी नहीं होती। आप अुन्हें पढ़ाने जायेंगे तो वे अूंघने लगेंगे। मैं अपनी बुद्धिसे अुपभोगके साधन जल्दी अुत्पन्न करनेमें भी सहायता करता हूं। मेरी बुद्धिसे दुनियाको भी लाभ है। मुझमें बुद्धि होगी तो मैं अनेक लोगोंको पढ़ा सकूंगा — बुद्धि दे सकूंगा। मेरा समय बचानेमें संसारका ही हित है।"

अिस अुत्तरमें सर्वत्र अन्याय ही अन्याय है। अनेक लोगोंमें बुद्धिकी भूख नहीं होती और वे शारीरिक श्रम करके जीनेमें संतोष मानते हैं, अिसका अेक कारण तो यह है कि अुन्हें बुद्धि-विकासका स्वाद चखनेका जीवनमें कोअी अवसर ही नहीं मिला और दूसरा कारण यह है कि अुन्हें शारीरिक श्रम करके जीवनमें संतोष माने सिवाय कोअी चारा ही नहीं है। जिस प्रकार हम रास्तेसे जा रहे हों, हमारे पास छाता न हो, मूसलधार बारिश पड़ने लगे और अैसे समय कोअी पेड़ पासमें दिख जाय तो वह अत्यन्त संतोषजनक बात ही मानी जायगी, अुसी प्रकार शरीरमें प्राण टिकाये रखनेके लिअे शारीरिक श्रम किये बिना कोअी चारा ही न हो तो अुस स्थितिमें संतोष मानना ही पड़ेगा।

संभव है दूसरे लोगोंका समय बचानेसे वे अुस समयका अुपयोग अपनी बुद्धिका विकास करनेमें न करें, परंतु अिससे मुझे अुनका समय खर्च कराकर अपनी बुद्धिके विलास करनेका अधिकार कैसे मिल सकता है?

तीसरा कारण यह है कि मेरी बुद्धिकी भूखके पीछे कितनी ही पीढ़ियोंका परिश्रम है; अुन लोगोंको अितना समय मिले तो वे भी जरूर तीव्रबुद्धि हो सकेंगे।

यहां शायद यह शंका की जा सकती है कि "श्रम-विभाजन जैसी कोअी वस्तु दुनियामें है या नहीं?" मैं कहता हूं, है। परंतु श्रम-विभाजनकी भी अेक मर्यादा है। मैं अनाज लाअूं और मेरी पत्नी रसोअी बनावे, मैं कपड़े धो लाअूं और मेरी पत्नी घरमें झाड़ू लगा दे — यह अेक प्रकारका श्रम-विभाजन है; अिसमें भी अेक मर्यादाके

बाद अन्याय हो सकता है। घर बसाये बिना मनुष्य रह नहीं सकता। परंतु घरसे बाहर निकलनेका काम मैं अपने हाथमें रखूं और स्त्रीका घरमें रहनेका श्रम-विभाजन करूं, यद्यपि घरसे बाहर निकले बिना अुसका काम चलता नहीं, तो अिससे गृहस्थीमें विषम स्थिति अुत्पन्न होती है। अिसी प्रकार कच्चा माल मैं अुत्पन्न करूं और पक्का माल मेरा पड़ोसी तैयार करे, अिस श्रम-विभाजनसे भी जो विषम स्थिति अुत्पन्न होती है अुसे हम जानते हैं। परंतु अिससे भी अधिक अन्याय तो अिस श्रम-विभाजनमें होता है कि बुद्धिका काम मेरे पास रहे और मेरा पड़ोसी शारीरिक श्रम करे। क्योंकि जैसे 'तू दोनोंकी तरफसे रसोअी बना और मैं दोनोंकी तरफसे खाअूं'—यह श्रम-विभाजन नहीं हो सकता, वैसे ही बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रमका न्यायपूर्ण विभाजन नहीं हो सकता।

चौथा, मेरी बुद्धि जगत्के लिअे अुपयोगी सिद्ध हो तो भी पैसा-बाजारमें बुद्धिकी विशेष कीमत आंकनेका कोअी कारण नहीं दिया जा सकता। अिसके विपरीत, यदि बुद्धिके विकाससे मनुष्यता बढ़ती हो तो अुस कारणसे तथा आवश्यक अन्नके अुत्पादनमें मेरी सीधी सहायता न होनेके कारण भी मेरे जैसे बुद्धिशाली मनुष्यकी शारीरिक आवश्यकतायें साधारण मनुष्यसे कुछ कम होनेमें ही न्याय है।

पांचवां, बुद्धि द्वारा जगत्की सेवा करनेमें ही गुरु बननेकी अिच्छाका बीज निहित है। मैं दूसरोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र बुद्धिवाला बनकर अुसका लाभ सबको दूं, अिसका अर्थ क्या यही नहीं है कि मैं दूसरोंका गुरु बनूं? जो लोग परबुद्धिके आधारको ठीक नहीं मानते, अुनका मौन रहना ही अुचित कहा जायगा। मैं दूसरोंकी अपेक्षा तीव्र बुद्धिवाला बनूं, अिसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे मेरी बुद्धिके आश्रित बनें; अिससे अैसी स्थिति अुत्पन्न हुअे बिना नहीं रहेगी, जिसमें दूसरे मेरी बुद्धिके आश्रित बननेके लिअे मजबूर हो जायं। अिसलिअे जो गुरुमुखता अिष्ट नहीं मालूम होती, वह टाली नहीं जा सकती।

हमें यह सच्ची बात न भूलना चाहिये कि सुशिक्षित लोग अधिकतर जिस बुद्धिके विकासके पीछे पड़े रहते हैं, वह बुद्धि अबुद्धिके

नाशमें थोड़ी भी सहायता नहीं करती। वह केवल चित्तकी अेक स्वच्छन्दता ही होती है।

अिसी प्रसंगमें श्री रवीन्द्रनाथने गुरुमुखताके विरुद्ध जो अुद्‌गार प्रकट किये हैं, अुन पर विचार करना ठीक होगा।

श्री रविबाबूने दैव, गुरु और चमत्कार तीनोंको अेक ही पंक्तिमें बैठा दिया है और तीनों पर रखे जानेवाले विश्वासको अेकसी अन्धता बताया है।

वास्तविकता यह है कि जिस प्रकार मनुष्य अपना अन्न अपने पेटके भीतर ही पैदा नही कर सकता, बल्कि विश्वमें से अुसे वह अन्न लेना पड़ता है, अुसी प्रकार मनुष्यको अपनी बुद्धिके विकासके लिअे भी विश्व पर आधार रखना पड़ता है। जिस प्रकार वह अन्नके लिअे प्रकृति और दूसरे मनुष्योंकी सहायता लेता है, अुसी प्रकार प्रज्ञारूपी अन्नके लिअे भी प्रकृतिके अवलोकनकी तथा दूसरे मनुष्योंकी सहायता लेता है। जिस मनुष्यकी बुद्धिकी सहायतासे वह अपनी बुद्धिको विकसित करता है, अुसके प्रति गुरुभाव रखनेमें वह गलती करता है अैसा कोअी नहीं कह सकता।

जो मनुष्य दूसरेको नअी दृष्टि प्रदान करता है, वह अुसका गुरु होता है। फिर भी, आश्चर्यकी बात यह है कि जो गुरुका अस्वीकार करते हैं, वे भी दूसरोंको नअी दृष्टि देनेका प्रयत्न करते हैं!

अिसके अलावा, गुरुका अस्वीकार करनेवाले लोग पुस्तकोंके अध्ययन पर अधिक भार देते हैं। अिसलिअे व्यवहारमें अैसा देखा जाता है कि किसी मनुष्यके कहे हुअे शब्द अप्रमाण माने जाते हैं, परन्तु वह चाहे जैसा रद्दी-सद्दी भी लिख जाय और अुसका लिखा हुआ किसी न किसी प्रकार काल-प्रवाहमें थोड़े समय टिका रहे, तो वह विश्वसनीय और विचारणीय बन जाता है! जब कि सच तो यह है कि जड़ पुस्तककी अपेक्षा अपूर्ण किन्तु सचेतन मानव गुरु बननेका विशेष अधिकारी माना जाना चाहिये।

परन्तु पाठक कहेंगे कि मैंने रविबाबूके कथनको समझा ही नहीं। अुनका कहना अितना ही है कि छोटे बालक अथवा छोटे

जन्तुसे भी बुद्धि अवश्य ग्रहण करो, परन्तु किसीके वचनको 'वेदवाक्य' न मानो।

ठीक बात है। परन्तु अितनेसे ही कठिनाअी हल नहीं हो जाती। दूसरोंके वचनोंकी योग्य परीक्षा करनेका साधन अंतमें तो हमारी अपनी विवेकशक्ति ही होती है। और यह विवेकशक्ति यदि मूलसे ही पंगु हो तो अुन वचनोंकी योग्य परीक्षा सच्ची ही होगी अैसा नहीं कहा जा सकता। अतः जिनके विषयमें हमें लगता हो कि वे दूसरों पर केवल अंधश्रद्धा रखते हैं, अुनसे पूछा जाय तो अुनमें से अधिकतर लोग अंधश्रद्धाके आक्षेपको स्वीकार नहीं करेंगे। वे कहेंगे कि "हमने गुरुके वचनोंकी अपनी बुद्धिसे जांच की है और हमें अुन पर विश्वास हो गया है; जहां हम केवल अुनके वचनों पर ही श्रद्धा रखते हैं, वहां हमें अुनकी सत्यवादिता पर विश्वास है। गुरु-वचनों पर विश्वास बैठे अैसे प्रमाण अुन्होंने हमें दिये हैं। जिस प्रकार दवा कराते समय डॉक्टरकी योग्यताके बारेमें अच्छी तरह विश्वास कर लेनेके बाद अुसकी बुद्धि और अनुभव पर विश्वास करना ही पड़ता है, जिस प्रकार किसी वस्तुके जहरीलेपनके बारेमें आप्तवाक्यको प्रमाण मानना ही पड़ता है, अुसी प्रकार हम कुछ बातोंमें गुरुके वचनोंको विश्वसनीय मानते हैं। अिसका कारण हमारी अंधश्रद्धा नहीं, परन्तु अुनके विषयमें हमें जो अनुभव हुअे हैं अुनसे अुत्पन्न हुआ हमारा विश्वास है।" अिस प्रकार लगभग प्रत्येक शिष्य अपने गुरुके विषयमें हमें यकीन दिलायेगा। अुसकी विवेकदृष्टि सदोष हो सकती है, परन्तु आज जितनी विवेकशक्ति अुसके पास है, अुसके द्वारा अुसने अपनी श्रद्धाको शुद्ध बनानेका प्रयत्न अवश्य किया होगा। अैसा कौनसा मनुष्य है, जो दृढ़तापूर्वक कह सकता है कि अुसकी बुद्धि जीवनके किसी भी क्षेत्रमें परम्परागत कल्पनाओं और मान्यताओंके प्रवाहमें थोड़ी भी नहीं बहती? सत्यकी शोधका मार्ग ही अैसा है कि अुसमें पहले स्थूल परिणामका दर्शन होता है, बादमें कारणकी कल्पनाअें आती हैं और बादमें शायद सत्य नियमका दर्शन होता है। अनेक बार तो अेक कल्पनाके खंडन और दूसरी

कल्पनाके मण्डनमें ही सत्यका आरोप होता है। अनेक अैसे निश्चय, जिन्हें हम बुद्धियुक्त मानते हैं, वास्तवमें आजकी दृष्टिसे सुसंगत लगनेवाली कल्पना ही होते हैं। हो सकता है कि आजके बड़ेसे बड़े ज्ञानीके अनेक विषयों पर प्रकट किये गये मत हजार वर्ष पश्चात् केवल हास्यास्पद कल्पना ही माने जायं।

अिसलिअे गुरु पर रखी जानेवाली अयोग्य श्रद्धाको दूर करनेका अुपाय किसी पर बिलकुल विश्वास न करना नहीं है, परन्तु विवेक-शक्तिको शुद्ध करना है। यह विवेकशक्ति कैसे शुद्ध हो सकती है?

हम अिसके कारणकी जांच करें कि गुरुसे धोखा खाना कैसे संभव होता है। गुरु स्वार्थी हो या स्वयं प्रामाणिक गलती कर रहा हो, तो वह अपने शिष्योंको गलत रास्ते ले जायगा।

गुरु यदि स्वार्थी हो तो अुसे मिला हुआ शिष्य-मण्डल लोभी या जड़ होना चाहिये। जो शिष्य किसी सच्चे या काल्पनिक भयके निवारणके लिअे, अथवा किसी भी प्रकारके अैहिक या पारलौकिक सुख अथवा भोगकी प्राप्तिके लिअे, अथवा किसी सिद्धि, चमत्कार, शक्ति या आनंदकी अिच्छासे गुरुकी खोज करता है और अुसके लिअे स्वयं कुछ भी करनेकी अिच्छा नहीं रखता है—संक्षेपमें मानवताके विकासके सिवाय कोअी भी दूसरी वस्तु प्राप्त करनेकी अिच्छा रखता है या पुरुषार्थ करनेकी मेहनतसे बचनेकी अिच्छा रखता है, वह किसी भी समय गुरुसे धोखा खाये तो अुसमें दोष केवल अुसके भय, लालसा और कर्तृत्वहीनताका ही माना जायगा। अिसमें हमारा देश और युरोपीय देश समान रूपसे ही गलतीमें फंसते हैं। अिसका अेक अुदाहरण पेटेन्ट दवाअियां हैं। रोगका कारण दूर करनेका श्रम किये बिना और अुसके लिअे अुचित संयमका पालन किये बिना नीरोग बननेकी आशा रखनेवाले युरोपियन कम नहीं हैं, और अुनकी अबुद्धि पर धनवान बननेवाले दवाके अुत्पादक भी कम नहीं हैं। युरोपकी प्रजाअें भी अपनी मनोकामना पूरी करनेकी आशामें राज-नीतिक नेताओं, वकीलों, डॉक्टरों और अन्य सैकड़ों प्रकारके निष्णातों

द्वारा वैसी ही ठगी जाती हैं, जैसे हमारे देशकी जनता। जहां शिष्य लोभी, भयभीत या आलसी होंगे, वहां लोभी गुरु अवश्य रहेंगे।

सिद्धान्तकी बात यह है कि जब तक मानवताके विकासके सिवाय दूसरा कोअी भी फल प्राप्त करनेकी अिच्छा हो और अुसके प्रकृतिगत नियमोंका पूर्ण शोधन न हुआ हो, तब तक गुरु या शिष्य दोनोंकी बुद्धिमें दोष होनेकी निरन्तर संभावना रहेगी ही। अिसलिअे अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता है कि मानवताके विकासके सिवाय दूसरा कोअी भी फल प्राप्त करनेकी पद्धतिके विषयमें मानवमात्रकी बुद्धि गलती कर सकती है। अिस बारेमें किसीकी भी बुद्धिके सम्बन्धमें यह विश्वास नहीं दिलाया जा सकता कि वह सदा अचूक बनी रहेगी। जिस हद तक प्रकृतिगत नियमोंका शोधन हुआ होगा, अुस हद तक कुछ क्षेत्रोंमें गलती होनेकी संभावना कम रहेगी; अथवा अमुक देश या कालके लिअे अचूक मार्ग हाथ लग जाना संभव माना जायगा। परन्तु प्रकृति अितनी अनन्त दिखाअी देती है कि अुसके खोजे हुअे भागकी अपेक्षा भविष्यमें खोजा जानेवाला भाग सदा अधिक ही रहेगा।

परन्तु जिसकी दृष्टि केवल अपनी मानवताके विकास पर ही रहती है, जो विश्वमें मानवताकी ही खोज करता फिरता है, जिस बुद्धि और दृष्टिसे मानवता प्राप्त की जा सके अुस बुद्धि और दृष्टिको प्राप्त करनेके लिअे ही जो गुरुके पास जाता है, अुसे गुरु-स्वीकारके लिअे कभी पश्चात्ताप करनेका कोअी कारण नहीं मिलता। गुरु अुसे धोखा नहीं दे सकता या वह गुरुसे धोखा नहीं खा सकता। वह जहां जितनी मानवताका विकास देखता है, वहांसे अुतनी ले सकता है; और जहां वह देखता है कि अुसके परिचित किसी भी मनुष्यकी अपेक्षा अन्य किसी व्यक्तिमें मानवताका अनन्त गुना विकास हुआ है, वहां विश्वकी कौनसी शक्ति है जो अुसे अैसे व्यक्तिका भक्त बननेसे रोक सके? जैसे पानी ढालकी ओर ही दौड़ता है, वैसे अुसका चित्त अैसे मनुष्योत्तमकी भक्ति किये बिना रह ही नहीं सकता। जिसने मानवताके विकासकी अपेक्षा दूसरे किसी फलकी आशासे अुसके चरण पकड़े होंगे, अुसके विषयमें अैसा विश्वास नहीं दिलाया जा सकता। अुसे सोचा

हुआ फल प्राप्त न हो, अथवा फल मिलनेके पहले ही अुसका धैर्य छूट जाय, तो भी संभव है वह अुस नरोत्तमका त्याग कर दे। अिसमें दोष मनुष्यमें रही गुरुभक्तिकी वृत्तिका नहीं, परन्तु मनुष्यताके सिवाय अन्य वस्तुकी लालसाका और अुसके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ तथा धैर्यके अभावका है।

परन्तु हम तो चरखेकी बात परसे गुरुभक्ति पर आ गये। मूल प्रश्न पर आनेसे मालूम होगा कि यदि मनुष्यताका विकास ही मनुष्यकी अमूल्य सम्पत्ति हो, यदि अपरिमित न्यायवृत्ति ही मनुष्यताका अेक आवश्यक अंग हो, तो हम अिस परिणाम पर पहुंचते हैं कि जो मनुष्य अपने आवश्यक भोगोंकी अुत्पत्ति और अुनके लिअे आवश्यक वस्तुओंके निर्माणमें दिनके अमुक घंटोंके नियमित श्रमसे जितना कम समय देता है, अुतना ही वह —— गीताके शब्दोंमें कहें तो —— 'स्तेन अेव सः' (चोर है)। अिस दोषसे वह दो ही तरहसे मुक्त हो सकता है: शारीरिक अुपभोगोंको घटाकर और अिस तरह समयका बचाव करके बचे हुअे समयमें अपनी बौद्धिक अभिलाषाअें पूरी करना; अथवा दूसरेकी अिच्छाके वश होकर, दूसरेकी असहाय दशाको देखकर (अुसके हितके लिअे समय देना ही चाहिये —— न देनेमें भी समाजके प्रति हमारे धर्मका पालन नहीं होता —— अैसा समझकर) शारीरिक श्रमके कर्तव्यसे मुक्त रहना। अुदाहरण: रोगीकी सेवा-शुश्रूषाके लिअे, शिष्यकी जिज्ञासा-तृप्तिके लिअे, देशकी रक्षाके लिअे, अित्यादि। परन्तु अैसी परिस्थितिमें 'यदृच्छालाभसंतुष्ट' ही अुसके जीवनका नियम हो सकता है। वह शारीरिक भोगोंको कमसे कम कर दे और समाज अपनी मरजीसे अुसकी जितनी चिन्ता करे अुससे अधिककी आशा न रखे। अिसकी निशानी यही है कि सेवाके लिअे भी वह दीनवृत्तिसे याचक न बने। हम चाहें या न चाहें, जगत्‌में बुद्धि और शक्तिकी विषमता है: रोग, बचपन, बुढ़ापा वगैरा मनुष्यको परवश बना देनेवाले कारण हैं। अिसलिअे अैसी स्थितिका पैदा न होना संभव नहीं है; परन्तु अैसी स्थितिमें धर्ममार्ग वही हो सकता है, जो अूपर बताया गया है।

अिसलिअे हाथ-बुनाअीके अभावकी देशाग्निके भस्मांशसे तुलना करनेमें कवित्व तो है, परन्तु अिससे देशकी स्थितिकी सच्ची कल्पना होती है अैसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता। काव्यमय कल्पना अनेक प्रकारसे की जा सकती है। कोअी अैसा भी कह सकता है कि खादीका पुनरुद्धार देशाग्नि पर पानी डालनेके लिअे नहीं है, बल्कि अेक अधजले मकानको अधिक जलनेसे बचानेका और जले हुअे भागकी मरम्मत करनेका प्रयत्न है।

मुझमें कवित्वका अभाव होनेके कारण दोनोंमें से कौनसी कल्पना अधिक सुन्दर है, अिसका निर्णय मैं नहीं कर सकता। और चूंकि दोनों केवल कल्पनाअें ही हैं, अिसलिअे अिस प्रश्न पर विवेकपूर्वक विचार करनेके लिअे मैं दोनोंको छोड़ देने जैसी मानता हूं। अिससे देशकी अग्नि बुझेगी या नहीं, अथवा कितनी बुझेगी, यह बात भविष्यके गर्भमें है। अुसकी कल्पना करना व्यर्थ है। चरखा चलानेमें शुद्ध न्याय है, चरखा मानवताके विकासका विरोधी नहीं है, चरखेसे देशकी गरीबी थोड़ी तो कम हो ही सकती है, चरखा चलानेमें संसारके किसी भी व्यक्तिकी हिंसा नहीं होती, सारा संसार चरखा-धर्मको स्वीकार कर ले तो अुससे भी किसीको नुकसान नहीं होगा और वस्त्रोंके बिना शरीरका निर्वाह अब नहीं हो सकता — अितने कारण कताअी-बुनाअीको धर्मकार्य निश्चित करनेके लिअे मुझे पर्याप्त मालूम होते हैं।

अन्तमें :

(१) यह सच है कि अबुद्धिका नाश और स्वबुद्धिका विकास करना हमारे देशकी समस्या है।

(२) यह भी सच है कि अिसका अुपाय 'तालीम' है।

(३) परन्तु यह 'तालीम' पाण्डित्य नहीं है — भाषाज्ञान, साहित्य-संगीत-कलाओंका ज्ञान, दर्शनशास्त्रोंका ज्ञान अथवा वैज्ञानिक विद्याओंका ज्ञान नहीं है; यह सब गौण तालीम है।

(४) गौण तालीम सच्ची तालीमके साथ प्राप्त हो तो वह अुपयोगी सिद्ध हो सकती है, परन्तु सच्ची तालीमके अभावमें वह मनुष्यत्वके विकासके लिअे निकम्मी ही है।

(५) केवल गौण तालीमका अतिस्वाद अेक प्रकारकी विषय-वासना ही है; जिस प्रकार शब्दस्पर्शादिका अुचितसे अधिक अुपभोग अिन्द्रियोंकी स्वच्छन्दता है, अुसी प्रकार गौण तालीमका अतिस्वाद बुद्धिकी स्वच्छन्दता है। अुससे मनुष्यकी अुन्नति नहीं होती।

(६) भय, लालसा और अपुरुषार्थ अबुद्धिकी जड़ हैं।

(७) केवल कर्तृत्व या केवल संतोष प्रगतिकारक या सुखकारक नहीं है। दोनोंका अुचित मिलाप होना चाहिये।

(८) सच्ची तालीमका अर्थ है अिन भयादि जड़ोंका अुच्छेद, या मानवताका विकास, या दैवी संपत्तियोंका अुत्कर्ष।

(९) गौण तालीमके बिना सच्ची तालीम हो सकती है और सच्ची तालीमके बिना गौण तालीम भी ली जा सकती है।

(१०) सच्ची तालीमका कोअी राजमार्ग नहीं है; सत्पुरुषोंके जीवन-चरित्र, अुनका समागम, सेवा, अुनकी अुदात्तता प्राप्त करनेकी अिच्छा और अुसके लिअे विचारमय पुरुषार्थ ही अुसकी पाठ्यपुस्तकें हैं। दूसरी विद्याओंकी तरह सच्ची तालीमकी जिज्ञासाके लिअे भी सत्पुरुषों द्वारा अुस विषयके मिलनेवाले अुपदेशोंके जरिये तथा अुनके चरित्रके जरिये पड़नेवाले संस्कारोंसे सच्ची तालीमकी भूमिका जरूर तैयार हो सकती है।

(११) सच्ची तालीमके फलस्वरूप निर्भयता, निर्लोभता और पुरुषार्थ बढ़ता है और शुद्ध विचार जाग्रत होता है। अुस मार्ग पर चलते हुअे अनेक गौण विद्याओंका भी अनायास विकास होता है। गौण विद्यायें रास्तेमें आनेवाले फल-झाड़ों जैसी हैं। भूख मिटानेके लिअे अुनका अुपयोग किया जाय तो ठीक है; परन्तु मनुष्य अुन्हींमें लुब्ध होकर रुक जाय तो अुसकी यात्रा पूरी नहीं हो सकती — मानवताकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

(१२) सच्ची तालीममें कोओी भी शुद्ध कर्म बाधक नहीं होता।

(१३) शरीरकी सुविधाके साधन अुत्पन्न करने या बनानेमें जो अपना पूरा हिस्सा नहीं देता वह 'स्तेन' है। दो अुपायों द्वारा अिस स्थितिसे बचा जा सकता है: अुपभोग कम करके और बचे हुअे समयमें बौद्धिक अभिलाषाअें तृप्त करके, अथवा दूसरेकी आवश्यकता या प्रार्थनाके वश होकर सेवाभावसे 'यदृच्छालाभसन्तुष्ट' की वृत्ति स्वीकार करके।

(१४) गुरुभक्ति या परबुद्धिकी सहायता लेनेकी वृत्ति अनर्थका कारण नहीं है; भय, लालसा आदि अबुद्धिके मूल ही अनर्थके कारण हैं।

(१५) मानवताके विकासके लिअे तो गुरुभक्ति अुदात्त वृत्ति है और अिसलिअे अुन्नतिकारक है। तथा परबुद्धिकी सहायता स्वबुद्धिकी अुन्नतिके लिअे आवश्यक भोजनका काम करती है। अुसकी मुझे आवश्यकता नहीं, अैसा माननेमें भ्रम, गर्व या कृतघ्नता है।

(१६) मानवताके विकासके सिवाय दूसरे फल प्राप्त करनेके लिअे किसीकी भी बुद्धि अचूक है, अैसा विश्वासके साथ नहीं कहा जा सकता। जिस हद तक प्रकृतिके नियमोंका संशोधन हुआ होगा, अुस हद तक दोष कम होनेकी संभावना रहेगी, अथवा किसी विशेष देश या कालके लिअे निश्चित मार्ग प्राप्त होनेकी संभावना रहेगी। परन्तु प्रकृतिकी अनन्तताके कारण अधिकसे अधिक अितना ही कहा जा सकता है कि अुस विषय तक बुद्धिका निर्दोष होना संभव है।

(१७) गौण तालीममें होनेवाला भौतिक तथा चित्त-प्रकृतिका शोधन सच्ची तालीममें सबसे ज्यादा लाभकारी हो सकता है, परन्तु लाभकारी होगा ही अैसा विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता।*

---

* पहली बार 'युगधर्म' में माघ १९८० में छपे लेखकी संशोधित आवृत्ति।

तालीमकी बुनियादें

दूसरा भाग

१

अितिहास-संबंधी दृष्टि

मनुष्यके व्यक्तिगत विकासमें जीवनके सारे अनुभवोंकी स्मृति ताजी बनी रहनेका जो महत्त्व है, वही महत्त्व प्रजाके विकासमें अितिहासको प्राप्त है। कुछ लोग दूसरोंके अनुभवोंकी जांच करके कुछ बोध ग्रहण करते हैं; कुछ लोग अपने व्यक्तिगत अनुभवसे सबक सीखते हैं और कुछ अैसे होते हैं जो बार-बार अनुभव मिलने पर भी कोअी बोध लेते मालूम नहीं होते।

अिन भेदोंके अनेक कारण हैं। अेक कारण तो यह है कि मनुष्योंके अनुभवोंकी स्मृतिकी जागृति न्यूनाधिक होती है। सावधानी या असावधानीकी स्थितिमें हुआ प्रत्येक अनुभव हम पर कुछ न कुछ संस्कार डालता है। प्रत्येक संस्कार हमारे शरीर, अिन्द्रियों, मन, बुद्धि, गुणों आदिमें कुछ परिवर्तन करता है; क्षणभर पहले हम जैसे थे, अुससे वह हमें कुछ भिन्न बना देता है। जो अनुभव बार-बार होते हैं, अुनका असर हमारी जीवन-रचनाको कुछ खास ढंगसे स्थिर करता है; जो अनुभव क्वचित् ही होते हैं, अुनका असर स्पष्ट न होनेसे अज्ञात रहता है। कोअी अनुभव सावधान रहकर प्राप्त किया हो, तो वैसा अनुभव फिरसे लिया जाय या नहीं और अुसमें कैसा परिवर्तन किया जाय, अिस संबंधमें मनुष्य जान-बूझकर अपना मार्गदर्शन कर सकता है। असावधानीमें प्राप्त किये जानेवाले अनुभव हमारे जीवन पर संस्कार तो डालते हैं, परन्तु अपने जीवनका जान-बूझकर मार्गदर्शन करनेके प्रयत्नमें हम अुनका अधिक अुपयोग नहीं कर सकते। अैसे संस्कारोंका असर प्राकृतिक प्रेरणा (natural instinct) कहा जा सकता है। जो संस्कार असावधानीकी दशामें हम पर पड़ते हैं, अुनमें परिवर्तन करना कठिन होता है; क्योंकि अुन संस्कारोंके बलसे होनेवाली क्रिया बहुत बार हमारे ध्यानमें नहीं आती। और, ध्यानमें आने लगती है, तब भी क्रिया हो जानेके बाद हमारा ध्यान

अुसकी ओर खिंचता है। अैसे संस्कारोंके वश होना आसान होता है; अुन्हें अपने वशमें करना कठिन होता है।

अैसे असावधानीमें प्राप्त हुअे संस्कारोंमें जन्मके और बाल्यावस्थाके संस्कार मुख्य हैं। और अुसके बाद भी जो मनुष्य जितना कम सावधान होगा, अुतना ही अैसे संस्कारोंका जमाव अधिक होगा।

सावधानीकी दशामें प्राप्त हुअे अनुभव विस्मृत-से मालूम हों और लम्बा समय बीत गया हो, तो भी अुनका स्मरण प्रयत्नसे जल्दी ताजा किया जा सकता है। असावधानीकी दशामें प्राप्त किये हुअे संस्कारोंके परिणाम देखे जा सकते हैं, परन्तु वे अनुभव थोड़े ही समय पहलेके हों तो भी अुनकी तफसील याद करना कठिन या लगभग असंभव हो जाता है। दूसरे साक्षीकी सहायतासे अुनकी कुछ तफसील शायद याद की जा सके; परन्तु सारी तफसील याद करना कठिन होता है। असावधानीकी दशामें दो क्षण पहले बोले हुअे शब्द या अुठा हुआ विचार भी हमें याद नहीं रह सकता; जब कि सावधानीकी दशामें दो-ढाअी वर्षकी आयुमें किये हुअे अनुभव भी याद रहते हैं।

अिसमें शक नहीं कि हम जन्मसे ही अपने साथ बहुतसे संस्कार लेकर आते हैं। बालक कोअी कोरा पृष्ठ, मिट्टीका लोंदा या मोमका रस नहीं है कि अुस पर जैसे संस्कार हम डालना चाहें वैसे आसानीसे डाल सकें। अिन संस्कारोंको आनुवंशिक कहा जाय, पूर्वजन्मके कहा जाय अथवा दोनोंके कहा जाय, अिस चर्चामें यहां जानेकी आवश्यकता नहीं। परन्तु आनुवंशिक संस्कार कहें तो अुसका अर्थ होगा हमारे पूर्वजों द्वारा प्राप्त किये हुअे अनुभवोंसे दृढ़ बनी हुअी प्रकृति, पूर्वजन्मके संस्कार कहें तो अुसका अर्थ होगा हमारे पूर्वजन्ममें प्राप्त किये हुअे अनुभवोंसे दृढ़ बनी हुअी प्रकृति और दोनोंके कहें तो अुसका अर्थ होगा दोनोंके मिले-जुले बलसे दृढ़ बनी हुअी प्रकृति। जिन अनुभवोंसे ये संस्कार हमारे पूर्वजों पर या हम पर पड़े, अुन अनुभवोंकी स्मृति आज जाग्रत करना अत्यन्त कठिन है। यदि थोड़ी-बहुत स्मृति जाग्रत की जा सके, तो अनादि भूतकालके किसी अणु जितने विभागकी और जीवनके विविध पहलुओंमें से अेकाध पहलूकी ही की जा सकती है।

परन्तु अैसे अपार अनुभवोंसे अुत्पन्न हुअे संस्कारोंने हमारी प्रकृतिका निर्माण किया है। कौन कह सकता है कि अुस अनादि भूत-कालमें कितने संस्कार दृढ़ हुअे होंगे, कितने संस्कार विरोधी अनुभवोंके फलस्वरूप नष्ट-से हो गये होंगे और कितने विपरीत संस्कार दृढ़ बने होंगे; और अिस प्रकारकी पुनः दृढ़ता और पुनः लोपकी कितनी आवृत्तियां हुअी होंगी? हमारे संस्कारोंमें से कुछ अत्यन्त अर्वाचीन होते हुअे भी बहुत बलवान नहीं मालूम होंगे; कुछ बलवान मालूम होते होंगे, फिर भी हमारी कीटदशाके चिह्न होंगे। कुछ संस्कार अर्वाचीन होनेसे बलवान होंगे, और कुछ प्राचीन होनेके कारण लुप्तप्राय हो चुके होंगे।

विज्ञानशास्त्री कहते हैं कि बालक अपने अिस जीवनके पहले क्षणसे लेकर युवावस्थामें प्रवेश करने तक अपने अत्यन्त प्राचीन पूर्वजोंसे आरंभ करके अपने माता-पिताके जीवन तकका थोड़ेमें दर्शन कराता है; जिन जिन अनुभवोंके कारण पूर्वजोंके जीवनमें जो जो परिवर्तन हुअे, अुन सबकी साक्षी प्रत्येक बालक संक्षेपमें देता है।

हमें भूतकालके अनुभवोंकी — अितिहासकी — तफसीलका स्मरण नहीं होता; परन्तु अुन अनुभवों द्वारा किये गये परिवर्तनोंका हमने अिस जीवनमें भी अनुभव किया है; और हमारी आजकी स्थिति अुन्हीं संस्कारोंका फल है। अितिहासका ज्ञान हमें भले न हो, परन्तु अितिहासका जो परिणाम आया वह हमारा जाना हुआ है। वह परिणाम हमारा आजका जीवन है।

यह सिद्धान्त व्यक्ति और समाज दोनोंको लागू होता है।

अब अेक दूसरी बातका विचार करें। अैसा कहा जाता है कि भिन्न-भिन्न प्रजाओंका अितिहास जाननेसे हम समझदार और बुद्धिमान बन सकते हैं। दूसरी प्रजाओंने जो गलतियां की हों अुनसे हम बच सकते हैं। दूसरी प्रजाओंको किसी विशेष स्थितिमें पहुंचनेके लिअे जिन कठिन अनुभवोंमें से गुजरना पड़ा, अुस स्थितिको हम अुन कठिन प्रसंगोंमें से गुजरे बिना प्राप्त कर सकते हैं। यह विचार सोलहों आने सच हो, अैसा नहीं मालूम होता। कितने मनष्योंके बारेमें

हमारा यह अनुभव है कि वे दूसरोंकी खाओी हुओी ठोकरोंसे बोध लेकर समझदार बने हैं? कितनी प्रजाओंने जानते हुअे भी अुन्हीं दुर्गुणोंका पोषण नहीं किया, जिन दुर्गुणोंके कारण दूसरी प्रजाओंका पतन हुआ? कितनी प्रजाओंने नामशेष बनी हुओी प्रजाओंका अितिहास जानकर राज्य-विस्तारकी महत्त्वाकांक्षाका त्याग किया है? सच पूछा जाय तो प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक प्रजाको विकासके किसी निश्चित क्रमसे गुजरना पड़ता है। जिस प्रकार अमुक भूमिकामें से निकले बिना मनुष्य-योनिका कोओी प्राणी मनुष्य-शरीरकी पूर्णता प्राप्त नहीं करता, अुसी प्रकार अमुक भूमिकामें से पार हुअे बिना कोओी प्रजा प्रजाके रूपमें पूर्णता प्राप्त नहीं करती।

अिसके अलावा, विकासका अेक नियम अैसा भी मालूम होता है कि प्रत्येक जीव अपने नाशके बीज साथ लेकर ही अुत्पन्न होता है। अिसी तरह प्रत्येक प्रजा भी अपने नाशके बीज अपने साथ रखती है। केवल अितिहासके ज्ञानसे नाशके अिन बीजोंको बढ़नेसे रोका जा सकता है या नहीं, अिसमें शंका है। परन्तु जीवकी तरह किसी प्रजाका प्रयत्न भी अिस नाशसे बचनेकी दिशामें हो सकता है।

तब अितिहासके ज्ञानका फल क्या है? और अुस ज्ञानकी प्राप्तिका ध्येय क्या है?

प्रत्येक अनुभव हमारे शरीर पर कोओी क्रिया करके अुसके द्वारा चित्त पर संस्कार डालता है। और प्रत्येक संस्कार हमारे शरीरके किसी न किसी भागमें अपना असर पैदा करता है। प्रत्येक संस्कार अेक ओर कोओी गुण* निर्माण करता है, और दूसरी ओर कोओी शारीरिक परिवर्तन पैदा करता है। जिस तरह बिजलीका दीया तार द्वारा अदृश्य रूपमें बहनेवाली शक्तिको प्रकट करता है, अुसी प्रकार हमारा शरीर, मन, बुद्धि और जीवन हमारे भीतर अदृश्य रूपमें बहनेवाली गुणशक्तिको प्रकट करते हैं। साधारण मनुष्य अतिशय सावधान या

* जैसे दया-क्रूरता, लोभ-अुदारता, क्षमा-दंड, शौर्य-कायरता, हिंसा-अहिंसा आदि।

जाग्रत नहीं होते। अेक ही संस्कार बार-बार डाला जाय, तो अुससे कोअी न कोअी गुण अुनमें निर्माण हुअे बिना नहीं रहता।

लेखक, अुपदेशक, शिक्षक और देशनेता जाने-अनजाने अिस नियमसे परिचित होते हैं। अिसलिअे वे जनतामें जो गुण अुत्पन्न करना चाहते हैं, अुनके अनुकूल संस्कार डालनेका सतत प्रयत्न करते हैं।

प्रत्येक युगमें कम-ज्यादा महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले अनेक पुरुष अिस नियमका अुपयोग करते हैं। परन्तु सदा अिस नियमका सदुपयोग ही होता है, अथवा विवेकयुक्त विचारसे ही अुपयोग होता है, अैसा नहीं कहा जा सकता। किसी समय प्रजाको अपनी स्वार्थसिद्धिका साधन बनानेके लिअे अिस नियमका अुपयोग किया जाता है; किसी समय अपने गुणोंके विषयमें पक्षपात होनेके कारण जनतामें वैसे गुण निर्माण करनेके लिअे अिस नियमका अुपयोग किया जाता है; कभी तात्कालिक परिणाम अुत्पन्न करनेके लोभसे कुछ संस्कार डाले जाते हैं; कभी बिना किसी अिरादेके, कभी जान-बूझकर, कभी मोहसे और कभी विवेक-बुद्धिसे अमुक संस्कार डालनेका कार्य राष्ट्रके विविध वृत्तिवाले लोग विविध प्रकारसे करते हैं। अिस युगमें तो अैसे संस्कार डालने-वालोंकी संख्या और अुनकी संस्कृतियां अगणित हैं; और अैसे अनेक मनुष्योंका असर प्रत्येक मनुष्य पर होता है। अिस कारणसे विविध प्रकारके परस्पर विरोधी संस्कारोंका अेकसाथ पोषण करनेवाले लोग भी देखे जाते हैं। अिस सबमें आश्चर्यकी बात तो यह है कि मेरे भीतरके विरोधी संस्कारोंका विरोध मैं सामान्यतः देख नहीं सकता; और कोअी यह विरोध बतावे तो अुसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे अुनमें सुसंगतता ही मालूम होती है।

अिस प्रकार प्रजाका निर्माण करनेकी अिच्छा रखनेवालोंमें अितिहास-वेत्ता भी अेक है।

प्रजाका निर्माण करनेवाले पुरुषोंके राजनीतिज्ञ और धर्मोपदेशक जैसे दो विभाग किये जायं, तो अितिहास-वेत्ता अधिकांशमें राजनीतिज्ञोंके वर्गका मालूम होगा। दोनों जान-बूझकर जनतामें संस्कार डालनेका कार्य करते हैं। परन्तु राजनीतिज्ञके कार्यमें बहुत बार निश्चित योजना

(scheme) अधिक दिखाओी देती है। बेशक, यह नहीं कहा जा सकता कि वह योजना सद्हेतुपूर्ण ही होती है। अधिकतर अुसके पीछे रागद्वेषात्मक हेतु ही होता है। धर्मोपदेशककी प्रवृत्तिमें न्यूनाधिक तत्त्व-दृष्टि होती है, परन्तु स्वार्थके अभाव अथवा अन्य कारणसे अुसमें कोओी निश्चित योजना नहीं मालूम होती। परन्तु अुसका हेतु विशेष शुद्ध होता है। अिसमें दोनों ओर अपवाद हो सकते हैं, परन्तु बहुधा यही स्थिति होती है।

अुदाहरणके लिअे, हमारे देशके अंग्रेज राजनीतिज्ञोंने अितिहासका अुपयोग अिस ढंगसे किया कि अंग्रेजोंके प्रति हमारे मनमें आदर और देशके लोगोंके प्रति घृणा अुत्पन्न हो। राष्ट्रीय राजनीतिज्ञोंका अितिहासके शिक्षणमें अिससे अुलटा रुख दिखाओी देने लगा है। कहा जाता है कि कुछ वर्ष पहले अमेरिकाकी अितिहास सिखानेकी पद्धतिमें अैसा रुख अख्तियार किया जाता था, जिससे अंग्रेज प्रजाके प्रति अमेरिकनोंके मनमें द्वेष पैदा हो। अब वहांके राजनीतिज्ञोंका रुख बदला है, अिसलिअे अब तककी अितिहासकी पाठ्यपुस्तकें रद्द करके नअी पुस्तकें तैयार की जा रही हैं। जर्मनीमें कुछ वर्ष पूर्व अितिहास अिस तरह चित्रित किया जाता था जिससे बालकोंके मन पर बचपनसे ही यह संस्कार पड़े कि कैसरके बिना जर्मनीकी अपार हानि होगी, और कैसरकी सत्ता टिकाये रखनेमें जर्मन प्रजाका स्वार्थ और धर्म निहित है।

दो पड़ोसियोंके बीच लड़ाओी होती है, तब वे पचीस-पचीस वर्षकी पुरानी बातें याद करके अेक-दूसरेको ताने मारते हैं। दोनों अपने किये हुअे अुपकारोंको और दूसरेकी बताओी हुओी नीचताको ही याद कर सकते हैं; क्रोधके आवेगके कारण सामनेवालेने जो अुपकार किये हों या खुदने अुसके साथ जो अन्याय किये हों वे याद नहीं आते। और याद कराये जायं तो भी अुनका महत्त्व नहीं मालूम होता। दोनोंके झगड़ेको अुग्र रूप देनेमें यह रीति बहुत असरकारक हो सकती है, परन्तु अुनके झगड़ेको सुनकर हम दोनोंके विषयमें कोओी राय बनाने बैठें तो वह गलत ही होगी। द्वेषमें कही हुओी बातें गलत ही होती हैं।

अुसी प्रकार अिस ढंगसे लिखे हुअे और सीखे हुअे अितिहाससे भूतकालमें घटी घटनाओंका सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेकी आशा व्यर्थ सिद्ध होती है। अेक तो राजनीतिज्ञका अर्थ है साधारणत: बाहर दिखाओ दे अुससे दस गुना गहरा मनुष्य। कोअी कार्य करते समय अपने साथियोंके साथ जो हेतु निश्चित किये हों अुनसे सर्वथा भिन्न हेतु वह प्रकट करता है; यह भी संभव है कि अपने साथियों पर रहे विश्वास या अविश्वासकी मात्राके अनुसार अुनके साथ जो चर्चा हुअी हो अुससे कितना ही अधिक और भिन्न अुसके मनमें भरा हो। अैसे दो पक्षोंके राजनीतिज्ञ परस्पर जिस तरह व्यवहार करते हैं, अुसमें वस्तुस्थितिका पता जब अुस समयके लोगोंको --- अत्यन्त निकटके लोगोंको भी --- बहुत बार नहीं होता, तो लम्बे समयके बाद अितिहास-संशोधनका कार्य करनेवालोंके अनुमान अुन घटनाओं पर सच्चा प्रकाश डालनेवाले हों यह कितना कठिन है! यह सच है कि कभी-कभी लम्बे समयके बाद भी अकल्पित रूपमें सत्य प्रकट हो जाता है, परन्तु प्रत्येक घटनाके बारेमें अैसा होता होगा, अिसमें शंका है। और यदि होता भी हो तो कितने लम्बे समय तक प्रजाके कितने बड़े भागको भ्रममें रहना पड़ता है! अितिहासके पात्रोंकी राजनीतिक गूढ़ताके कारण पैदा होनेवाली यह अेक कठिनाअी हुअी।

फिर अितिहास-लेखक भी राजनीतिज्ञ ही होते हैं, अिसलिअे अितिहासमें वे लोग अनेक तरहसे असत्यका मिश्रण कर देते हैं। अुदाहरणके लिअे, (१) बिलकुल झूठी बातें गढ़कर; (२) सच्ची बातोंको दबा कर; (३) अपने अुद्देश्यके अनुकूल सच्ची बातों पर मुलम्मा चढ़ाकर अुन्हें अधिक आकर्षक बना कर; (४) अपने प्रतिकूल सच्ची घटनाओंको गौण बता कर; (५) अलग अलग सच्ची घटनाओंके बीच झूठा सम्बन्ध कायम करके; (६) काफी सत्यमें थोड़ा --- परन्तु अपने अुद्देश्यकी सिद्धिके लिअे अत्यन्त महत्त्वका --- असत्य मिलाकर।

वकील अच्छी तरह जानते हैं कि बिलकुल सच्चे साक्षीको अुसके पक्षसे तोड़ना लगभग असंभव होता है। बिलकुल झूठेको पकड़ना कठिन नहीं होता, परन्तु काफी सचाअीमें अपने पक्षको लाभ हो अैसा

थोड़ा असत्य बोलनेवाले साक्षीको तोड़ना बड़ा कठिन कार्य है। अेक मनोरंजक अुदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जायगी। अेक गांवमें प्लेग फैलता है, अुस गांवकी अेक धनाढ्य स्त्रीके दो पुत्र प्लेगके शिकार हो जाते हैं। और दोनों दो-तीन दिनके अन्तर पर मर जाते हैं। बड़ा पुत्र विवाहित होनेके कारण अपने पीछे अेक विधवाको छोड़ जाता है। अनेक वर्ष बाद सास-बहूमें झगड़ा खड़ा होता है। मुद्दा यह है कि बड़ा लड़का पहले मर गया हो तो छोटे लड़केकी वारिसके नाते मां सारी सम्पत्तिकी स्वामिनी बनती है और छोटा लड़का पहले मर गया हो तो बहू सारी सम्पत्तिकी स्वामिनी बनती है। अिसलिअे सासका पक्ष कहता है कि बड़ा लड़का पहले मरा और बहू कहती है कि छोटा लड़का पहले मरा। जन्म-मरणके रेकार्डमें गड़बड़ी हो जानेसे अुसकी साक्षी बेकार-सी हो जाती है। और अधिकतर सगे-सम्बन्धियों तथा गांववालोंकी साक्षी पर आधार रखना पड़ता है। सम्बन्धी सास या बहूके प्रति अपनी सहानुभूतिके अनुसार अेक या दूसरे पक्षमें शरीक होते हैं। अब दोनों पक्षके साक्षी जो हकीकतें पेश करते हैं वे अधिकतर सच्ची होती हैं; केवल सासके साक्षी जो घटना रविवारको घटी बताते हैं अथवा जिस जगह बड़े लड़केका नाम बोलते हैं, वह घटना बहूके साक्षी बुधवारको घटी बताते हैं अथवा अुस जगह छोटे लड़केका नाम बोलते हैं। अैसे मामलोंमें झूठको खोजना बड़ा कठिन होता है। मूल घटनाके वर्णन परसे सत्यासत्य खोजनेके बजाय कहनेवालेकी प्रतिष्ठा, चारित्र्य, अेक पक्षके साथ निकटका सम्बन्ध और दूसरे पक्षके साथ वैर, परोक्ष बातें पेश करनेमें प्रकट हुअी असम्बद्धता आदि परसे ही निर्णय करना आवश्यक हो जाता है।

अितिहास लिखनेमें अैसी चालाकी बहुत बार की जाती है।

अिन सब कारणोंसे जो मनुष्य संकुचित राष्ट्रीयता या किसी विशेष राष्ट्र या पक्षके प्रति राग अथवा द्वेष निर्माण करानेके हेतुसे परे होना चाहता है, और जिस तरह अपना विकास करनेके लिअे अपने पिछले जीवनका अवलोकन करता है अुसी तरह राष्ट्रके विकासके लिअे राष्ट्रके पिछले जीवनका अवलोकन करनेके हेतुसे

अितिहासका अध्ययन-अध्यापन करता है, अुसे अितिहासके विषयमें कैसी वृत्ति रखना चाहिये अिस संबंधमें मैं नीचेके परिणामों पर आया हूं :

१. अितिहास-वेत्ताको अपनी प्रजाकी आधुनिक स्थिति, अुसमें पाये जानेवाले सद्गुणों या दुर्गुणों, अुसमें न पाये जानेवाले गुणों, अुसके बुद्धिशाली और अबुद्धिशाली वर्गके रहन-सहन, वासनाओं, अभिलाषाओं आदिकी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये। थोड़ेमें कहें तो अुसे अपनी प्रजाके आजके संस्कारोंका अच्छा ज्ञान होना चाहिये। जीवनके किसी वर्तमान क्षणमें कालका केवल अेक काल्पनिक अंश ही नहीं रहता, बल्कि प्रत्येक वर्तमान क्षणमें अनादि भूतकालका संग्रह सार-रूपमें रहता है।

२. अितिहासका अर्थ केवल प्रजाका राजनीतिक अितिहास नहीं, बल्कि अुसके समग्र जीवनका अितिहास है; अथवा नीतिशास्त्रकी परिभाषामें कहूं तो प्रजाके गुणोंके अुदय और अस्तका अितिहास। प्रजाके जीवनमें जो जो घटनायें घटीं, अुनसे अुसके जीवनमें किन गुणोंका अुदय हुआ, किन गुणोंकी वृद्धि हुअी और किन गुणोंका अस्त हुआ अिसका अध्ययन। प्रजाकी अमुक विजय या पराजय, अमुक कालकी समृद्धि या दरिद्रता किन आकस्मिक तथा बाह्य कारणोंसे हुअी, अितना ही नहीं बल्कि किस गुणके विकास या न्यूनता —— अथवा किस दोषकी वृद्धिके कारण हुअी अिसका अध्ययन।

अिस संबंधमें नामशेष हो चुकी प्रजाओंके अितिहासका अध्ययन अनेक तरहसे अुपयोगी होता है। अुन प्रजाओंका अितिहास लिखनेमें लेखकको राजनीतिज्ञकी दृष्टि रखनेका कोअी कारण न होनेसे संभव है वह अधिक तटस्थ दृष्टिसे लिखा जाय। अिसलिअे अुसके अध्ययनसे अुस प्रजाके गुणों और स्वभावके विकासक्रम और परिणामका अच्छी तरह अवलोकन किया जा सकता है। अैसी अनेक प्रजाओंके अितिहाससे यह खोज की जा सकती है कि मानव-जातिके गुणों और स्वभावके अुदय, अुत्कर्ष, रूपान्तर तथा अस्तके कोअी सामान्य नियम हैं या नहीं और यह भी खोजा जा सकता है कि वर्तमान प्रजाओंमें से प्रत्येक प्रजा अथवा अुसके किसी भागकी विकास-भूमिका प्राचीन प्रजाके किस कालकी स्थितिसे मिलती-जुलती है।

३. हिन्दुस्तानका अितिहास सिखानेमें अभी तककी पद्धति मुसलमान कालसे आरंभ करनेकी थी; परन्तु अब अैसा मत बनता जा रहा है कि अुसका शिक्षण प्राचीन कालसे आरंभ करना चाहिये। अूपरके विचारोंके अनुसार मैं अिस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अितिहासकी ब्यौरेवार शिक्षा वर्तमानकालसे प्राचीन कालकी ओर जानेवाली होनी चाहिये। ब्यौरेवार शिक्षा आरंभ करनेसे पहले प्राचीनसे लेकर आज तकके संपूर्ण अितिहास पर अेक शीघ्र या सरसरी दृष्टि अवश्य डालनी होगी। जिस छोटेसे बीजसे हमारे अितिहासका आरंभ हुआ मालूम पड़े, वहांसे लेकर आज तककी थोड़ी-बहुत कल्पना आ सके अैसा अवलोकन कराना आवश्यक है; परन्तु अुसका ब्यौरेवार अध्ययन वर्तमानसे धीरे-धीरे प्राचीन युगकी ओर जाना चाहिये। जिस तरह हम नदीके अुद्‌गमकी ओर धीरे धीरे जाते हैं, अुसी तरह किसी प्रजाके भूतकालकी ओर जाना पूरी तरह संभव नहीं है। अिसलिअे वर्तमान युगका अध्ययन भी २५, ५० या १०० वर्ष पहलेकी घटनाओंसे आरंभ करना पड़े और वहांसे आज तकके अितिहास पर आना पड़े तो अिसे मैं समझ सकता हूं। अैसा प्रारंभ कहांसे किया जाय, अिसका निर्णय अितिहास-लेखक आसानीसे कर सकते हैं; परन्तु मुझे लगता है कि बहुत दूरके भूतकालसे अुसका आरंभ नहीं होना चाहिये। जिस घटनासे हमारी प्रजाकी आजकी स्थितिकी ओर आनेके लिअे पहली प्रेरणा मिली, अुस घटनासे ब्यौरेवार अध्ययन आरंभ करना चाहिये। अुदाहरणके लिअे, हिन्दुस्तानका अितिहास युरोपियन कंपनियोंके अथवा १९५७के विद्रोहके समयसे आरंभ करना चाहिये।

अिसका कारण मैं फिरसे समझाता हूं।

जैसा कि मैंने अूपर बताया, हमारे आजके जीवनमें हमारा संपूर्ण भूतकाल सार-रूपमें समाया हुआ है और अितिहास-वेत्ताको हमारी वर्तमान स्थितिका यथासंभव निश्चित और स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये। हमारी आजकी स्थिति, संस्कारों, विशेषताओं और दोषोंमें से कुछ लगभग सृष्टिके आरंभ जितने पुराने होंगे, हमारे वर्तमानका निर्माण करनेमें अुनका काफी हाथ रहा होगा। परन्तु अिस प्रकार समान

रूपसे टिका हुआ संस्कारोंका भाग, बहुत संभव है, सारी मानव-जातिमें अेकसा ही हो। केवल हमारी प्रजामें भी — स्मृतिके रूपमें नहीं परन्तु जीते-जागते रूपमें पाये जानेवाले — अत्यन्त प्राचीन कालसे चले आये संस्कारोंकी संख्या थोड़ी ही होगी। समग्र अितिहासके सिंहावलोकनमें अिसका निरूपण करना चाहिये। परन्तु वर्तमान विकसित जीवनमें हमारी प्रजा जिन जिन गुणों और स्वभावका दर्शन कराती है, वे कुछ हद तक अर्वाचीन बलोंके फलस्वरूप पैदा हुअे हैं। हमारे वर्तमान युगके अितिहासके अमुक रूपमें घटनेमें युगके आदिकालकी हमारी स्थिति और गुण-स्वभाव कारणभूत हैं, परन्तु वर्तमान समयकी स्थिति और गुण-स्वभावका निर्माण करनेमें वर्तमान युगका अितिहास कारणभूत है। अिसलिअे वर्तमान युगके आरंभके समाज-जीवनकी समग्र स्थितिके विवेचनसे शुरू करके वर्तमान युगके अितिहासकी जांच करते हुअे आजकी स्थितिके अवलोकनमें अुसका अन्त होना चाहिये। और अितिहासकी आलोचनासे अुत्पन्न होनेवाले अनुमानों तथा वर्तमान स्थितिके प्रत्यक्ष अवलोकनका ठीक मेल बैठना चाहिये। अिसे मैं अितिहासके अध्ययनका महत्त्वपूर्ण प्रयोजन समझता हूं। कुशल डॉक्टर रोगीके शरीर पर प्रत्यक्ष दिखाअी देनेवाले आजके चिह्नोंका बारीकीसे अध्ययन करता है, फिर भी अुस रोगसे सम्बन्ध रखनेवाला रोगीके जीवनका सारा अितिहास बारीकीसे जान लेता है। अिसका कारण यह नहीं है कि डॉक्टरको रोगीका जीवन-चरित्र जाननेमें कोअी दिलचस्पी है, बल्कि यह है कि रोगकी आजकी स्थिति तथा अुसका कारण समझने और अुसका अुपचार खोजनेके लिअे पूर्व अितिहास जानना बहुत आवश्यक है। अिसी प्रकार प्राचीन कालमें गुरु अपने विद्यार्थियोंके कुल, गोत्र, कुलाचार आदिकी बारीक जांच करते थे। अुसका अुद्देश्य विद्यार्थीके जीवन-चरित्र और वंशावलीका लेखा रखना नहीं होता था; गुरु अिसलिअे अिस अितिहासकी छानबीन करते थे कि अुससे विद्यार्थीके आजके संस्कार जाननेमें तथा अुसके विशेष संस्कारोंके अनुसार अुसकी तालीमका प्रकार निश्चित करनेमें सहायता मिलती थी। अिसी प्रकार कोअी मनुष्य अपनी आजकी अिच्छाओं, भावनाओं, विकारों

आदिको अच्छी तरह समझना चाहे तो अुसे अपने पूर्व जीवनका अवलोकन करना चाहिये। यही न्याय किसी प्रजाके अितिहासके अध्ययनमें भी लागू करना चाहिये।

४. अिसके सिवाय, अेक दूसरी बात भी याद रखनी चाहिये। हिन्दुस्तानके जैसी विशाल प्रजाके सारे भाग गुणों और स्वभावके विकासमें अेक ही भूमिकामें नहीं हो सकते। कोअी दो मनुष्य भी समान भूमिका पर नहीं होते; परन्तु अनेक मनुष्योंमें जो स्थूल समानता होती है, अुसके भी हिन्दुस्तानकी प्रजाके अनेक वर्गोंमें अनेक भेद हो सकते हैं। अेक तो हमारी वर्णाश्रम-व्यवस्था ही प्रजामें विशिष्टताके गुण निर्माण करनेवाली है। फिर स्थानिक भेद, हिन्दू धर्मका विशाल स्वरूप, दूसरे अत्यन्त भिन्न धर्मोंके संस्कारोंवाली प्रजाओंके साथ सम्बन्ध— अिन सबके कारण हमारी प्रजाके विभिन्न वर्गोंकी भूमिकायें विविध हो सकती हैं।
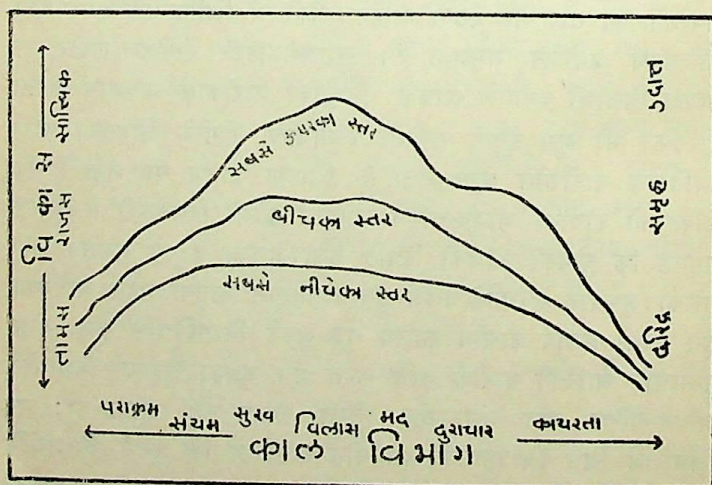
मान लीजिये कि हम रोमन जैसी अेक प्रजाके गुणोंके अितिहासका अुपर्युक्त ढंगसे आलेख (ग्राफ) तैयार करते हैं; जिस जिस गुणक्रममें से

वह प्रजा गुजरी, अुसका छोटे छोटे ब्यौरेवाला नकशा चित्रित करें और हमारी प्रजाके विविध वर्ग जिन गुणोंका अैसा अुदय या अस्त बता रहे हों अुनका नाम अुन गुणोंके स्थान पर रखें, तो अुस नकशे परसे हमें अिस बातकी स्थूल कल्पना आ सकती है कि हमारी प्रजाके भविष्यका विकास-क्रम कैसा मार्ग लेगा। मैं जानता हूं कि यह काम अितना आसान नहीं कि आलेख द्वारा बताया जा सके। परन्तु मैं आशा करता हूं कि अिससे अितिहासके अध्ययनकी मेरी दृष्टि स्पष्ट होगी।

अिसी सम्बन्धमें अेक बात यह भी याद रखनी चाहिये कि बाह्य परिस्थितियोंके समान होने पर प्रजाके सारे भाग अुनसे अेक ही प्रकारके संस्कार प्राप्त करते हैं, अैसा कोअी अेकान्तिक नियम नहीं है। जिस तरह अेक ही प्रकारके खादसे गन्ना मीठा रस निर्माण करने लगता है और नीम कड़वा रस निर्माण करता है, अथवा जैसे अेक ही सुन्दर चित्रोंवाली पुस्तकका अुपयोग अेक वर्षके, सात वर्षके या दस वर्षके बालक अलग अलग ढंगसे करते हैं, वैसे ही प्रजाके अलग अलग भाग अेक ही प्रकारकी बाह्य परिस्थितियोंमें से अलग अलग गुणोंका विकास करते हैं। कुछ संस्कार (विशेषतः स्थूल संस्कार) सब पर समान रूपसे पड़ते हैं। प्रत्येक प्रजाके आजके और भावी जीवनके मार्गका अन्दाज निकालनेमें यह तफसील ध्यानमें रखने जैसी मानी जायगी।

५. किसी भी प्रजाका अितिहास जांचने पर यह पता चलेगा कि अुसमें कुछ गुण पहले मालूम नहीं होते, अमुक समय बाद दिखाअी देते हैं और कुछ समय रह कर लुप्त हो जाते हैं। हमारे व्यक्तिगत जीवन पर भी यही बात लागू होती है। अैसे गुणोंका अवलोकन महत्त्वकी वस्तु है। बहुत बार ये क्रान्ति या परिवर्तन प्राप्त करनेवाले गुण गुण-विकासका क्रम निश्चित करनेमें बड़ा महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। विकास-शास्त्रका अवलोकन सही हो, तो अुसके निर्धारित नियमोंके आधार पर अेक अपेक्षा रखी जा सकती है। कोअी प्रजा अलग अलग समय पर जिन जिन गुणों और स्वभावोंका दर्शन कराकर नष्ट हो जाती है,

अुन गुणों और स्वभावोंमें से संभव है कुछ अुसमें आकस्मिक कारणोंसे ही दिखाअी दिये हों और कुछ मानव-जातिके जीवनका विकास-क्रम सूचित करनेवाले रहे हों। दूसरे प्रकारके गुण-स्वभाव अुस प्रजाके प्रत्येक व्यक्तिके जीवनमें कभी न कभी दिखाअी दिये बिना नहीं रहते। अिन गुणों और स्वभावोंका थोड़े समयके लिअे भी दर्शन कराये बिना वे व्यक्ति अुसके बादके गुण-स्वभावोंका दर्शन नहीं कराते। किसी प्रजाके अितिहासकी जांच करनेमें अिस नियमका काफी अुपयोग किया जा सकता है। जिस प्रजाके अथवा अुसके जिस वर्गके अितिहासकी जांच करनी हो, अुसके कुछ सामान्य (average) व्यक्तियोंके जीवनका सूक्ष्म अवलोकन किया जाय, तो वे जिन गुण-स्वभावोंमें से गुजरे हों तथा अन्तमें जिस स्थान पर आकर रुके हों, अुस परसे अुनकी संपूर्ण जातिके पिछले अितिहासकी सूचना मिल सकती है। और अुस जातिमें यदि कोअी असाधारण पुरुष हो गये हों तो वे सामान्य व्यक्तियोंकी तुलनामें किस मार्ग पर आगे बढ़ गये, अिसका निरीक्षण भी शायद अुपयोगी होगा। अिसलिअे हमारे सामान्य व्यक्तियोंके संपूर्ण जीवनका अवलोकन हमारे प्राचीन और मध्यकालीन अितिहासकी शोधमें अुपयोगी हो सकता है; और अिसके विपरीत हमारा प्राचीन और मध्यकालीन अितिहास हमारी प्रजाके अलग अलग वर्गोंके आजके जीवनको समझनेमें अुपयोगी हो सकता है। जीवनको अेक अूंचा या अूपर-नीचे चढ़ने अुतरनेवाला जीना मान लें, तो प्रजाका कौनसा भाग किस सीढ़ी पर आज है अथवा भूतकालमें था, अुसका दर्शन अिस तरह हम कर सकते हैं।

२

विकास-विचारकी दृष्टिसे विज्ञानकी शिक्षा

पिछले लेखोंसे पाठकोंको लगेगा कि सारी भौतिक विद्याओंमें विज्ञानके लिअे मेरा सबसे अधिक पक्षपात है। और यह बात गलत नहीं है। मुझे लगता है कि सत्यकी शोधके लिअे वैज्ञानिक आदतें अनिवार्य हैं।

फिर भी, विज्ञानशास्त्रोंने संसारमें जो महा अनर्थ किया है, अुससे मैं अपरिचित नहीं हूं। आज विज्ञानकी सहायतासे गरीब प्रजाओंका नाश, मूक प्राणियोंकी हत्या, खूंरेजी, अन्याय-अत्याचार और लूट-खसोट रातदिन चल रहे हैं। आज विज्ञानी अज्ञानीको सताने और पीड़ा पहुंचानेमें ही विज्ञानका अुपयोग करता है और मानता है कि यह जगत्का सनातन कालसे चला आया नियम है। वह चारों तरफ देखता है कि बड़ा प्राणी छोटे प्राणीको मार कर जीता है, और अुसीको जगत्की रूढ़ि मानता है। परन्तु वह यह नहीं समझता कि अिस प्रकार वह कम विकास पाअी हुअी सृष्टिको अपना आदर्श बनाता है। मनुष्यका विकास पशुमें से हुआ है, यह देखकर वह पशुके नियमोंके अनुसार ही व्यवहार करना चाहता है। परन्तु यह बात वह नहीं समझ पाता कि वह स्वयं पशुसे आगे बढ़ा हुआ है, अिसलिअे पशु-स्वभाव अुसके जीवनका आदर्श नहीं हो सकता।

अिसीलिअे मैं कहता हूं कि शरीर, अिन्द्रियों, बुद्धि आदिकी किसी भी प्रकारकी विशेषताके कारण मनुष्यकी पशुता मिटती नहीं; केवल सद्‌गुणोंका विकास ही मनुष्यकी मनुष्यताका सच्चा लक्षण है। अिसके बिना जगत्की सारी विभूतियां जगत्के लिअे शापरूप बन सकती हैं।

परन्तु अिस लेखमें मैं दूसरी ही दृष्टिसे अिस वस्तुका विचार करना चाहता हूं। मेरे देखनेमें यह आया है कि हमारे देशमें —

गुजरातमें विशेष रूपसे —— विज्ञानका शिक्षण हजम नहीं हुआ है। अेम० अेस-सी०, या बी० अेस-सी० तक विज्ञानका शिक्षण लिये हुअे अैसे अनेक ग्रेज्युअेट मैंने देखे हैं, जिन्होंने विज्ञानका व्यावहारिक जीवनमें क्या अुपयोग किया जाय यह न सूझनेसे विज्ञानका सर्वथा त्याग कर दिया है और जो वकालतमें, व्यापारमें या सरकारी नौकरीमें लग गये हैं। मैं स्वयं भी अुसी वर्गका हूं। विज्ञानकी ही सहायतासे जीवन-निर्वाह कैसे किया जाय अितना भी जब अुन्हें नहीं सूझ सका, तो विज्ञानशास्त्रमें नअी खोज करनेकी आशा तो अुनसे रखी ही कैसे जाय? कुछ लोगोंको मैंने विज्ञानकी किसी शाखामें लीन होकर जीवन-निर्वाह करते देखा है, परन्तु अुनका विज्ञान अुनकी प्रयोगशाला तक ही सीमित रहता है; अुनके घर जायं तो आपको अैसा कुछ नहीं दिखाअी देगा जिससे अुनके और अुनके पड़ोसियोंके घरमें आपको कोअी फर्क मालूम हो।

आप किसी संगीत-शास्त्रीके घर जायेंगे तो वहां आपको संगीतका वातावरण मालूम होगा, चित्रकारके यहां चित्रविद्याका वातावरण दिखाअी देगा, पंडितके यहां पांडित्यका वातावरण दिखाअी देगा। किन्तु हमारे देशमें वैज्ञानिकके यहां विज्ञानका वातावरण नहीं मालूम पड़ेगा। मेरे कहनेका यह अर्थ नहीं कि अुसके घरमें कांचकी नलियां, थरमामीटर, बैरोमीटर, गाल्वानोमीटर आदि वस्तुअें होनी चाहिये। परन्तु अपनी गृह-व्यवस्थामें विज्ञानके नियमोंका अमल करनेके अिरादेसे अुसने कोअी परिवर्तन किया हो अैसा नहीं दिखाअी देगा। अैसा लगेगा कि अुसकी प्रयोगशालाकी व्यवस्था और गृह-व्यवस्था दोनों कोअी निराली ही दुनियायें हैं। शायद बम्बअी जैसे शहरमें आप वैज्ञानिक सिद्धान्तसे युरोपमें बनी हुअी किसी नअी वस्तुका अुपयोग देखेंगे, परन्तु वह वस्तु तो विज्ञानका विषय न जाननेवालेके घर भी आपको देखनेको मिलेगी। परन्तु वैज्ञानिकने स्वयं अपने चूल्हे या सिगड़ीकी बनावटमें, कपड़े धोनेकी पद्धतिमें, कपड़ों पर लगे हुअे दाग मिटानेकी रीतिमें या कूड़े-कचरेका नाश करनेके तरीकेमें कोअी परिवर्तन किया हो अैसा नहीं मालूम होगा।

अिसके कुछ अपवाद हो सकते हैं। अपवादरूप व्यक्तियोंके बारेमें मुझे कुछ नहीं कहना है; अुसी तरह सर जगदीशचन्द्र बोस या प्रो० गज्जर जैसे अत्यन्त विरले व्यक्तियोंके बारेमें भी कुछ नहीं कहना है।

विकास-विचारकी दृष्टिसे देखते हुअे विज्ञानका अिस प्रकार केवल बोलने, सिखाने या परीक्षा देनेका विषय बन जाना आश्चर्यकारक नहीं लगता। विज्ञानकी —— अवलोकन, तुलना, प्रयोग और नियमोंका जीवनमें अमल करनेकी —— आदतें हमें नहीं पड़ी हैं; ये गुण हमारा स्वभाव नहीं बने हैं। विज्ञानसे संबंध रखनेवाले अनेक सूक्ष्म नियम हम जानते होंगे, परन्तु अधिकतर प्रोफेसरों और लेखकोंके शब्द-प्रमाण पर ही। हमारा अपना अवलोकन, मानो हमने ही खोजा हो अिस तरह किसी नियमका ज्ञान, हम नहीं करते। स्वयंप्रेरणासे कोअी नया प्रयोग करके हम अेक भी नियम नहीं अपनाते।

हमें अैसी आदतें नहीं पड़ीं, अिसमें अस्वाभाविक कुछ नहीं है। विज्ञानका अिस प्रकारका विकास हमारे देशमें बिलकुल नया ही कहा जायगा। ये संस्कार हमें अुत्तराधिकारमें प्राप्त नहीं हुअे हैं, बल्कि हम अुन्हें नये रूपमें प्राप्त कर रहे हैं। अिसलिअे अुन्हें जीवनमें अुतारनेमें लम्बा समय लगेगा।

परन्तु मुझे लगता है कि अिसी कारणसे यह विषय सीखनेकी हमारी पद्धति भिन्न प्रकारकी होनी चाहिये। जैसे अलंकारशास्त्रका ज्ञान होनेसे कविताकी कद्र करना शायद आ जाय परन्तु कवि नहीं बना जा सकता, अथवा दर्शनशास्त्रके ग्रन्थ पढ़नेसे आध्यात्मिक चर्चा करना आ सकता है परन्तु दर्शनशास्त्री नहीं बना जा सकता, वैसे ही विज्ञानकी किसी शाखा पर लिखी हुअी युरोपकी अच्छी अच्छी पुस्तकें मंगाकर प्रयोगशालाकी मददसे अुसके सिद्धान्तोंका ज्ञान कर लेनेसे वैज्ञानिक नहीं बना जा सकता।

अतः हमें अपने विज्ञानको दृढ़ बनानेके लिअे अिस प्रकार विज्ञानका आरंभ करना चाहिये, मानो युरोपकी पुस्तकें हमें मिल ही नहीं सकतीं। विज्ञानकी भिन्न-भिन्न विद्याओंकी युरोपमें पहले-पहल

नींव डालनेवालोंने जिस तरह प्रयोग, अवलोकन आदि किये और जिन साधनोंका अुपयोग किया, वही भूमिका विज्ञानके क्षेत्रमें आज हमारी है, अैसा समझकर अुस स्थानसे हमें अपने विज्ञानको आगे बढ़ाना चाहिये।

यह सच है कि आज जितने थोड़े समयमें वैज्ञानिक नियमोंकी जानकारी हमें प्राप्त होती है, अुतने थोड़े समयमें अैसा करनेसे वह हमें प्राप्त नहीं हो सकती। परन्तु जितने दशक या शताब्दियां अिसमें युरोपकी गअीं, अुतनी हमारी भी जायंगी ही अैसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अुन नियमोंसे सर्वथा दूर तो हम रह ही नहीं सकते। भाप, बिजली आदिके अुपयोगसे चलनेवाले सार्वजनिक साधन तो कहीं चले नहीं जायंगे। अिन साधनोंके पीछे रहे वैज्ञानिक नियम आज हम पुस्तकों द्वारा जानते हैं, अुसके बदले यदि हम अुन्हें अवलोकनसे खोजें तो जो ज्ञान प्राप्त होगा वह हमारा ही होगा। और कभी अितनी शताब्दियां लगीं भी तो क्या हुआ? अिससे विज्ञानके नियम हमारा स्वभाव बन जायेंगे।

परन्तु मेरा जोर अिस बात पर है कि विज्ञानका सदुपयोग सत्यके ज्ञानके लिअे ही होना चाहिये। कोअी भी विचारक जगत्‌को कुछ अंशमें भी समझे बिना जगत्‌के आदि तत्त्व तक नहीं जा सकता। विज्ञानका व्यावहारिक अुपयोग अपने अुच्च गुणोंके विकासके लिअे अथवा दूसरोंके दुःख दूर करनेके लिअे जितना किया जा सके अुतना अनायास होगा ही। परन्तु यदि अपने जीवनमें अैश-आराम पानेके लिअे अुसका अुपयोग किया जाय, तो वह आध्यात्मिक दृष्टिसे हुआ नहीं माना जायगा।

जिसमें दूसरोंको पीड़ा पहुंचानेकी अपार शक्ति है, अैसी भयंकर वस्तुकी महिमा मेरे जैसा गुण-विकास पर जोर देनेवाला मनुष्य गाये, यह पाठकोंको आश्चर्यजनक लगेगा। परन्तु मुझे लगता है कि विज्ञानमें अबुद्धिको, भ्रमोंको और अन्धविश्वासोंको मिटानेकी जो शक्ति है, अुसका निरादर करनेसे काम नहीं चलेगा। दुनियाकी अैसी कौनसी शक्ति है, जिसका गुणहीन मनुष्यने दुरुपयोग नहीं किया? स्वयं

अध्यात्म विद्याका भी — जिसे सारी विद्याओंकी शिरोमणि कहा गया है — मनुष्यने अनाचारके पोषणके लिअे अुपयोग किया है। योगमें भी पाखंड चलाया जा सकता है। भक्तिके नाम पर भी पाखंड चल सकता है। अुसी तरह विज्ञानसे भी जगत्‌को पीड़ा पहुंचाअी जा सकती है। परन्तु चित्त-विकासके पश्चात् सत्यकी अुपासनाके लिअे दूसरा साधन भौतिक और चित्त-प्रकृतिकी शोध है, अतः विज्ञानका त्याग नहीं किया जा सकता।

३

विज्ञानके बारेमें चेतावनी

विज्ञानके विकासके पक्षमें मैंने अितना अधिक कहा है कि अिस विषयमें अेक खास चेतावनी देना भी आवश्यक है।

जाने-अनजाने पाश्चात्य विज्ञानने आज तक अैसा रुख अपनाया है, जो चार्वाकके मतके अनुकूल कहा जा सकता है। अर्थात्, चैतन्य जड़का विकार है, अैसी मान्यताकी ओर पाश्चात्य भौतिकशास्त्रियों और मानसशास्त्रियोंका झुकाव दिखाअी दिये बिना नहीं रहता। पाश्चात्य वैज्ञानिकके मनकी गहराअीमें अपने स्वरूपके बारेमें अैसा खयाल बना हुआ मालूम होगा कि मैं अेक प्रकारका अत्यन्त जटिल रासायनिक द्रव्य हूं, और विविध नैसर्गिक बलोंके कारण सरल तत्त्वोंमें अुत्पन्न हुअी क्रियाओंसे मेरा निर्माण हुआ है। करोड़ों पीढ़ियों पूर्व यह रासायनिक द्रव्य आजकी अपेक्षा अतिशय सादे रूपमें निर्माण हुआ, बादमें क्रमशः अिसकी जटिलता बढ़ती गयी और अुसके फलस्वरूप मैं आजका बीसवीं सदीका अत्यन्त अटपटे स्वरूपवाला और अुसी लिअे अत्यन्त सुधरा हुआ प्राणी बना हूं। और अिसी प्रकार मेरे वंशजोंमें सुधार होते होते किसी दूरके कालमें अिसकी पराकाष्ठा आयेगी।

और, अिसी कारणसे अुसके हृदयकी अैसी मान्यता मालूम होती है कि परिस्थिति और संयोगोंने मुझे जैसा बनाया वैसा मैं बना हूं।

परिस्थितियों और संयोगों (environments) के अनुकूल होनेकी ही प्रेरणा मेरे भीतर है। मुझमें अुत्पन्न होनेवाली प्रेरणाओंको अिच्छा कहो, क्रिया कहो या ज्ञान कहो वे सब मेरे आसपासकी परिस्थितियों और संयोगोंसे ही निश्चित होती हैं। अैसा लगता है कि अिस प्रकारकी कुछ प्रेरणाओंको —— अुदाहरणके लिअे, आत्मरक्षा, वंशवृद्धि आदिकी प्रेरणाओंको —— वह अटपटे रसायनमें अुत्पन्न हुअे धर्म मानता है।

अिन मान्यताओंके आधार पर ही चार्वाककी तरह पाश्चात्य विज्ञानके रंगमें रंगे हुअे लोग भी भौतिक सुखवादमें विश्वास रखते हैं। अमुक प्रेरणाअें, जिन्हें वे चैतन्यात्मक रसायनका स्वरूप मानते हैं, अुत्पन्न हों और अुनका पोषण किया जाय —— अिसे ही वे सृष्टिका साधारण नियम मानते हैं, प्रेरणाओंके अुत्पन्न न होनेको अपवाद मानते हैं, और अपवादको न्यूनता, विकलांगता या रोगका चिह्न मानते हैं।

अेक दो अुदाहरणोंसे यह चीज अधिक स्पष्ट हो जायगी। सब प्राणियोंको अपना शरीर प्रिय होता है; अेकाध मनुष्य शरीरके प्रति अुदासीन हो तो अुसे ये लोग अपवाद समझकर विकलांग मानेंगे। फिर अिस अुदासीनताका कारण अुसके शरीरकी भौतिक रचनामें खोजने लगेंगे। सारे प्राणियोंमें कुछ ग्रन्थियां (glands) होती हैं; अिस मनुष्यमें वे ग्रन्थियां नहीं हैं। परिणाम है शरीरके प्रति अिसकी अुदासीनता। सारे प्राणियोंमें वंशवृद्धिकी अिच्छा होती है; अिस मनुष्यमें नहीं है। अुसके शरीरकी जांच करने पर अमुक ग्रंथियां छोटी अथवा कम मालूम पड़ती हैं। परिणाम है वंशवृद्धिमें अुसका वैराग्य; और अपवाद होनेके कारण अेक प्रकारकी विकलांगता।

मूल चैतन्यका अिनकार करनेके कारण और अपवादका अर्थ विकलांगता या रोग माननेके कारण, अुसी मनुष्यमें अमुक ग्रंथियां क्यों नहीं हैं, अिस प्रश्नका अुत्तर वे देंगे: "आसपासकी परिस्थितियां और संयोग।"

कोअी मनुष्य अेक तमाचा मारनेवाले आदमीको दस तमाचे लगा दे तो वह पाश्चात्य वैज्ञानिकको सृष्टिके नियमके अनुसार मालूम

होगा; परन्तु यदि वह औसामसीहका शिष्य निकले और तमाचा मारनेवालेके सामने अपना दूसरा गाल कर दे, तो वैज्ञानिकको शंका होगी कि अुसमें कोओी विकलांगता तो नहीं है? वैज्ञानिकको यह देखना जरूरी मालूम होगा कि अुसके मस्तिष्ककी सब ग्रंथियां ठीक हैं या नहीं।

किसी मनुष्यको अनेक स्त्रियां हों, तो वैज्ञानिक कहेगा कि अुसके मस्तिष्कका अेक खास भाग अतिशय बढ़ गया है; किन्तु कोओी रामकृष्ण परमहंस अपनी पत्नीको माता कह कर अुसके चरणोंमें प्रणाम करे, तो वैज्ञानिकको शंका होगी कि अुसके मस्तिष्कमें किसी ग्रंथिकी कमी है या किसी ग्रंथिका ठीक ठीक विकास नहीं हुआ है।

थोड़ेमें, पाश्चात्य विज्ञानका झुकाव यह माननेकी तरफ है कि प्राणियोंके स्वभावकी विविधता अुनकी शरीर-रचनाका परिणाम है। हमारे तत्त्वज्ञानकी परिभाषामें कहें तो पाश्चात्य विचारसरणी अैसी मालूम होती है: लिंगदेह स्थूलदेहका कार्य है और स्थूलदेह पूर्वजों और आसपासकी परिस्थितियोंका कार्य है।

संभव है हमारे पूर्वजोंको कारणरूपमें ही — (परिणामरूपमें नहीं) — आत्मतत्त्वके निश्चय पर आनेसे पूर्व अिसी क्रममें से गुजरना पड़ा हो। पाश्चात्य विज्ञान चाहे जिन दिशाओंमें बंट जाय, तो भी अिस बातसे अिनकार नहीं किया जा सकता कि वह अनन्य निष्ठासे जगत्के स्वरूपको खोजनेका अविश्रान्त प्रयत्न कर रहा है; और अिसलिअे यह आशा रखी जा सकती है कि अन्तमें वह भी सत्य पर ही आकर रुकेगा। परन्तु पाश्चात्य विज्ञानके साथ हम अपने अुत्तराधिकारका त्याग न करें तो अच्छा हो।

हमारा अुत्तराधिकार है आदिकारणके रूपमें आत्मतत्त्वकी शोध। अधिक गहराओी या विवादास्पद विषयोंमें न जाकर अिसका कमसे कम अर्थ यह है कि आसपासकी परिस्थितियों और संयोगोंका भले मुझ पर असर पड़ता हो, भले मुझे बहुत बार अुनके अनुकूल बनना पड़ता हो, भले अुनके कारण मेरे लिंगदेहमें भी लम्बे समयके बाद

फर्क पड़ता हो, फिर भी मुझमें अेक अैसी शक्ति भरी हुअी है जिसके कारण यह नहीं कहा जा सकता कि मैं परिस्थितियों और संयोगोंका बनाया बना हूं। यह शक्ति मेरा संकल्प या बहुत विशाल अर्थमें मेरा कर्म है। मेरे संकल्पसे धीरे-धीरे सृष्टिमें भी अैसा परिवर्तन होता है, जिसके फलस्वरूप परिस्थितियों और संयोगोंको मेरे संकल्पकी सिद्धिके अनुकूल बनना पड़ता है। जिस प्रकार बालूमें से आलू किस तरह पोषक द्रव्य खींच लेते हैं, अिसका ठीक ज्ञान न होनेके कारण अुनकी अिस क्रियाको हम अद्भुत कहते हैं; अुसी प्रकार मेरा संकल्प धीरे धीरे अद्भुत रीतिसे बाह्य प्रकृतिको भी अिस तरह बदल देता है कि परिस्थितियां अुसकी सिद्धिके अनुकूल बन जाती हैं।

अिसलिअे कोअी मनुष्य साधारण मनुष्योंसे भिन्न विशेषता रखनेवाला हो, तो अिसका कारण अुसकी परिस्थितियोंसे अुत्पन्न हुअी विकलांगता है या वह अुस मनुष्यके संकल्पका परिणाम है, यह अेक स्वतंत्र प्रश्न है। अिसका अुत्तर केवल अुस मनुष्यका शरीर चीरकर अुसकी ग्रन्थियोंकी संख्या जानने या रसोंका रासायनिक विश्लेषण करनेसे नहीं मिल सकता। कुछ अंश तक अुसकी शरीर-रचना अुसके संकल्पका परिणाम है, परिस्थितियोंके कारण अुसकी शरीर-रचना हुअी और अुसके फलस्वरूप अुसका स्वभाव बना है, तथा अैसी असाधारणता अुस मनुष्यकी विकलांगताकी निशानी है या अुसके लोकोत्तर विकासकी निशानी है, यह सब हर मामलेमें स्वतंत्र रूपसे विचारनेकी चीज है। यह अुसके समग्र शरीर, अिन्द्रियों, मन, बुद्धि और नैतिकताके विकासका तथा अिस बातका विचार करके निश्चित किया जा सकता है कि अुसका जीवन किस हद तक अेकसा और शांतिपूर्ण है।

भाषाज्ञान

कुछ वर्ष पहले 'नवजीवन अने सत्य' नामके (गुजराती) मासिकमें मैंने 'अंग्रेजीकी मदिरा' शीर्षकसे अेक लेख लिखा था। अुसमें मैंने अंग्रेजीका हम पर जो मादक असर हुआ है, अुसका कटाक्षपूर्ण विवेचन किया था। हममें से बहुतेरे लोगोंका यह खयाल है कि अंग्रेजी भाषामें ही अैसी कोअी मोहक शक्ति है। यह भाषा तेजस्वी है, वह भाषा शिथिल है, फलां भाषा मधुर है, फलां आक्रामक (aggressive) है — आदि विशेषण हम बहुत बार भाषाओंके साथ लगाते हैं। विशेष विचार करनेसे मालूम होता है कि अंग्रेजी भाषाने हमारे मन पर जो अधिकार कर लिया है, अुसका कारण अंग्रेजी भाषाकी विशेषता नहीं है, बल्कि अुसका कारण हमारी प्रजाकी विशेषता है।

प्राचीन कालसे हमारे अितिहासकी जांच की जाय तो पता चलेगा कि अलग-अलग भाषाओंमें अुनके बोलनेवालोंके जैसी ही प्रवीणता प्राप्त करनेका प्रेम और स्वभाषाकी अपेक्षा परभाषाके लिअे अधिक आदर हमारे देशमें बड़े लम्बे समयसे चला आया है। आज हम अंग्रेजीको जो महत्त्व देते हैं, वही महत्त्व किसी समय संस्कृत भाषाको देते थे, और आज भी अुस भाषाके प्रति हमारा आदर बहुत बार स्वभाषासे अधिक होता है। जिस तरह हमारे विद्वानोंको मातृभाषामें बोलनेकी अपेक्षा अंग्रेजीमें बोलना आज अधिक पसंद होता है और बहुत ज्यादा परिश्रम करनेके कारण वे अंग्रेजीमें अच्छी तरह बोल सकते हैं, जिस प्रकार स्वभाषामें हिज्जों या व्याकरणकी भूलें होनेकी अपेक्षा अंग्रेजीमें वैसी भूलें होने पर हम बहुत लज्जित होते हैं या वैसी भूलें करनेवालेका मजाक अुड़ानेकी हमारी अिच्छा होती है, अुसी प्रकार अेक समय हमारी दशा संस्कृतके संबंधमें थी। जिस प्रकार अंग्रेजी भाषा सीखनेके बाद मातृभाषा बोलनेको जंगलीपन माननेवाले और बालकोंको मातृभाषासे पहले अंग्रेजी बोलना सिखानेके लिअे घरमें अंग्रजीका अुपयोग करनेवाले हमारे देशमें कुछ लोग हैं, अुसी

प्रकार संस्कृतमें ही बोलनेका व्रत लेनेवाले और अुपनयन संस्कारके साथ ही या अुससे भी पहले बालकोंको शब्दरूपावली और धातुरूपावली सिखानेवाले शास्त्री भी हमारे देशमें किसी समय थे, और आज भी कुछ होंगे। आज जैसे गांधीजी अंग्रेजी भाषाके मोहके लिअे प्रजाको अुलाहना देते हैं, वैसे ही संस्कृत भाषाके अनुचित मोहके लिअे अखा, अेकनाथ और ज्ञानेश्वर जैसे ज्ञानियों और सन्तोंको अपने समयके लोगोंको अुलाहना देना पड़ा था; और स्वभाषामें ही ग्रन्थ रचनेका आग्रह रखनेवाले अेकनाथ जैसे लोगोंको संस्कृतके आग्रहियों द्वारा दिये गये कष्ट भी सहने पड़े थे।

प्राचीन कालमें संस्कृतके बजाय मातृभाषाका आदर बढ़ानेवालोंमें बुद्ध और महावीर अग्रणी मालूम होते हैं। अुसके बाद महाराष्ट्रके संतोंने मराठी भाषाको संस्कृत जितना ही महत्त्व देनेका प्रयत्न किया। गुजरातमें प्रेमानन्दने गुजराती भाषाकी सेवा आरंभ की। परन्तु प्रेमानन्दको संस्कृत और गुजरातीकी तुलना नहीं करनी थी; अुन्हें प्रान्तीय भाषाओंमें गुजरातीको अुच्च स्थान दिलाना था। गुजरातमें संस्कृतके साथ स्वभाषाकी तुलना तो अखाने की। अेकनाथ जैसी ही परन्तु अधिक तीखी भाषामें अुन्होंने कहा था:

'भाषाने शुं वळगे भूर, जे रणमां जीते ते शूर;
संस्कृत बोले ते शुं थयुं, कांअी प्राकृतमांथी नाशी गयुं;
बावननो सघळो विस्तार, अखो त्रेपनमो जाणे पार।
संस्कृत प्राकृत जे वडे भणे, जेम काष्ट विषे रह्यो भाथा कणे;
ते छोडयां बाणो नावे अर्थ, तेम प्राकृत विना संस्कृत ते व्यर्थ;
बधा दाम वेपारी लखे, अखा व्याज न्होय छूटा पखे.'*

---

* अिसका अर्थ यह है — हे मूर्ख, तू भाषासे क्यों चिपटा रहता है? जो रणमें जीतता है वही शूर है। संस्कृत भाषा बोलनेसे क्या हुआ? क्या अिस कारण प्राकृत भाषामें से कुछ नष्ट हो जाता है? सारा विस्तार ५२ अक्षरोंका ही है। परन्तु अखा कहता है कि अिसके परे रहनेवाला ५३ वां ब्रह्मतत्त्व हम जानें तभी अिस संसार-सागरसे पार हो सकते हैं। संस्कृत प्राकृतकी मददसे पढ़नी होती है। जिस

परन्तु शास्त्रियोंमें आन्तर-प्रान्तीय भाषाके रूपमें तो संस्कृत ही आज तक अुपयोगमें आती रही है।

किन्तु परभाषा सीखनेका हमारा यह अुत्साह संस्कृतके विषयमें थोड़ा कम हुआ, तो दूसरी किसी भाषाके विषयमें बढ़ा। अिस प्रकार मुसलमानोंका राज्य स्थापित होने पर हमारे पूर्वजोंने फारसी भाषाको वही महत्त्व दिया, जो आज हमने अंग्रेजी भाषाको दिया है। फारसी भाषाके ज्ञानमें मुसलमानोंसे भी टक्कर लेनेवाले फारसीके समर्थ विद्वान् हिन्दुओंमें हो गये हैं। अुस जमानेमें फारसी जाननेवाले आदमीकी सब अिज्जत करते थे। जिस तरह रास्ते पर बैठे हुअे किसी मोचीको अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान है अैसा जानकर हमें आश्चर्य होता है, और जिस तरह रेलवे स्टेशन पर जो काम गुजराती बोलनेसे नहीं हो सकता वह अंग्रेजीमें अेक वाक्य बोल देनेसे हो जाता है, वैसी ही अुस समय फारसीकी स्थिति थी। 'पढ़े फारसी बेचे तेल, देखो यह कुदरतका खेल' अिस कहावतका अर्थ ही यह है कि फारसीका ज्ञान रखनेवाला तेल बेचनेवालेकी सामान्य स्थितिमें हो यह बात अुस जमानेमें आश्चर्यकी मानी जाती थी।

जिस प्रजाका जुआ (अधीनता) हमने स्वीकार किया, अुस प्रजाकी पोशाक, भाषा, रीति-रिवाज सब कुछ अपना लेनेकी हमें पुराने जमानेसे आदत पड़ गअी है। शिवाजी महाराजने हिन्दू राज्य स्थापित किया, परन्तु राजभाषा, वेशभूषा और लिपि तो बहुत समय तक मुसलमानोंकी ही रही। राजपूतानेके बहुतसे हिन्दू राज्योंमें आज भी राजभाषा अुर्दू है, और पहले वह शायद फारसी रही होगी। अुत्तर भारतमें अनेक हिन्दू अैसे हैं, जिन्हें बचपनसे अुर्दू लिपि ही सिखाअी जाती है और देवनागरी लिपि वे पढ़ ही नहीं सकते।

प्रकार लकड़ियोंको गट्ठरके रूपमें घुमाते रहनेसे कोअी लाभ नहीं होता, गट्ठरको छोड़ने पर ही लकड़ियोंका अुपयोग किया जा सकता है, अुसी प्रकार प्राकृतके बिना संस्कृत व्यर्थ है। व्यापारी हजारोंकी रकम बही-खातेमें लिखता है, परन्तु जब तक पैसोंको तुड़ाता नहीं तब तक व्यापार नहीं हो सकता।

यही कारण है कि अंग्रेजी राज्यके आते ही अंग्रेजी भाषाने भी स्वभावतः वही प्राधान्य ग्रहण कर लिया। प्रारंभसे ही अुच्चारण-शुद्धि और व्याकरण पर हमारे देशमें बहुत भार दिया जाता था और अुसके लिअे खूब परिश्रम किया जाता था। अिसलिअे किसी भी भाषाके शुद्ध अुच्चारण करने और भाषा पर अधिकार प्राप्त करनेमें दूसरी प्रजाओंसे हम अधिक सफल रहे हैं। दो चार भाषायें सीख लेना हमारे लिअे बायें हाथका खेल है। अतः राष्ट्रीय शिक्षणका आन्दोलन आरंभ होने पर हिन्दीको पाठ्यक्रममें स्थान देनेमें कोअी कठिनाअी नहीं हुअी। अुस समय कुछ लोगोंकी यह धारणा थी कि हिन्दीको अनिवार्य बनाकर अंग्रेजीको वैकल्पिक स्थान दिया जाय अर्थात् अुसे कोअी कोअी विद्यार्थी ही सीखें; परन्तु अधिकतर शालाओं और विद्यार्थियोंने अंग्रेजीको तो जारी रखा ही, अूपरसे हिन्दीको और दाखिल कर दिया। अिसीलिअे आज अनेक विद्यार्थी गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत, फारसी या फ्रेन्च अिस तरह चार भाषायें सीखते हैं। जो लोग कातें नहीं वे अेक भाषा अधिक सीखें, अैसा विकल्प यदि रखा जाय तो बहुतसे विद्यार्थी अेक और भाषाका आभूषण पहननेको तैयार हो जायंगे।

बेशक, यह हमारी प्रजा द्वारा प्राप्त की हुअी अेक सिद्धि कही जायगी। परन्तु प्रत्येक सिद्धि जैसे अंतिम ध्येयको प्राप्त करनेमें बाधक होती है, वैसे ही यह सिद्धि भी बाधक होती है। सिद्धि अपना मूल्य बढ़ाकर ध्येयको भुला देती है। किसी भाषाकी विशेषता, किसी भाषाका प्राण अुसके शब्दोंमें नहीं, बल्कि अुसके बोलनेवालोंके चारित्र्यमें होता है। अिस बातको हम भूल जाते हैं और यह मानते हैं कि अमुक भाषामें ही अधिक तेज, माधुर्य, कर्कशता आदि गुण हैं, और अुस भाषाको सीखनेसे हममें भी वे गुण आ जायंगे। अेक अमेरिकन व्यायामशास्त्रीने शौर्यका विकास करनेकी अेक विचित्र सलाह दी है। वे कहते हैं कि पीठ, गरदन और सिरको अेक विशेष स्थितिमें रख-कर चलनेसे आप लोगों पर रोब जमा सकेंगे। सच बात है; अिस तरह रोबसे चलनेका ढोंग तो किया जा सकता है; परन्तु जब तक कोअी सच्चा रोबदार आदमी सामने आकर खड़ा नहीं होता तभी

तक। अैसे किसी आदमीके सामने आ जाने पर रोब जमानेकी आदत होते हुअे भी पीठ, गरदन और सिर विशेष स्थितिमें रखना संभव नहीं होता। क्योंकि धड़कते दिलसे यह सब कैसे हो सकता है?

'बूम पड़े जब बाहरे, सब नीकले संसार;
सच्चा पक्का पारखा, जब नीकसे तरवार।'*

—शोरगुल होने पर सभी लोग घरसे बाहर निकल आते हैं, परन्तु सच्चे और पक्के वीरकी परीक्षा तलवार निकलने पर ही होती है।

अिसी प्रकार हमारा यह खयाल है कि जिस भाषामें हम बोलते हैं, अुस भाषाके बोलनेवालोंके गुण हममें आ जाते हैं। दूसरी प्रजाकी भाषा (और वेशभूषा) अपनानेसे यदि अुस प्रजाके गुण किसी प्रजामें आते हों, तो गधा सिंहका चमड़ा ओढ़कर सिंह बननेकी आशा क्यों न रखे? गुण या ज्ञान चित्तके गुण हैं, वाणी (या कपड़ों) के नहीं; वाणी (और वेश) अुनकी थोड़ी झांकी करा सकते हैं, परन्तु अुन्हें पैदा नहीं कर सकते।

मातृभाषाका अनादर हमारा प्राचीन कालका रोग मालूम होता है। हमें अपनी भाषा सदा पंगु ही मालूम हुअी है। और स्वभाषाका यह अनादर हममें आत्म-विश्वासके अभावके कारण अुत्पन्न हुआ है। जिस प्रकार गुलामीके स्वीकारकी जड़में स्वाभिमान और आत्म-विश्वासका अभाव है, अुसी प्रकार परभाषाके मोहमें भी अिन गुणोंका अभाव है।

स्वभाषाका आदर बढ़ानेका अुपाय यह नहीं है कि दूसरी भाषायें सीखी या सिखाअी न जायं। यह तो काकाका अपमान करके पिताका मान बढ़ाने जैसा विचित्र मार्ग होगा। परंतु यह खयाल मिट जाना चाहिये कि परभाषा जानना कोअी मान, बड़प्पन या विद्वत्ताकी बात है। किसी प्रयोजनके अभावमें मनुष्यको मातृभाषाके सिवाय अेक भी दूसरी भाषा जाननेकी आवश्यकता नहीं, परंतु आवश्यकता होने पर अुसे बार-बार नअी भाषायें सीखनी पड़ती हैं। लेकिन जिन भाषाओंके बारेमें विश्वासपूर्वक यह मालूम हो कि जीवनमें अुनकी जरूरत पड़ेगी, अुन्हें

* यह अेक गुजराती कविकी हिन्दीमें की गअी रचना है।

सीखनेकी सुविधा प्रयोजनके अनुसार की जानी चाहिये। परंतु यह नहीं मानना चाहिये कि अुस भाषाके ज्ञानके कारण विद्यार्थी कुछ ज्यादा आदर पानेका अधिकारी हो जाता है, न हमारे मनमें यह भ्रम रहना चाहिये कि दूसरी भाषायें न जाननेसे विद्यार्थीके विकासमें कोअी रुकावट आती है।

दूसरोंकी भाषा हमें अुसके बोलनेवालोंकी तरह ही शुद्ध रूपमें बोलते और लिखते आना चाहिये, अैसा मिथ्याभिमान हमारे ही लोगोंने बढ़ाया है, और वह जिस प्रजाकी गुलामी हमने स्वीकार की अुसके हम पर पड़े हुअे प्रभावका परिणाम है। जापानी लोग टूटी-फूटी अंग्रेजीसे लाखोंका व्यापार चला सकते हैं; अच्छी अंग्रेजी न जाननेसे अुन्हें शरम नहीं मालूम होती। श्री पॉल रिशार जैसे पुरुष भी अशुद्ध अंग्रेजी बोलनेमें शरमाते नहीं। क्योंकि वे लोग जानते हैं कि 'अंग्रेजी हमारी भाषा नहीं है, काम चलाने जितनी ही अंग्रेजी हम जानते हैं।' परंतु हमारे दफ्तरोंमें अंग्रेजी पर प्राप्त किये हुअे अधिकारकी बेहद कीमत आंकी जाती है। बरसोंसे बम्बअीमें रहने पर भी हम मराठी बोलनेमें गलती करें या महाराष्ट्रीय लोग गुजराती बोलनेमें गलती करें, तो बोलनेवालों या सुननेवालोंको हास्यास्पद नहीं मालूम होता। परंतु अंग्रेजीमें अेक मामूली-सी भी गलती हो जाय तो हमें अैसी शरम लगती है कि पृथ्वी जगह कर दे तो हम अुसके भीतर समा जायं।

गुजराती या संस्कृतका भाषा-संबंध होनेके कारण गुजरातीका अच्छा ज्ञान प्राप्त करनेके लिअे संस्कृतका ज्ञान आवश्यक माना जाय, अिसे तो मैं समझ सकता हूं। परंतु जब कोअी यह कहता है कि जो संस्कृत नहीं जानता वह पूरी तरह शिक्षित नहीं है या संस्कृतके ज्ञानके बिना कोअी हिन्दू अपना पूरा विकास नहीं कर सकता, तब ये शब्द मुझे बड़े विचित्र मालूम होते हैं। अैसी बात सुनकर मुझे लगता है कि हम अिस बातको समझे ही नहीं हैं कि ज्ञान पदोंका नहीं परंतु पदार्थोंका विषय है। जो पदार्थको जानता है, वही ज्ञान प्राप्त करता है। किसी पदार्थके लिअे किसी विशेष भाषामें दिया हुआ नाम न जानता हो तो वह अुसे नया नाम दे सकेगा; परंतु केवल पदको जाननेवाला पदार्थको नहीं पहचान सकता।

५

साहित्य, संगीत और कला

आज गुजरातमें हर जगह मैं साहित्य, संगीत और कलाकी अुपासना होती देखता हूं। हमारे महाविद्यालयमें भी अिनके लिअे बड़ी सावधानी रखी जाती है। सत्याग्रहाश्रमके बुनाअी-मंदिरके द्वार पर अेक तख्ती लगी है, जिस पर लिखा है: 'कला राष्ट्रका प्राण है'। और अैसा कहें तो गलत नहीं होगा कि पिछले २५ वर्षोंमें वहींसे 'संगीत' की अुपासना गुजरातमें आरंभ हुअी। भर्तृहरिने साहित्य, संगीत और कलासे विहीन मनुष्यको पशुसे भी गया-बीता माना है। अेक श्रुति रसको ही ब्रह्मरूप कहती है। अितने प्रबल आधार होते हुअे भी साहित्य, संगीत और कलाकी आज जो विचारहीन अुपासना चल रही है, अुसका निषेध करना मेरा कर्तव्य हो जाता है। मैं यह माननेसे अिनकार करता हूं कि साहित्य, संगीत और कला मनुष्यको पूर्णताके समीप ले जाते हैं। अैसे अुदाहरण खोजे जा सकते हैं कि किसी मनुष्यमें ये तीनों हों तो भी वह मनुष्योंमें अधमसे अधम हो। वैसे तो कोअी भी वस्तु ब्रह्मसे भिन्न न होनेके कारण (रसका अर्थ साहित्य, संगीत और कलाका पोषण करनेवाली वृत्ति किया जाय तो भी) 'रसो वै सः' अिस वाक्यको मैं गलत नहीं कह सकता। परंतु अितना तो मुझे कहना चाहिये कि साहित्य, संगीत और कलाकी अुपासना वह अुपासना नहीं है, जो हमें मनुष्य-जन्मकी पूर्णता तक पहुंचा सके और जिसकी सहायतासे समस्त प्रजाका कल्याण हो।

मैं मानता हूं कि अेक मनुष्यको किसी दूसरे मनुष्यसे कार्यवशात् या अुसके हितके लिअे जो बात कहनी पड़े, अुसे वह अुचित शब्दों द्वारा (सभ्यता और सौजन्यकी दृष्टिसे) शुद्ध भाषामें, अेक ही अर्थ निकल सके अैसी वाक्य-रचना द्वारा, मनका भाव यथासंभव पूर्णरूपसे प्रकट कर सकनेवाले स्पष्ट शब्दों और दृष्टान्तोंकी योजना करके कहनेकी शक्ति प्राप्त कर सके, अिसके लिअे साहित्यकी

जितनी अुपासना आवश्यक हो अुतनी की जानी चाहिये। अुसके हृदयमें अनुभव होनेवाली सात्त्विक प्रसन्नता तथा अुसके जीवनकी पूर्णता वाणीमें जितना आनन्द अुत्पन्न कर सके वही साहित्यका सच्चा रस है, और अुसमें जितनी स्वाभाविक सुन्दरता दिखाअी दे अुतनी ही सच्ची कला है।

जिन अुद्गारोंके साथ किसी भी आवश्यक कार्यका संबंध नहीं, जिनसे किसीका हित नहीं साधा जा सकता, वैसे अुद्गारोंके लिअे किये जानेवाले वाणीके आडम्बरको — भले अुसकी गिनती अुच्च साहित्यमें हो तो भी — मैं मनुष्यताके विकासके लिअे निरुपयोगी समझता हूं।

अुसी प्रकार हृदयमें चलनेवाले अुदात्त मन्थनके फलस्वरूप स्वाभाविक रूपमें रागबद्ध या तालबद्ध अर्थवाले जो शब्द भीतरसे निकल पड़ें, अुनमें रहे संगीतको मैं क्षम्य मानता हूं। केवल वैज्ञानिक शोधके लिअे अुस संगीतमें रहे स्वरोंके अभ्यासको भी क्षम्य मानता हूं। परंतु अर्थको छोड़कर या गौण बनाकर केवल स्वरोंकी जो कसरत की जाती है, अुससे मानव-जातिके विकासमें कोअी सहायता मिलती है, यह मेरी समझमें नहीं आता।

कलाको भी मैं अितना ही मर्यादित स्थान देता हूं। मेरे अुपयोगकी वस्तु अितने व्यवस्थित ढंगसे बनाअी गअी हो कि अुसके अुपयोगसे मुझे पूर्ण सुविधाका अनुभव हो, तो मैं मानता हूं कि वैसी और अुतनी कलामें अुसकी आवश्यक मर्यादा आ जाती है। अुदाहरणके लिअे, मुझे जिस चरखेका अुपयोग करना है वह टिकाअू हो, अुसके सारे जोड़ अिस तरह जोड़े गये हों कि तकलीफ न दें, अुसके सारे भाग ठीक अनुपातमें हों, अुसमें घर्षण कमसे कम हो, अुसके तकुवे और चक्र आसानीसे घूमते हों, अुसमें तेल देनेके स्थानोंकी अैसी रचना की गअी हो कि जिन जगहोंमें तेलकी जरूरत न हो अुन्हें तेल बिगाड़े नहीं, तो मैं मानूंगा कि अुस चरखेको बनानेमें कारीगरने अपनी पूर्ण कुशलता या कला बताअी है। मैं अुस चरखेको विविध रंगोंसे सजा हुआ देखनेकी आशा नहीं रखूंगा, न अुसके स्तंभों पर नक्काशीकी आशा रखूंगा। जितनी कला कर्ममें कुशलता अुत्पन्न करनेवाली है, अुतनी ही कला

मनुष्यत्वके विकासके लिअे आवश्यक है; अुससे अधिक आडम्बर मनुष्यको मानव-जीवनके ध्येयसे विमुख करनेवाला है।

परंतु जिन लोगोंको साहित्य, संगीत और कला पर किया हुआ मेरा यह प्रहार अरुचिकर लगे, अुनसे मेरा निवेदन है कि वे अितना तो अवश्य करें कि अिन तीनों विभूतियोंको अपने जीवनमें संपूर्ण रूपसे अुतारें।

जब मैं किसी साहित्यकारकी व्यक्तिगत बातचीत गन्दी और क्षुद्रतासे भरी सुनता हूं, तब मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि अुसके लिखे हुअे साहित्यको पढ़ने और अुस पर विचार करनेका अुत्साह मुझमें नहीं रहता।

दुनियामें अैसे गायक होते हैं जिनका गायन सभाके लोगोंको मंत्र-मुग्ध कर देता है, परंतु अुनके जीवनमें संगीतका नाम भी नहीं होता। अुनकी रागबद्ध वाणी जितनी मधुर होती है, अुतनी ही सादी बात-चीतकी वाणी कठोर होती है; अिस कारणसे अुनके साथ व्यवहार करना कठिन हो जाता है।

मैंने अैसे चित्रकार और सुतार देखे हैं, जिनकी कला और कारीगरीके लिअे हृदयसे वाह-वाह निकले बिना नहीं रहता, परंतु अुनके कपड़े, घरबार, साज-सामान अितने भद्दे और अव्यवस्थित होते हैं कि देखकर मन अूब जाता है। अुस समय मेरे मनमें ये भाव अुठते हैं कि कलाकार अपनी कला-निपुणताको थोड़ा कम करके अपने कपड़े धोनेमें, अुन्हें जोड़ने-सीनेमें, घरकी सफाअी करनेमें, खिड़कियों और दरवाजोंको सांकल-चटकनी ठीक करनेमें, खटिया या पलंगके पांव सीधे करनेमें, कपड़े खूंटी पर टांगनेमें और कलाके साधन और औजार किसीको चोट न लगे अिस ढंगसे जमा कर रखनेमें समय दें, तो शायद अुनके विश्वकर्मा देव अधिक प्रसन्न होंगे। जिन लोगोंके चरित्रके विषयमें मेरे मनमें आदर न हो, अुनके आध्यात्मिक लेखोंमें चाहे जितनी कुशल तर्क-पटुता अथवा योग-सामर्थ्य हो तो भी मैं अुन्हें त्याज्य मानता हूं; अुसी प्रकार जिनकी दिनचर्यामें साहित्य, संगीत और कलाकी भक्तिसे आवश्यक

परिवर्तन हुआ नहीं देखता अुनकी अिन सिद्धियोंसे थोड़ा भी लाभ अुठानेकी मेरी अिच्छा नहीं होती।

साहित्य, संगीत और कलाके प्रति हमारी अिस वृत्ति पर पुनः विचार करनेकी मैं आपसे प्रार्थना करता हूं। मेरे विचार मुझसे यह कह रहे हैं कि जैसे मितव्ययिता और परिश्रममें समृद्धिके प्राण हैं, और भोग-विलासमें समृद्धिका व्यय है, वैसे ही गीत, भाषा और श्रमकी सादगी तथा व्यवहारोपयोगितामें राष्ट्रका प्राण है और संगीत, साहित्य तथा कलाके विलास या विकासमें राष्ट्रके प्राणके व्ययका आरंभ है। *

६

सामुदायिक अुपासनाके बारेमें व्यावहारिक चर्चा +

शालाओं, छात्रालयों और अिसी प्रकारकी दूसरी संस्थाओंमें सामुदायिक अुपासना जैसा कोअी कार्यक्रम रखनेकी आज लगभग परिपाटी-सी हो गअी है।

साथ ही विद्यार्थियों और शिक्षकोंमें सामुदायिक अुपासनाके विरुद्ध भी अेक आन्दोलन् चल रहा है। गुजरातकी प्रत्येक संस्थामें आज यह प्रश्न खड़ा हुआ दिखाअी देता है।

अिस विरोधके पीछे अनेक प्रकारकी दलीलें और मानसिक वृत्तियां हैं। अुदाहरणके लिअे, कुछ लोगोंको सामूहिक अुपासना अिसलिअे ना-पसन्द है कि अुसे अनिवार्य बना दिया जाता है। आज शिक्षण-

---

* 'साबरमती' पत्रके सं० १९८० के वर्षा-अंकमें विद्यार्थियोंको लिखे गये पत्रमें से।

+ 'जीवनशोधन' के दूसरे भागके दसवें प्रकरणमें अिस विषयकी मैंने तात्त्विक दृष्टिसे विस्तृत छानबीन की है। अुसके आधार पर छात्रालयों जैसी संस्थाओंकी दृष्टिसे अिस विषयमें कुछ व्यावहारिक सूचनाअें ही यहां की हैं। अुस प्रकरणको अिसके साथ पढ़ना चाहिये।

शास्त्रियोंमें अनिवार्य और अैच्छिकके संबंधमें जबरदस्त विवाद चल रहा है, और अुस विवादको सामूहिक अुपासनाके क्षेत्रमें भी दाखिल कर दिया जाता है। कुछ लोग अिस विचारसे अुसका विरोध करते हैं कि अुपासना सामुदायिक नहीं बल्कि व्यक्तिगत ही होनी चाहिये। कुछ अुपासनाके लिअे ही श्रद्धा मन्द पड़ जानेके कारण अुसका विरोध करते हैं। अिस तरह कुछ लोग विचारपूर्वक अिसका विरोध करते हैं और कुछ बादमें दूसरोंको देखकर विरोध करने लगते हैं।

सामुदायिक अुपासनाके शुद्ध स्वरूपमें क्या क्या बातें होनी चाहिये, अिसका हम विचार करें।

१. श्रद्धा

सबसे प्रथम वस्तु तो यह है कि अुपासकोंमें **श्रद्धा** होनी चाहिये। सामुदायिक अुपासना होनी चाहिये या नहीं होनी चाहिये, अिस चर्चाके कारणकी जांच करनेसे पता चलेगा कि यह अुपासना करनेका कर्तव्य अश्रद्धालु पर आ पड़ता है। अुपासना किसके लिअे रखी गअी है, यह पूछा जाय तो मालूम होगा कि अुसे कोअी भी अपनी चीज नहीं मानता। छात्रालयोंके गृहपति मानते हैं, "मुझे अिस अुपासनाकी आवश्यकता नहीं है; मैं अपने लिअे तो व्यक्तिगत रूपमें या भिन्न प्रकारसे अुपासना करता हूं। यह अुपासना केवल विद्यार्थियोंके लिअे छात्रालयों द्वारा स्वीकार किये हुअे नियमके अनुसार रखी गअी है।" विद्यार्थी मानते हैं, "हमें अिस अुपासनाकी भूख नहीं है। गृहपतिके नियमके वश होकर हम अिसमें हाजिर रहते हैं।"

सम्प्रदायोंके लिअे यह बात नहीं है। आरतीके घंटे सुनते ही सब कोअी जब मन्दिरमें दौड़ जाते हैं तब किसीको अैसा नहीं लगता कि अपने सिवाय दूसरे किसीके लिअे वे मंदिरमें जाते हैं। क्योंकि वे अपनी श्रद्धासे ही वहां जाते हैं।

छात्रालयों जैसी संस्थाओंमें अैसा नहीं होता। कारण यह है कि अुपासनाकी प्रथा और पद्धतिको जन्म देनेवाले गृहपति स्वसंतोष या आत्मोन्नतिके लिअे अैसा नहीं करते, न विद्यार्थी स्वयंप्रेरणासे अुसका

स्वरूप गढ़ते हैं, बल्कि दोनों किसी दूसरेके लिअे ही अुसकी रचना करते हैं। सामुदायिक अुपासना संबंधी झगड़ोंका, अुसकी निष्फलताका तथा अुसके विषयमें होनेवाले वाद-विवादका यही कारण है।

तब पहली आवश्यकता यह है कि समुदायकी रचना करनेवाला — गृहपति या दूसरा कोअी संस्थापक — स्वयं सत्संगका भूखा हो। अुसकी वृत्ति यह होनी चाहिये कि अुसे खुद अुपासना करनी है और अुसके लिअे वह विद्यार्थियोंका समागम खोजता है। विद्यार्थी अपनी शक्तिके अनुसार अिसमें से जो कुछ ले सकें लेंगे, कोअी अिससे दंभ, पाखंड या दुराचार तो हरगिज नहीं सीखेंगे और मैं स्वयं तो अिस अुपासनासे बहुत लाभ अुठाअूंगा, अैसी अुसकी मान्यता होनी चाहिये। संस्थाके अन्य कार्योंमें भले वह गुरुस्थान पर और दूसरे शिष्यस्थान पर हों, परंतु अुपासनामें तो वह जिज्ञासु और दूसरोंकी — किसी छोटे बालककी भी — साधुताका पुजारी बन कर ही रहे।

यदि व्यवस्थापक अैसी वृत्तिवाला होगा, तो वह विद्यार्थियोंकी नहीं बल्कि अपने अभ्युदयकी चिन्ता करता रहेगा और अपनी अुपासनामें दूसरे सत्पुरुषोंको बार-बार बुलाकर अुनके सत्संगका लाभ अुठानेकी अिच्छा रखेगा।

यदि व्यवस्थापक श्रद्धावान होगा तो अुसका असर सरल चित्त-वाले तथा स्वभावसे ही पूजनेकी वृत्तिवाले विद्यार्थियों पर पड़े बिना नहीं रहेगा; और यह प्रश्न तीव्र रूपमें नहीं अुठेगा कि अुपासना अनिवार्य होनी चाहिये या अैच्छिक।

विद्यार्थियोंको भोजन करना ही चाहिये, अैसा नियम बनानेकी शायद ही किसी संस्थाको जरूरत पड़ती है। परन्तु यह नियम अवश्य बनाना पड़ता है कि जिन्हें खाना हो वे अमुक समय पर हाजिर रहें। अुपासना यदि अन्नकी तरह ही तृप्ति देनेवाली हो तो वह भी अिसी नियमका अनुसरण करेगी।

अिसलिअे अुपासनाका निर्माण अुपासकोंकी श्रद्धासे होना चाहिये और अुसमें सत्पुरुषोंका समागम प्राप्त होना चाहिये — यह सामुदायिक अुपासनाका प्रथम आवश्यक तत्त्व है।

२. विविधता

सामुदायिक अुपासना अेक ही अंगवाली हो तो अुपासकोंको सन्तोष नहीं देगी। भिन्न-भिन्न रुचिवाले अुपासकोंकी भिन्न-भिन्न भावनाओंका पोषण करनेवाली विविधता सामुदायिक अुपासनामें होनी चाहिये। अुपासनाको यदि मोहक, रम्य अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण महिमाके भारसे भव्य न बनाया जाय और अुसे सकाम भक्तिके रंग-बिरंगे फूलोंसे सजाया न जाय, तो विविधतासे डरना नहीं चाहिये और न यह मानना चाहिये कि अुससे कोअी हानि होगी।

जहां अनेक खानेवालोंकी मेस चलती है वहां अमुक व्यंजन हर सदस्य खायेगा ही अैसा मान लिया जाता है; परन्तु दूसरे कुछ व्यंजन खानेवालेको अपनी रुचिके अनुसार लेने या न लेनेकी छूट हो सकती है। और यदि सब व्यंजन जीभको ललचानेकी दृष्टिसे नहीं परन्तु स्वास्थ्यप्रद भोजनको रुचिकर बनानेकी दृष्टिसे ही बनाये जाते हों तो वे व्यंजन भोजनमें दोषरूप नहीं, बल्कि गुणरूप ही माने जायंगे। यही बात अुपासनामें साधी हुअी विविधताके बारेमें भी समझना चाहिये।

अुपासनामें विविधता होनेसे अनिवार्य और अैच्छिकका झगड़ा भी बहुत हद तक खतम हो जायगा। जिस तरह खुराकके रोटी या भात जैसे महत्त्वके पदार्थोंमें सबका भाग होता ही है, जिस तरह शिक्षणमें स्वभाषा जैसे महत्त्वपूर्ण विषयमें सबका भाग अवश्य होता है, अुसी तरह अुपासनाके महत्त्वपूर्ण अंगोंमें सबका भाग होगा। परन्तु जैसे अचार या साग-भाजी वगैरामें खानेवाले अपनी रुचिके अनुसार चलते हैं, जैसे परभाषा सीखने न सीखनेमें विद्यार्थियोंकी रुचिका खयाल किया जा सकता है, वैसे ही अुपासनाके गौण अंगोंमें अुपासकोंकी रुचिका खयाल किया जाना चाहिये।

अब अिस बातका निश्चय करना चाहिये कि अुपासनाके महत्त्व-पूर्ण अंग कौनसे और गौण अंग कौनसे हैं।

अुपासनाके स्वरूपका विचार करते हुअे हमने ('जीवनशोधनमें') देखा है कि अुसमें तीन प्रयत्न होते हैं: (१) परमात्माके साथ अनुसंधान

स्थापित करनेका प्रयत्न, (२) सात्त्विक भाव निर्माण करनेका प्रयत्न, और (३) तत्त्व या धर्म-विचारका प्रयत्न।

मेरी दृष्टिसे अिन तीनों प्रयत्नोंमें से अनुसन्धानके प्रयत्नका समुदायमें गौण स्थान है। जिस प्रकार बड़े समुदायमें संगीतकी केवल अभिरुचि अुत्पन्न की जा सकती है, परन्तु किसीको संगीतमें निष्णात नहीं बनाया जा सकता, अुसी प्रकार सामुदायिक अुपासना द्वारा परमात्माके साथ अनुसंधान करनेकी रुचि अुत्पन्न की जा सकती है, परन्तु अुसका विकास तो वैयक्तिक अुपासनामें ही हो सकता है। अिसलिअे सामुदायिक अुपासनाकी रचना अैसी होनी चाहिये, जिससे अुपासकोंमें अिस अनुसंधानका बीज पड़े और नये पड़े हुअे बीजको पोषण मिले। अिस कारणसे जिस मनुष्यमें अिस बीजका पोषण हुआ है और जो वैयक्तिक रूपमें परमात्माके साथ अनुसंधान करनेके लिअे प्रयत्नशील रहता है, अुसकी संभवतः सामुदायिक अुपासनाके अिस भागमें कोअी रुचि न हो। अिस दृष्टिसे अिस भागको गौण अंग समझना चाहिये।

सात्त्विक भाव निर्माण करनेवाला अंग सामुदायिक अुपासनाका महत्त्वपूर्ण स्वरूप कहा जा सकता है। जिस प्रकार भोजनको स्वादिष्ठ और रुचिकर बनानेवाले मसाले और व्यंजन अनेक प्रकारके होते हैं और सारे मसालों और व्यंजनोंका अुपयोग अेक ही दिनमें नहीं किया जाता, अुसी प्रकार अिस प्रयत्नका भी है। अिसका स्वरूप सदाके लिअे नियत नहीं किया जा सकता; अिसमें प्रतिदिन थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो सकता है। यह सात्त्विक भाव निर्माण करनेवाला अंग होना जरूरी है; परन्तु जैसे मसालों और व्यंजनोंका अतिरेक दोष माना जायगा, वैसे ही अुसमें किये जानेवाले परिवर्तनका अतिरेक भी दोष माना जायगा। सात्त्विक भाव भी 'सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ।' (सुख और ज्ञानकी आसक्ति द्वारा बंधन निर्माण करता है।) वह भी अेक प्रकारका अुन्माद निर्माण करता है। जब अुन्माद निर्माण होता है, तब सात्त्विकता लगभग दोषरूप हो जाती है।

मराठी नाटकोंमें अैसे किसी पात्रके गलेमें, जो संगीतमें निपुण होता है, गीत ठूंस ठूंसकर भर देनेका रिवाज पड़ गया है। अैसे पात्रके रंगभूमि पर आते ही आधे दर्जन गीत सुननेकी प्रेक्षकोंको तैयारी रखनी चाहिये। मैं जानता हूं कि बहुतेरे प्रेक्षक अितना अधिक संगीत सुनकर अूबते नहीं, परन्तु अिसके पीछे प्रेक्षकोंकी विकसित अभिरुचि होती है अैसा मुझे नहीं लगता। जिस तरह किसी मनुष्यकी जीभ केवल गुड़ खाये बिना मीठेपनका अस्तित्व महसूस न कर सके और तृप्त न हो सके तो हम अुसे जड़ कहेंगे, अुसी तरह जो व्यक्ति अेकाध दर्जन गीत सुने बिना संगीतसे तृप्त न हो सके अुसके कान मेरी दृष्टिसे जड़ माने जाने चाहिये। नियम तो यह होना चाहिये कि जो पात्र संगीतमें प्रवीण हो अुसके सिवाय दूसरे किसीको गाने न दिया जाय और वह पात्र भी अेक-दो गीत ही सुन्दरसे सुन्दर ढंगसे गाकर सुनाये।

अिसी तरह, सात्त्विक भाव निर्माण करनेके लिअे अनेक रीतियोंका अेक ही दिन आयोजन करनेकी पद्धति मुझे असंस्कृत मालूम होती है। धुनके दो-चार प्रकार, अुन प्रकारोंमें आरोह-अवरोहकी युक्तियां, अनेक भजन आदि रीतियां मेरी रायमें अुचित नहीं हैं। धुन और भजन संगीतके लिअे अथवा अपने आसान ताल और आसान 'सा रे ग म'से जनसमूहको पागल बनानेके लिअे नहीं हैं। लोगोंके झुण्ड धुन या भजन सुनकर पागल बन जायं और डोलने लगें, नाचने लगें तथा ताल देने लगें तो माना जाता है कि अच्छा रस जमा है। 'रस जमाने'की दृष्टिसे यह सब ठीक है। परन्तु अुपासनाकी दृष्टिसे यह अुपासनाकी निष्फलता है। धुन या भजन जब अिस प्रकार आगे बढ़ते जायं कि धीरे-धीरे नाचनेवाले बैठ जायं, डोलनेवाले स्थिर हो जायं, ताल देनेवाले शान्त हो जायं, तार स्वरमें गानेवाले मंद्र स्वरमें आ जायं और अैसा लगे कि सारा समूह जाग्रत होते हुअे भी गंभीर बन गया है, तब मानना चाहिये कि धुन या भजन सफल हुअे। अुपासनामें जो कुछ होता है अुसका स्पष्ट असर क्या हुआ यह अुपासना पूरी होनेके दो-चार घंटे बाद मालूम पड़े और अुस

समय अेक प्रकारकी शान्त प्रसन्नताका अनुभव हो, तो कहा जायगा कि अुपासना सफल हुअी।

पहले अंगकी अपेक्षा यह सामुदायिक अुपासनाका अधिक महत्त्व-पूर्ण अंग है। फिर भी जैसे अधिकतर लोग रोटी या भातके साथ दाल या कढ़ी जैसी चीजें लेते हैं, परन्तु कुछ लोग अपवाद हो सकते हैं और वे केवल दूध, मट्ठे या मीठेसे काम चला लेते हैं, अुसी तरह संभव है कुछ लोगोंको अैसी सामुदायिक अुपासनाके द्वारा सात्त्विक भावोंका पोषण करनेकी आवश्यकता न मालूम हो। अैसे अपवादोंके लिअे सामूहिक अुपासनामें गुंजाअिश होनी चाहिये। यह माननेमें कोअी हर्ज नहीं कि सामान्यतः अैसा अपवाद करनेवाले थोड़े होते हैं।

परन्तु सामुदायिक अुपासनाका मुख्य अंग तो अुस समुदायमें होनेवाला धर्म-विचार और तत्त्व-विचार है। यह विचार किसी सत्पुरुषके चरित्र-वाचन द्वारा हो, प्रश्नोत्तर द्वारा हो, किसी ग्रन्थके अध्ययन द्वारा हो, प्रवचन द्वारा हो, सन्तवाणी या भजन द्वारा अुत्पन्न हो अथवा कोअी भक्त-कीर्तनकार अपने कीर्तन द्वारा करावे, परन्तु वही अिस अुपासनाका महत्त्वपूर्ण अंग है। जो विचार-शुद्धि मनुष्य अपने-आप करनेमें सदा सफल नहीं होता और अिसलिअे सत्पुरुषों, सच्छास्त्रों या सद्ग्रन्थोंका आश्रय खोजता है, अुसकी सुविधा कर देना ही सामुदायिक अुपासनाका बड़ेसे बड़ा प्रयोजन है। बेशक, अुपासनाके संचालक जिस हद तक जाग्रत, विचारशील और विशाल दृष्टिवाले कर्मयोगी पुरुष होंगे, अुसी हद तक अुपासना केवल रूढ़िग्रस्त बननेसे बचेगी। परन्तु अुपासना रूढ़िग्रस्त हो या नये प्रकारकी हो, श्रेयार्थी अैसे ही अुपासक-समुदायकी खोजमें रहते हैं, जिसमें धर्म-विचार या तत्त्व-विचारका लाभ प्राप्त होता हो।

यह भी सच है कि धर्म-विचार अथवा तत्त्व-विचारकी चर्चा श्रोताओंकी भूमिकाके अनुसार हलकी या गंभीर, सीधी या कथाओं द्वारा होनी चाहिये। पांच या पन्द्रह वर्षके श्रोताओंके सामने अुद्दालक और श्वेतकेतुकी चर्चाका विवेचन नहीं किया जा सकता, परन्तु देवों और यक्षका अथवा प्राण और अिन्द्रियोंका संवाद सुनाया जा सकता

है; सूक्ष्म धर्मोंकी चर्चा नहीं की जा सकती, परन्तु जीवनके व्यवहारोंमें जिन स्थूल धर्मों या कर्तव्योंका पालन होना चाहिये अुनकी चर्चा की जा सकती है। और, अिसमें सीधी चर्चाकी अपेक्षा कथात्मक चर्चाका विशेष स्थान होगा।

सारी भूमिकाओंके मिश्र श्रोताओंमें संचालकोंको चर्चाकी अधिक स्वतंत्रता होती है। कभी सीधी चर्चा की जा सकती है, कभी कथात्मक; कभी हलकी चर्चा की जा सकती है, तो कभी गंभीर।

अैसी चर्चाओंमें संचालक रसके लिअे या मनोरंजनके लिअे सत्यको न छोड़ें, पांडित्य दिखानेके लिअे अुलझनमें डालनेवाली दलील-बाजीमें न पड़ें, वक्तृत्व-कला दिखानेके लिअे वाणीके आडम्बरमें न पड़ें, वस्तुके मर्मको प्रकट या अधिक स्पष्ट करनेकी अपेक्षा अधिक गुप्त और अगम्य बना डालनेवाले काव्य-चातुर्य (जैसा धीरो, कबीर आदिके कुछ भजनोंमें होता है) में न पड़ें। हमारे लिअे अुपयोगी नहीं है परन्तु दूसरोंको देना है अैसे खयालसे नहीं, बल्कि हमें भी जिससे कुछ लाभ होगा, जो कुछ हमें प्राप्त हो गया है अुसमें दूसरोंको भी भागीदार बनाना चाहिये, अैसे आशयसे अुपासनाके संचालक श्रोताओंकी शक्तिका खयाल रखकर अुपासनामें विविधता लानेका विवेक करें तो वह गलत नहीं होगा।

जैसे कुछ लोग रोटी और भातके बजाय शाक और अचारसे ही पेट भरनेवाले होते हैं, वैसे ही कुछ अुपासकोंको यह महत्त्वपूर्ण भाग नीरस और अूबानेवाला मालूम हो सकता हैं और संभव है वे पहले दो अंगोंमें ही थोड़ा-बहुत भाग ले सकें। अिससे परेशान होनेकी जरूरत नहीं है। क्योंकि सामुदायिक अुपासनामें यदि मानसिक भूखको तृप्त करनेकी कोअी विशेष शक्ति हो तो वह अुसके अिस आखिरी अंगमें ही है। सच्ची भूख न हो तभी तक मनुष्य शाक और अचार खाकर अुठ सकता है। परन्तु धीरे-धीरे सच्ची भूख खुलनेके बाद जैसे वह रोटी और भातको छोड़ नहीं सकता, वैसे ही ये अुपासक भी सामुदायिक अुपासनाके केवल धुन, भजन, नित्यपाठ जैसे अंगोंसे तृप्त नहीं हो सकते, महीने-छह महीनेमें जरूर अुनमें अैसे विचारात्मक

अंगकी भूख पैदा होगी। अिसीमें सामुदायिक अुपासनाका सत्संग है। जिस समुदायमें अैसा भोजन मिलता होगा, अुससे बहुत दूर रहना अेकान्तसेवी योगी भी पसन्द नहीं करेगा। अैसे समुदाय जन-समाजमें कभी-कभी ही देखनेको मिलते हैं। जो समुदाय जन-समाजके बीच चलते हैं, अुनमें धर्म-शोधन या तत्त्व-शोधन बहुत कम होता है। यह अनुभव होनेसे ही श्रेयार्थी अुनके विषयमें अुदासीन हो जाते हैं और अेकान्तको अधिक पसन्द करते हैं। परन्तु जब अुन्हें यह लगता है कि किसी स्थान पर सच्चा सन्त-समागम प्राप्त हो सकता है, तब वे (विशेष साधनामें लगे हुअे न हों तो) अेकान्तका ही सेवन नहीं करते। हिमालय पर जानेवाले लोग भी वहां समुदाय खड़े करते हैं।

३. शान्ति और गाम्भीर्य

यदि समुदायमें शान्ति और गाम्भीर्यका पालन न किया जाय, तो अुपासकोंको श्रद्धा और सत्संगके फल नहीं मिलते। नाटकोंमें जिस प्रकार 'पिट' के प्रेक्षकोंके लिअे कुछ दृश्योंका आयोजन किया जाता है, अुसी प्रकार सामुदायिक अुपासनामें भी होता देखा जाता है। अुसमें गड़बड़ी और शोरगुलका पार नहीं होता अथवा गड़बड़ो और शोरगुलको ही सामुदायिक अुपासना समझ लिया जाता है। हिन्दू अुपासकोंके समुदायोंमें शान्तिका गुण मेरे देखनेमें नहीं आया। त्योहारों पर भरनेवाले मेलोंमें जैसा दृश्य होता है, बहुधा अुसीकी छोटी आवृत्ति सामुदायिक अुपासनामें होती है। रोते-बिलखते बालकोंका, अूधमी बालकोंका, आपसमें बातें करनेवाली स्त्रियोंका, दूसरोंको कुहनी मारकर आगे बढ़नेका प्रयत्न करनेवाले पुरुषोंका अैसा हल्ला मचता है कि कुल मिलाकर सारा दृश्य अुपासनाकी अपेक्षा तमाशेका ही ज्यादा मालूम होता है। अुसमें फिर 'शंख, नगाड़े, ढोल, मृदंग और रणसिंघे अेकसाथ बजकर आकाश और पृथ्वी दोनोंको गुंजा देते हैं।' सहिष्णुताकी दृष्टिसे तथा अन्य दृष्टियोंसे मुसलमानोंका चाहे जो कर्तव्य हो, परन्तु सामुदायिक अुपासनाकी शुद्धताकी दृष्टिसे अुपासनाके समय आसपास शान्त वातावरणकी अुनकी मांग अनुचित नहीं कही जायगी। शंख, नगाड़े आदि

वाद्योंमें से अेकाध साधनका अुपयोग, शालामें जिस तरह समय समयके घंटे बजते हैं अुस तरह, भले किया जाय; परन्तु अुनकी अुपयोगिताको वहीं तक सीमित समझना चाहिये। ये वाद्य देवोंको जगानेके लिअे नहीं, अुपासकोंको अेकत्र करनेके लिअे हैं। आरतीके समय घंटीकी आवश्यकता मानी ही जाय तो अेक छोटीसी घंटीकी आवाज काफी होगी। यदि घंटी अुपासनाके रूपमें बजती हो तो अुस समय अुपासकोंमें अैसी शान्ति होनी चाहिये कि सारा समुदाय घंटीकी आवाज सुन सके। सच पूछा जाय तो अिस सारे कर्मकाण्डसे मुक्त हो जानेमें ही कल्याण है। परन्तु जिनमें अैसी श्रद्धायें दृढ़ हो गअी हैं, अुन्हें भी अुपासनाके समय शान्ति और गंभीर वातावरण बनाये रखनेके लिअे अधिकसे अधिक जो कुछ किया जा सकता है या कमसे कम जो करना चाहिये वही मैंने यहां बताया है।

जब मनुष्यका चित्त प्रसन्न होता है, तब अुसमें विनोद सहज रूपमें पाया जाता है। यह विनोद दूसरोंके मनोरंजनके लिअे खोज-खाज कर कृत्रिम रूपसे अुत्पन्न नहीं किया जाता, परन्तु अपने-आप अुत्पन्न होता है। अुपासनाके भजनों या प्रवचनोंमें कभी-कभी अिस तरहका स्वाभाविक विनोद दिखाअी दे तो अुसमें चिढ़नेकी कोअी बात नहीं है। परन्तु जब श्रोताओंके मनोरंजनके लिअे विनोदी कार्यक्रम तथा श्लेष आदिके शब्द-चातुर्यकी जान-बूझकर योजना की जाती है, जब प्रवचनकारोंको अुनके अैसे चातुर्यके लिअे ही पसन्द किया जाता है, तब वह अुपासना नहीं रहती, बल्कि हलके प्रकारका नाटक बन जाती है।

४. अुपासनाकी योजना और संचालन

अुपासनाके नित्यपाठ, भजन, धुन आदिके चुनावमें जो विवेक किया जाना चाहिये, अुसके विषयमें भी यहां मैं कुछ कहना चाहूंगा।

नित्यपाठका अर्थ यह है कि अुसकी वस्तु प्रतिदिन मनन करने योग्य मालूम होती है। अुसमें कुछ परमेश्वरका स्तवन होगा, कुछ वन्दनीय महापुरुषोंका स्मरण होगा, कुछ धर्म और जीवनके आदर्शोंका

चिन्तन होगा, कुछ क्षमा-याचना या कृतज्ञताकी भावना होगी, कुछ चित्तशुद्धि, कर्तव्य-पालन आदिके सम्बन्धमें प्रतिदिन स्मरण रखने योग्य बातें होंगी।

अिस नित्यपाठमें अैसा कुछ नहीं होना चाहिये, जो अुस समुदायके किसी व्यक्तिको खटके। अुदाहरणके लिअे, सनातनियों और आर्यसमाजियोंके मिश्र समुदायके नित्यपाठमें 'वक्रतुण्ड महाकाय' जैसा श्लोक आये तो वह आर्यसमाजियोंको खटके बिना नहीं रहेगा। और 'मूर्तिपूजाऽधमाऽधमा' वाला श्लोक रोज बोलनेके लिअे चुना गया हो तो वह सनातनियोंको खटके बिना नहीं रहेगा। अुनकी अीश्वर-सम्बन्धी विचारसरणीको वह अितना ज्यादा आघात पहुंचानेवाला अथवा अनुचित लगेगा कि अुसे नित्यपाठके रूपमें स्वीकार करनेमें वे जरूर हिचकिचायेंगे।

अिसी प्रकार जिस नित्यपाठमें परमेश्वरको कर-चरण-रहित निर्गुण निराकार कहा गया हो, अुसे रोज बोलनेमें स्वामीनारायण जैसे सगुणोपासक सम्प्रदायके लोगोंको हिचकिचाहट होगी; और अिसके विपरीत जिस नित्यपाठमें परमेश्वरको दिव्य साकार कहा गया हो, अुसे रोज बोलनेका प्रसंग आने पर वेदान्ती या आर्यसमाजीको आघात पहुंचेगा। अिन अुदाहरणोंमें दोनोंकी दृष्टि अुपासकोंको दलील देकर समझा सकना संभव है, परन्तु प्रतिदिन बुद्धिसे समझनेके बाद नित्य-पाठ करनेमें किसी भक्तको रस नहीं आयेगा। भक्त अैसा पाठ पसंद करेगा, जिसे अपनी समझके अनुसार वह आसानीसे बोल सके; रूपक खड़ा करके या अुसे निकालकर अथवा बुद्धिवादको दौड़ाकर पाठ अपनी समझके अनुसार ही है अैसा माननेका प्रयत्न रोज-रोज करना वह पसन्द नहीं करेगा।

अिसी तरह हिन्दुओं, मुसलमानों, अीसाअियों आदिके मिश्र समुदायोंमें भी नित्यपाठकी रचनामें विवेक करना आवश्यक है।

मिश्र समुदायका यह अर्थ नहीं कि मेहमानोंकी तरह आ पहुंचने-वाले लोगोंको भी सन्तोष दिला सके अिस तरह पाठकी रचना होनी चाहिये। मिश्र समुदाय अुसे कहा जायगा जो किसी परम्परागत

सम्प्रदायसे चिपटा हुआ नहीं है और जिसमें अनेक धर्मों और सम्प्रदायोंके लोग प्रतिदिन भाग लेते हैं।

नित्यपाठके लिअे जो बन्धन लागू होते हैं, वे भजनोंके लिअे लागू नहीं होते। अैसा मनुष्य भी, जो तुलसीदासकी तरह अितना अनन्याश्रयी हो कि रामके बदले कृष्णके सामने माथा न नमाये, तुकारामका विठोबाके नामसे रचा हुआ अभंग गानेमें हिचकिचायेगा नहीं। वह समझेगा कि अिसमें नाम गौण है, भाव मुख्य है। विठोबा बोलते हुअे भी वह अपने ही अिष्टदेवका विचार करेगा। अिस दृष्टिसे अीश्वर सगुण और साकार हैं अितना कहते ही चिढ़ जानेवाले भक्त प्रभुके 'चरणों' में सिर रखनेकी, अुनका वरद 'हस्त' अपने सिर पर रखनेकी और अुनके 'प्रकाश' में स्नान करनेकी अभिलाषा करते हैं। वैष्णव शिव या दुर्गाके भजनोंका आदर कर सकते हैं। परन्तु अैसे भजन यदि नित्यपाठमें हों तो अुन्हें बरदाश्त करना अुनके लिअे कठिन होता है। क्योंकि वह चिन्तन अुनकी स्थिर निष्ठाके विरुद्ध होता है।

अुपासनाके समय कर्मेन्द्रियों या ज्ञानेन्द्रियोंको कातने, कपास चुनने, सीने वगैराके किसी समाजोपयोगी काममें लगाया जा सकता है या नहीं, अिस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक मालूम होता है।

'खातां, पीतां, हरतां, फरतां, करतां घरनुं काम;
स्वामीनारायण, स्वामीनारायण, मुखे रटिये नाम ——
हो संभारिये रे.' *

यह अेक बात है; और स्तवन-अुपासनाके समय कोअी सामाजिक काम —— भले वह शुद्ध हो —— करना दूसरी बात है। मेरे विचारसे अैसा करना ठीक नहीं है। 'जीवनशोधन'+ नामक पुस्तकमें किये गये

* खाते, पीते, घूमते, फिरते और घरका काम करते हुअे मुखसे स्वामीनारायण (परमात्मा) का नाम रटना चाहिये। अुसीका स्मरण करना चाहिये।

+ नवजीवनसे अिसकी हिन्दी आवृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। की० ३-०-०, डा० खर्च १-३-०।

विवेचनके अनुसार कर्मोपासना या सहजोपासनामें रहनेवाली अेकांगिताको दूर करनेके लिअे, कर्म करते हुअे भी कर्मके बन्धनसे तथा प्रवृत्तिके मोहसे मुक्त होनेके लिअे स्तवन-अुपासनाकी आवश्यकता है। जिसका यह हेतु सिद्ध हो गया है, अुसके लिअे सारी स्तवन-अुपासना निरर्थक हो जाती है। अुसके लिअे तो अूपरकी पंक्तियां भी बेकार हैं। वह नीचेकी स्थितिमें रह सकता है:

'कहूं सो नाम, सुनूं सो सुमिरन, जो करूं सो पूजा;
. . . .
जब सोअूं तब करूं दंडवत, पूजूं और न देवा।'

परन्तु जिसे स्तवन-अुपासनाकी आवश्यकता है, अुसे चाहिये कि वह अिस हेतुकी सिद्धिके लिअे स्तवन-अुपासनाके समय जगत्के सारे स्वार्थी या परमार्थी कर्मोंसे दूर रहे और अुन्हें भूल जानेका प्रयत्न करे। अेकाग्र मनसे माला फेरनेकी अपेक्षा भूखेको भोजन देना या नंगेके लिअे कपड़े बनाना अधिक महत्त्वका काम हो सकता है। अैसा लगे तब भूखेको भोजन देना या कातना चाहिये और अुसीको अीश्वरकी पूजा मानना चाहिये। अैसा करते समय अीश्वरका नाम लेते रहना चाहिये, परन्तु दूसरी अुपासनामें नहीं फंसना चाहिये। परन्तु यदि अैसा मनुष्य स्तवन-अुपासनाके लिअे कोअी विशेष समय निश्चित करके बैठनेका कार्यक्रम रखे, तो अेकाग्र साधनाकी दृष्टिसे तथा यह जाननेकी दृष्टिसे कि कर्मयोगके आग्रहकी भी मर्यादा है, अर्थ और कामसे सम्बन्ध रखनेवाले कर्मोंसे निवृत्त होकर बैठना ही ठीक होगा। अैसे कार्य नमस्कार करना, माला फेरना, (मूर्तिपूजक हो तो मूर्तिकी) प्रदक्षिणा करना आदि हो सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि अिनमें से कुछ न कुछ करना ही चाहिये। शान्त चित्तसे अेकासन होकर स्थिर बैठनेको मैं पर्याप्त और श्रेष्ठ मानता हूं। परन्तु चंचल अिन्द्रियोंके लिअे अैसा करना कठिन हो तो अर्थ और कामसे संबंध न रखनेवाले कर्मोंमें अुन्हें लगाना अधिक अच्छा होगा।

'मनुवा तो चहुं दिशि फिरे' की स्थिति होने पर भी सारे दिन माला हाथमें रखनेका मिथ्याचरण जैसे अेक प्रकारकी कर्म-जड़ता है,

अुसी तरह कातना यज्ञकर्म है अिसलिअे स्तवनके लिअे आग्रहपूर्वक नियत किये हुअे समयमें भी कातना दूसरे प्रकारकी कर्म-जड़ता है। जहां 'अेक पंथ दो काज' करनेकी बनिया-बुद्धि अुत्पन्न होती है, वहां तत्त्वका हनन होता है अैसा कहनेमें कोअी हर्ज नहीं।

अेक शिष्य अेक बार अपनी तुंबी चबूतरे पर भूलकर पूजा करने बैठ गया। पूजा करते-करते तुंबी भूल आनेकी बात अुसे याद आअी, और कुत्ता अुसे बिगाड़ देगा अिस डरसे बार बार अुसकी वृत्ति तुंबीकी तरफ दौड़ने लगी। परन्तु पूजा करते-करते अुठा नहीं जा सकता, अैसे प्रतिबन्धके कारण वह अुठ भी नहीं सका। यह देखकर गुरुने पूछा :

'दैवत तुंबीपात्रमें, किंवा दैवत ध्यान?
दैवत तुंबीमें अधिक, किंवा दोअु समान?'

अगर तुंबीको अुसके स्थान पर रखना अधिक महत्त्वकी बात हो तो वह काम पहले करना चाहिये; और यदि पूजाका अधिक महत्त्व हो तो तुंबीकी चिन्ता छोड़कर पूजामें अेकाग्र होना चाहिये। अिसी तरह यदि कातना विशेष सत्कर्म लगता हो तो अपने स्थान पर शान्तिसे बैठकर कातते रहना चाहिये और स्तवनकी झंझटसे दूर रहना चाहिये। यदि अुस समय स्तवनमें सम्मिलित होना अधिक महत्त्वका लगे तो यज्ञार्थ होने पर भी कातना बन्द कर देना चाहिये।

अन्तमें, अुपर्युक्त सब दृष्टिबिन्दुओंको ध्यानमें रखकर समय और कार्यक्रमका बंटवारा किस तरह हो सकता है, अिसकी अेक योजना यहां पेश करता हूं।

अिस योजनामें मैंने अैसी अपेक्षा रखी है कि समुदायका प्रत्येक व्यक्ति कमसे कम बीस मिनट और रुचि हो तो अधिक समयके लिअे अुपासनामें भाग लेगा। कार्यक्रमके विभिन्न अंगोंका संचालन अेक ही व्यक्ति करे या अलग अलग व्यक्ति करें, यह सुविधाका और व्यक्तिकी योग्यताका विषय है। जिन लोगोंको कार्यक्रमके किसी विशेष भागमें सम्मिलित रहनेकी अिच्छा न हो, वे शान्तिसे दूसरोंकी अेकाग्रतामें बाधा

पहुंचाये बिना अुठकर चले जा सकें और बादमें आनेवाले अिसी तरह आ सकें, अैसी व्यवस्था होनी चाहिये। यहां मैंने यह मान लिया है कि अेक बार बैठ कर अुठ जानेके बाद, फिर दूसरे कार्यक्रमके लिअे आने और अुठ जानेकी तथा कार्यक्रम चल रहा हो तब बीचमें ही अुठ जानेकी असभ्यता कोअी नहीं करेंगे।

सामान्यत: शिक्षण-संस्थाओंमें पहली घंटी सबको अिकट्ठा करती हैं और दूसरी घंटी होते ही नित्यपाठ आरम्भ होता है। अिसके बदले मेरा यह सुझाव है कि दूसरी घंटीके साथ या अुसके पहले भी भजन-मण्डली अपने भजन और अुसके बाद धुन आरंभ कर दे और अुपासक अुस बीच चुपचाप आकर बैठते जायं। सवेरे-शाम दोनों समयके लिअे समयका बंटवारा अिस तरह किया जा सकता है:

कार्यक्रम

मिनट (लगभग)	
१०	भजन
५	धुन
५	स्तवन-पाठ
१५ (सवेरे) स्वाध्याय (शामको)	कथा-कीर्तन-वाचन
५	भजन
१५	प्रवचन
५	धुन

प्रवचन नियमित न होता हो तो कुल समय ४० या ४५ मिनटका होगा, प्रवचनके साथ ६० मिनटका होगा। जो लोग वाचन या प्रवचनमें अूंघनेवाले हों वे शुरूसे स्तवन-पाठ तक भाग लें; जो अुसीकी रुचि रखनेवाले हो वे अुसमें भाग ले सकें अिस तरह सम्मिलित हों। जिन्हें पूरे कार्यक्रमके लिअे भक्ति, रुचि और अवकाश हो, वे पूरा घंटा दें। ६० मिनटका कार्यक्रम रखना संभव ही न हो, तो सवेरे स्वाध्याय या वाचन और शामको प्रवचन रखा जा सकता है। प्रवचनकारके अभावमें वाचन भी रखा जा सकता है। आवश्यकता

मालूम हो तो दूसरे भजन और धुनकी जिम्मेदारी कोअी अलग व्यक्ति ले।

स्वाध्यायके बारेमें अेक बात कह देना आवश्यक है। बहुत बार स्वाध्याय अितना लंबा रखा जाता है कि निश्चित समयमें अुसे पूरा करनेके लिअे पंजाब मेल दौड़ानी पड़ती है। अिससे कोअी लाभ नहीं होता। स्वाध्याय कोअी नित्यपाठ नहीं है; वह मनन करने योग्य कंठाग्र किये हुअे विशाल साहित्यमें से थोड़ासा भाग होता है और आवश्यकता होने पर अुसका थोड़ा विवेचन भी अुसमें रहता है। वह रोज अेक ही प्रकारका रहे, अैसा आवश्यक नहीं है।

अुपसंहार

अन्तमें अुपसंहारके रूपमें कुछ सूचनाअें दे दूं। जिसे सचमुच ही सामुदायिक अुपासनाकी आवश्यकता नहीं रहती, वह अैसे किसी समाजके साथ बंधा हुआ नहीं रहता, जिसमें स्तवन-अुपासनाके समय अुसका अुपस्थित रहना अनिवार्य माना जाता हो। जो अपवादरूप व्यक्ति अुससे परे हो जाते हैं, अुनकी अपवाद होनेकी योग्यता सब कोअी स्वीकार करते हैं। और यदि नहीं स्वीकार करते तो अैसे समुदायके साथ बंधे रहनेकी अुन्हें परवाह भी नहीं होती। अिसलिअे जहां यह झगड़ा पैदा होता है, वहां अुसके पीछे कोअी तात्त्विक कारण नहीं, बल्कि श्रद्धामान्द्यके ही कारण होते हैं।

परन्तु कोअी व्यक्ति सामुदायिक अुपासनाका कुछ भाग व्यक्तिगत रूपमें करनेकी बात कहे अथवा अपने लिअे अुसे अनावश्यक बतावे, तो अुसे मिथ्याभिमानी समझना ठीक नहीं होगा। कुछ शालाओंमें यह नियम होता है कि बालकोंको हर पहाड़ा अमुक बार बोलना ही चाहिये। प्रायः बालक अिस पद्धतिका विरोध नहीं करते। परन्तु यदि कोअी बालक यह कहे कि 'मैं अेक अेकम अेक-का, दस अेकम दस-का और हर पहाड़ेका अेक और दसका गुणाकार (जो बिलकुल स्पष्ट होता है) नहीं घोटूंगा, तो हम यह मान कर कि वह बालक बुद्धिका अुपयोग करता है, अिन आसान गुणाकारोंकी रटाअीसे अुसे

मुक्त कर देंगे या यह कहेंगे कि अुसे जड़ नियमके ढांचेमें बंधे ही रहना चाहिये? यही न्याय सामुदायिक अुपासनाके कुछ भागोंको लागू हो सकता है।

फिर, सामुदायिक अुपासना आवश्यक है, अिसलिअे चाहे जैसी सामुदायिक अुपासनासे काम चल सकता है, यह कहना भी दुराग्रह ही माना जायगा। अुपासककी बुद्धि और हृदय दोनोंके लिअे जो सन्तोषदायक हो, वही अुपासना भोजनके रूपमें मानी जा सकती है। यदि अैसा न हो और कोअी अकेला ही श्रद्धालु अुपासक अुपासनामें कोअी परिवर्तन कराना चाहे तथा दूसरे अुपासक अुससे कम श्रद्धालु न होते हुअे भी कम विचारनिष्ठ हों, तो दूसरोंको असंतुष्ट किये बिना अुस अेक अुपासकको अधिक सन्तोष प्राप्त हो अैसा परिवर्तन करनेमें ही संचालकको बुद्धिमानी माननी चाहिये।

अिसी तरह, चूंकि स्तवन-अुपासना सामुदायिक और वैयक्तिक दोनों प्रकारकी होती है और सामुदायिक अुपासनाका हेतु अन्तमें वैयक्तिक अुपासनाका पोषण करना है, अिसलिअे कुछ बातोंमें अथवा संपूर्ण रूपमें भी कोअी व्यक्ति वैयक्तिक अुपासना ही करना चाहे, तो अुसकी जांच करके वैसी सुविधा कर देनेमें समुदायके संचालकोंको कोअी संकोच न होना चाहिये।

थोड़ेमें, संचालक, व्यवस्थापक, गृहपति, आचार्य आदि अपनेको अुपासनाकी कवायद करानेवाले ड्रिल-मास्टर समझें, तो वे अुसे अनिवार्य बनाकर अुसमें 'व्यवस्था' कायम कर सकेंगे; अेक ही सप्तकमें, अेक ही स्वरमें, ताल और गतिकी भलीभांति रक्षा करके अुच्चारणकी शुद्धता भी वे ला सकेंगे। यह भी हो सकता है कि यह कवायद अुपासकोंको अुबानेवाली न मालूम हो; और अुकताहट न मालूम होनेसे स्वभावत: अुसकी आदत भी अुन्हें पड़ सकती है। लेकिन फिर भी अुसे अुपासना नहीं कहा जा सकता। यह कवायद ही रहेगी।

परन्तु यदि संचालक अपनेको नरसिंह महेता या तुकाराम जैसा श्रेयार्थी समझे, अपने श्रेयके लिअे बाल या बड़े हरिजनोंका मंडल खड़ा करना चाहे और अैसे भजन-मंडलका अकेला या दो-चार सहायक

साथियोंके साथ मुखिया बने, तो वह अुस मंडलमें सच्ची अुपासनाके तत्त्व दाखिल कर सकेगा। अिसके साथ ही यदि अूपर बताअी हुअी व्यवस्था होगी, तो यह अुपासना दुगुनी सुशोभित होगी। वह स्वयं भले नरसिंह महेता या तुकाराम न बन सके, फिर भी यदि अुस समुदायके लिअे अुसकी अैसी भक्तिनिष्ठा होगी, तो अुस अुपासनामें सच्चे नरसिंह महेताका भी जुड़नेका मन हो जायगा।

७

स्त्रियोंकी तालीम*

दो पास पास खड़े हुअे आम और नीमके पेड़ोंको दो अलग अलग स्थानोंसे देखें, तो अेक स्थानसे आम नीमकी दायीं ओर दिखाअी देगा और दूसरे स्थानसे बायीं ओर; और तीसरी दिशासे आम नीमके आगे मालूम होगा तथा चौथी दिशासे नीमके पीछे मालूम होगा। दर्शनका यह सारा भेद पेड़में कोअी स्थान-परिवर्तन हो जानेके कारण नहीं पैदा होता, परन्तु दर्शकके स्थान-परिवर्तनके कारण पैदा होता है।

तालीमको भी कुछ अंश तक यही बात लागू होती है। जिस स्थान पर खड़े रहकर हम जीवनको देखते हैं, अुसके आधार पर जीवनके विषयमें हमारा खयाल बनता है और अुसका अेक या दूसरा अंग कम या अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है। तालीमका ध्येय जीवनको गढ़ना या अुसका निर्माण करना है। अिसलिअे अूपर कहे अनुसार दृष्टिबिन्दुका जो भेद पैदा होता है, अुसकी वजहसे अिस विषयमें मतभेद होता है कि शिक्षामें किस चीजको महत्त्व दिया जाय।

परन्तु केवल देखनेवालेके स्थान-परिवर्तनके कारण ही तालीमके प्रश्नोंके बारेमें मतभेद पैदा नहीं होता। आम और नीमके सम्बन्धमें

* वनिताश्रम (अहमदाबाद) के रजत-महोत्सवके अवसर पर लिखा गया निबन्ध — दिसम्बर १९३१।

तो केवल देखनेवाला ही स्थानांतर करता है; दोनों पेड़ स्थिर रहते हैं। परन्तु जीवनके विषयमें नये नये अनुभवोंके कारण जिस प्रकार हमारा स्थानांतर होता है, अुसी तरह सारे मानव-समाजका जीवन भी नये नये रूप ग्रहण करता रहता है। अिसलिअे तालीमके बारेमें सदा नये नये प्रश्न खड़े होते ही रहें तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं।

अिस कारणसे जीवनको किसी अूंचे और काफी स्थिर स्थानसे जांचकर तालीमके प्रश्न पर विचार करनेका प्रयत्न हम भले करें, परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि तालीम-सम्बन्धी हमारे अनेक विचारोंमें बार-बार सुधार होते ही रहेंगे, तथा आज जो बातें महत्त्वकी मालूम होती हैं वे कल गौण बन सकती हैं, और आज गौण मालूम होनेवाली बातें कल महत्त्व ग्रहण कर सकती हैं।

अिस तरह हमारे निर्णय अस्थिर हो सकते हैं। संभव है आज हमने जिस स्थान पर पांव रखा है वहांसे कल अुसे हटाना पड़े। परन्तु आजका कदम यदि सच्ची दिशामें पड़ा हो, तो कल अुसे अुठाकर सच्ची दिशामें ही रखनेकी अधिक आशा रहती है। अिसलिअे भले हम अेक ही कदमको देख सकें, परन्तु यदि वह कदम सही दिशामें पड़े तो हम सुरक्षित रहनेकी आशा कर सकते हैं।

तालीमका अर्थ है जीवनका निर्माण करने या अुसे गढ़नेकी पद्धति। मैं मानता हूं कि अैसी अेक छोटीसी व्याख्या स्वीकार करके हम अिस विषयका विचार करेंगे तो कुछ सुविधा होगी। यह व्याख्या ही हमारे सामने प्रश्नोंकी परम्परा पेश करेगी।

सबसे पहला प्रश्न तो यह है कि 'जीवन निर्माण करने' का अर्थ क्या? परन्तु 'निर्माण करना' शब्दका अर्थ खोजने जाते ही 'किसका जीवन?' यह दूसरा प्रश्न खड़ा होता है। कदाचित् अिसका अुत्तर यह दिया जाय कि स्त्रियोंका जीवन। परन्तु यह अुत्तर पूरा नहीं है। कारण यह है कि जो स्त्रियां — जिस वर्गकी स्त्रियां — हमारी दृष्टिके सामने होंगी, अुनको ध्यानमें रखकर हमारी बुद्धि अिन प्रश्नोंके अुत्तर खोजनेका प्रयत्न करेगी। यदि हमारी दृष्टिमें

शहरोंकी और अुसमें भी धनी या मध्यमवर्गकी स्त्रियां होंगी तो अिनके अुत्तर अेक प्रकारसे सूझेंगे और यदि हमारी दृष्टिमें गांवोंकी तथा पिछड़े हुअे और गरीब वर्गोंकी स्त्रियां होंगी तो अिनके अुत्तर दूसरी तरहसे सूझेंगे।

जिस संस्थाने यह निबन्ध लिखनेकी मुझे आज्ञा दी है, अुसका कार्यक्षेत्र बहुत धनी न होते हुअे भी अतिशय कठिनाअियां न भोगने-वाली मध्यमवर्गकी तथा संस्कारी जातियोंकी होते हुअे भी गरीब वर्गकी स्त्रियों तक ही मर्यादित है, अैसा मानकर अुतने ही क्षेत्रमें अुत्पन्न होनेवाले प्रश्नोंका मैंने यहां विचार किया है। गुजरातके सम्बन्धमें कहें तो साधारणतः अिसमें ब्राह्मण, वैश्य, पाटीदार, ब्रह्मक्षत्रिय, कायस्थ आदि जातियोंका समावेश होता है।

देशकी विशाल जनताकी दृष्टिसे विचार करें तो यह वर्ग मुट्ठी-भर ही माना जायगा। अिसलिअे कोअी यह आक्षेप कर सकते हैं कि स्त्रियोंकी तालीमका बड़ा नाम देकर अेक छोटेसे वर्गसे ही सम्ब-न्धित प्रश्नोंकी चर्चा करनेमें मैंने व्यर्थ अपनी शक्ति खर्च की है। परन्तु संपूर्ण चर्चा करनेमें निबन्ध केवल तात्त्विक बन जाता और संभव है जिनकी प्रेरणासे मैंने अिसे लिखा है अुनके लिअे व्यावहारिक दृष्टिसे यह बहुत अुपयोगी सिद्ध नहीं होता। अिसलिअे मुट्ठीभर होते हुअे भी अिसी वर्गकी स्त्रियोंकी तालीमके प्रश्नोंका विचार मैंने किया है।

परन्तु अिस तरह क्षेत्रको मर्यादित रखते हुअे भी यथासंभव विशाल दृष्टिसे व्यापक विचार करना चाहिये। और अिसके लिअे जीवनके विषयमें यथासंभव सच्चा दृष्टिबिन्दु खोजकर अुस दृष्टिसे तालीमके प्रश्नोंकी चर्चा करनी चाहिये। अिस विषयमें मैं कुछ विचार सूत्ररूपमें ही पेश करना चाहता हूं और मानता हूं कि विचार करनेसे ये सूत्र प्रत्येकको स्वीकार करने जैसे लगेंगे।

पहले सूत्रके रूपमें मैं यह विचार सामने रखता हूं :

१. मानव-जाति राज्य-पद्धति, समाज-पद्धति, शिक्षा-पद्धति, शासन-पद्धति, धार्मिक आचरणके नियमों, नैतिक आचरणके नियमों आदि

द्वारा अेक ही वस्तु सिद्ध करनेका प्रयत्न करती है : वह है अपने जीवनकी विभिन्न प्रवृत्तियोंमें आन्तरिक सामंजस्य कायम करना, तथा अपने और दूसरे प्राणियोंके जीवनके बीच सामंजस्य कायम करना।

अिन दोनों प्रयत्नोंमें से हम अभी अपने जीवनका सामंजस्य कायम करनेके प्रयत्नका विचार नहीं करेंगे। क्योंकि आज हमें तालीमके प्रश्नोंका विचार करना है, और वह भी अपनी तालीमकी दृष्टिसे नहीं परन्तु दूसरोंको तालीम देनेकी दृष्टिसे। अतः यहां हम तालीमकी योजना बनानेवाले और तालीम लेनेवाले अैसे दो पक्षोंको मानकर चल सकते हैं। अिसलिअे पहले सूत्रके परिणामस्वरूप दूसरा सूत्र नीचे पेश करता हूं :

२. तालीमका अर्थ है तालीम ग्रहण करनेवालोंके जीवनको अिस तरह गढ़नेका प्रयत्न, जिससे तालीमकी योजना करनेवालोंको यह अनुभव हो कि अुनके और तालीम ग्रहण करनेवालोंके जीवनके बीच तथा समाजके विभिन्न अंगोंके बीच मेल है।

अिस तरह तालीमकी योजना करनेवालोंके दो भाग हो जाते हैं : (१) अपने और तालीम ग्रहण करनेवालोंके जीवनके बीच सामंजस्य साधनेका प्रयत्न करनेवाले; और (२) समाजके अलग अलग अंगोंके बीच सामंजस्य साधनेका प्रयत्न करनेवाले।

पहले प्रकारके तालीम देनेवालोंके कुछ अुदाहरण देता हूं : घोड़े या बैलको तालीम देनेवाला मालिक अुसे तालीम देनेके लिअे अैसे अुपाय काममें लेता है, जिससे वह प्राणी अुसके वशमें रहे और अुसका अधिकसे अधिक काम करे। अुस प्राणीका जीवन वह अिस ढंगसे गढ़नेका प्रयत्न करता है कि जिससे अुसके जीवनके साथ अुस प्राणीके जीवनका मेल सधे।

अिसी प्रकार राज्यका तालीम-विभाग अैसी ही पद्धतिसे प्रजाको तालीम देता है, जिससे प्रजाका जीवन सरकारके अस्तित्वसे मेल खानेवाला बने।

अिसी न्यायसे बहुत बार यह देखनेमें आता है कि विशेष वर्ग आम जनताका, पुरुष-वर्ग स्त्रीवर्गका और बुजुर्ग लोग बालकोंका जीवन

तालीम द्वारा अिस ढंगसे गढ़नेका प्रयत्न करते हैं कि तालीम देनेवालोंके जीवनके साथ तालीम प्राप्त करनेवालोंके जीवनका मेल सधे।

अिस तरह, सामंजस्य सधे अैसे ढंगसे किसीके जीवनको गढ़नेका प्रयत्न करनेमें ही दोष नहीं है, परन्तु अिसमें तालीम देनेवालेका दृष्टिबिन्दु यदि अैसा हो जिसके फलस्वरूप तालीम देनेवाले और तालीम लेनेवालेके बीच सदा स्वामी और दासका ही सम्बन्ध बना रहे तो अन्याय होता है।

परन्तु अिस तरह :

३. अपने जीवनमें परिवर्तन किये बिना दूसरेके जीवनको अपने अनुकूल बनानेकी दृष्टिसे गढ़नेके प्रयत्नमें साधारणतः भय, लालच, खुशामद, भ्रमका पोषण, सत्यका छिपाव अथवा असत्य-कथन आदि अुपाय तालीमकी पद्धतिके अंग बनते हैं और मनुष्यकी धर्म, भक्ति, प्रेम, कृतज्ञता आदिकी सारी कोमल भावनाओंका अनुचित लाभ भी अुठाया जाता है।

अिस न्यायसे राज्योंने प्रजाओंको झूठा अितिहास, धर्मोपदेशकोंने अनुयायियोंको झूठी श्रद्धायें, पुरुषोंने स्त्रियोंको अपने प्रति झूठी भक्ति आदि सिखानेके जो प्रयत्न किये हैं अुन्हें सब कोअी जानते हैं।

परन्तु आखिरमें असत्य टिकता नहीं। जल्दी या देरसे असंतोष प्रकट होता ही है और विद्रोह जाग अुठता है।

प्रजाओंका अपनी सरकारके खिलाफ विद्रोह, आम वर्गोंका खास वर्गोंके खिलाफ विद्रोह, स्त्रियोंका पुरुषोंके खिलाफ विद्रोह, युवकोंका वृद्धोंके खिलाफ विद्रोह, अनुयायियोंका अपने धर्मगुरुओंके खिलाफ विद्रोह —ये सब विद्रोह कुछ हद तक अूपर बताअी स्वार्थपूर्ण दृष्टिसे मेल साधनेके प्रयत्नका परिणाम हैं। और हम आशा रखें कि किसी दिन पशु भी मानव-समाजके खिलाफ अैसा विद्रोह करेंगे।

अैसा विद्रोह जब होता है, तब बहुत बार तालीमकी अिस पद्धतिके कुछ अच्छे परिणाम भी दोषोंके साथ नष्ट हो जाते हैं।

अिसका यह मतलब न समझा जाय कि तालीमकी योजना करनेवाले लोग सदा अिस तरह जान-बूझकर — हिसाब लगाकर — गलत

ढंगसे शिक्षण देते हैं। परन्तु अपने ही वर्गमें संपूर्ण मानव-समाज समा जाता है और अपनी जीवन-पद्धति ही सबसे अुत्तम है, अुसीमें प्राणी-मात्रका कल्याण निहित है, अैसी अपूर्ण दृष्टिके कारण यह अनायास ही हो जाता है। अिस अपूर्ण दृष्टिका कारण, जैसा आरंभमें कहा था, जीवनकी गलत स्थानसे की हुअी जांच है।

संपूर्ण सृष्टिके जीवनको पूर्ण रूपसे, अुसके सच्चे सम्बन्धोंमें और किसी भी विशेष वर्गके जीवनके लिअे ममत्व रखे बिना तटस्थ वृत्तिसे कोअी देख सकता है या नहीं अिसमें शंका है; और अैसा कोअी पुरुष निकल आये तो भी अुसके तालीमके सिद्धान्तोंको दूसरे स्वीकार करेंगे या नहीं अिसमें भी शंका है। फिर भी अितना तो कहा ही जा सकता है कि:

४. यथासंभव निःस्वार्थ और विशाल दृष्टिबिन्दुसे प्रामाणिक रूपमें जीवनका विचार करके तालीमकी योजना अिस तरह करनी चाहिये कि समाजके सर्व अंगोंके बीच सबका समान हित करनेवाला मेल सधे।

यदि अैसा प्रयत्न सच्चा हो तो तालीमकी योजना करनेवाला भले गलतियां करे, भले जिसे वह विशाल और सबका हित करने-वाली दृष्टि समझता था वह बादमें संकुचित दृष्टि सिद्ध हो, फिर भी अुससे किसीकी हानि नहीं होगी। क्योंकि अैसा मालूम होते ही वह तालीमकी दिशा बदलनेके लिअे, और किसी अेक ही वर्गको जीवनका आदर्श न मानकर अुस वर्गके जीवनको भी बदलनेके लिअे तैयार रहेगा।

यदि अूपरके चार सूत्रोंके बारेमें कोअी मतभेद न हो तो स्त्रियोंकी प्रस्तुत तालीमके बारेमें नीचेके दो सूत्र निकलते हैं:

५. भले हमारे सामने मध्यमवर्गकी स्त्रियोंकी तालीमका प्रश्न मुख्य हो, फिर भी वह तालीम आम वर्गकी स्त्रियोंके जीवनके साथ मेल खानेवाली होनी चाहिये। आम वर्ग और खास वर्गके बीच कोअी विरोध न होना चाहिये और अिसलिअे खास वर्गका जीवन गढ़नेमें आवश्यक परिवर्तन करनेकी तैयारी होनी चाहिये।

और,

६. तालीमकी योजनामें पुरुष या स्त्री दोमें से किसी अेकको प्रधानपद देनेवाले दृष्टिबिन्दुसे जीवनका विचार नहीं होना चाहिये, परन्तु दोनोंके जीवनको अेकसा महत्त्व देकर दोनोंके बीच मेल साधनेका प्रयत्न होना चाहिये। अिसलिअे पुरुषकी तालीमकी पद्धतिमें स्त्रीके हितका विचार और स्त्रीकी तालीमकी पद्धतिमें पुरुषके हितका विचार होना चाहिये।

अिस परसे यह भी सुझाया जा सकता है कि :

७. पुरुषकी तथा स्त्रीकी तालीमकी योजना पुरुष तथा स्त्री दोनोंको मिलकर बनानी चाहिये। तथा अुसमें आम वर्गोंके हितोंको समझनेवाले लोगोंका भी हाथ होना चाहिये। परन्तु अैसे योजनाकार केवल अपने वर्गके प्रतिनिधियोंके नाते ही विचार करनेकी आदत छोड़ दें और यथासंभव सारे वर्गोंसे परे रहकर विचारनेकी आदत डालें।

विचारके लिअे अितने सिद्धान्त स्वीकार करके अब हम स्त्रियोंकी तालीमके अेक अेक मुद्देकी चर्चा करेंगे।

सबसे पहले तो आम वर्गों और मध्यमवर्गके जीवनमें पाये जाने-वाले कुछ बड़े भेदोंको ध्यानमें लेना आवश्यक है, और यह स्वीकार करनेकी आवश्यकता है कि आम वर्गोंका जीवन सही स्थितिके अधिक समीप है।

वे भेद अिस प्रकार हैं :

(क) आम वर्गोंमें स्त्री और पुरुष लगभग समान भूमिका पर होते हैं। स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषका ज्ञान, श्रद्धा, विचारसरणी, रूढ़ियोंके बन्धन आदि अधिक अूंची स्थिति पर नहीं होते। दोनोंका ज्ञान और अज्ञान अेकसा होता है।

(ख) आम वर्गोंमें स्त्री और पुरुष दोनों लगभग अेकसी स्वतंत्रता भोगते हैं। विवाह और तलाकके विषयमें दोनोंको बहुत हद तक समान अधिकार प्राप्त हैं। दोनों गांवमें और समाजमें अेकसी आजादीसे घूमते हैं; दोनोंमें चरित्रकी शुद्धि या शिथिलता अेकसी

होती है। पुरुषकी शुद्धिके लिअे अधिक पूज्यभाव और शिथिलताके लिअे अधिक अुपेक्षा-भाव तथा स्त्रीकी शिथिलताके लिअे अधिक दंड या तिरस्कार नहीं होता। पुरुष और स्त्रीमें अपने लिंगभेदका भान, दूसरे वर्गोंकी तुलनामें, कम प्रकट होता है। यदि अिन बातोंमें कोअी असमानता अुत्पन्न हुअी हो तो वह विशेष वर्गोंकी नकल अथवा विशेष वर्गोंके प्रयत्नोंसे पोषित संस्कारोंका परिणाम है।

(ग) आम वर्गोंमें पुरुष और स्त्री दोनों अेकसा परिश्रम करते हैं। स्त्री अपने निर्वाहके लिअे विवाह या पुनर्विवाह नहीं करती, और विवाहसे पुरुषका बोझ बढ़ता नहीं या दोनों पर अेकसा बढ़ता है। अिस कारणसे स्त्रीका वैधव्य निर्वाहकी दृष्टिसे आपत्तिरूप नहीं बनता; वियोगकी दृष्टिसे भले आपत्तिरूप हो।

(घ) आम वर्गोंमें पुरुषकी दृष्टि अधिक विशाल है और स्त्रीकी संकुचित है, अथवा पुरुष अधिक लाभ-हानिका विचार करनेवाला और स्त्री भावनावश होती है अैसा बहुत हद तक नहीं कहा जा सकता। हृदयकी विशालता या संकुचितता तथा लाभ-हानिके विचार और भावनावशताकी दृष्टिसे आम जनताका वर्गीकरण किया जाय, तो संभव है प्रत्येक वर्गमें स्त्रियां और पुरुष समान संख्यामें निकल आयेंगे।

अिसका यह अर्थ नहीं कि आम जनतामें पुरुष और स्त्रीका दर्जा बिलकुल समान है। स्त्री अपने अधीन रहे अिस प्रकार अुसे गढ़नेका प्रयत्न पुरुषने किया ही है और अिसमें आम वर्गोंके पुरुष अपवादरूप नहीं हैं। फिर भी अैसी असमानता जितनी विशेष वर्गमें होती है अुतनी आम वर्गमें नहीं होती और अिस मामलेमें आम वर्ग सही स्थितिके अधिक निकट है। अिसलिअे :

८. ज्ञान, धर्म, चरित्र, भावना-बल और व्यवहार-दृष्टिमें पुरुष और स्त्रीकी योग्यता समान रहे, अिस ढंगसे दोनोंकी तालीमकी योजना की जानी चाहिये; गांव और समाजमें घूमनेकी तथा विवाह और तलाककी अनुकूलता दोनोंको अेकसी होनी चाहिये। और निर्वाहके लिअे या गृह-व्यवस्था रखनेके लिअे विवाह या पुनर्विवाह करना

अनिवार्य न हो जाय, अपना निर्वाह करनेकी अितनी शक्ति स्त्रीमें और गृह-व्यवस्था रखनेकी अितनी शक्ति पुरुषमें होनी चाहिये।

श्रमके विषयमें आम वर्ग और विशेष वर्गके बीच अेक दूसरा भेद भी है, और अुसमें भी आम वर्ग अुचित स्थितिके अधिक निकट है अैसा मालूम होगा। वह यह कि:

(ङ) आम वर्गमें स्त्री और पुरुषके बीच श्रमभेद अवश्य है, परन्तु वह दृढ़ नहीं है। कुछ काम सामान्यतः स्त्रियां करती हैं और कुछ सामान्यतः पुरुष करते हैं। फिर भी आवश्यकता पड़ने पर स्त्रियोंके काम पुरुष कर लेते हैं और पुरुषोंके काम स्त्रियां कर लेती हैं। अुदाहरणके लिअे, सामान्यतः निराअी करना, दूध दुहना, छाछ बिलोना, घी बनाना तथा कताअी और बुनाअीकी अुपक्रियाअें स्त्रियोंके काम होते हैं और खेत जोतना, बीज बोना, फसल काटना, कपड़ा बुनना आदि पुरुषोंके काम होते हैं। परन्तु अेकका काम दूसरा बिलकुल न करे अैसा नहीं होता।

(च) अिसके अलावा, यह श्रमभेद अेक ही धंधेकी अलग अलग क्रियाओंमें होता है। पुरुष खेती करे और स्त्री दरजीका काम करे अैसा श्रमभेद आम वर्गमें नहीं होता। विशेष वर्गमें स्त्री और पुरुष दोनों निर्वाहके लिअे धन्धा करनेवाले हों तो भी अुनके धन्धे अेक-दूसरेसे बिलकुल स्वतंत्र हो जाते हैं। अुदाहरणके लिअे, पुरुष कारकुन होगा और स्त्री नर्स होगी, पुरुष दुकानदार होगा और स्त्री शिक्षिका होगी। अिस कारण अेकका स्थान दूसरा नहीं ले सकता।

९. पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर अेक ही धन्धा चलायें, अिस तरह पुरुष और स्त्रीकी तालीमकी योजना की जाय और विवाहमें भी यह दृष्टि रखी जाय यह वांछनीय है।

आज तक साधारणतः पुरुष स्त्री पर प्रभुत्व भोगता रहा है, अिसलिअे पुरुष अयोग्य हो तो भी अुसमें श्रेष्ठताका मिथ्याभिमान और स्त्री कुशल हो तो भी अुसमें हीनताकी झूठी भावना पोषित हुअी है। अिस कारणसे अपना पति कुशल हो और स्वयं मन्द हो तो भी स्त्रीको पतिसे अीर्ष्या नहीं होती या पतिकी कुशलताको दबा

देनेकी अथवा अुसके प्रति शंकाकी दृष्टिसे देखनेकी वृत्ति स्त्रीमें पैदा नहीं होती। परन्तु पुरुष मूढ़ हो और स्त्री कुशल हो, तो भी पुरुष अपनी प्रभुताको बनाये रखने और स्त्रीकी कुशलताको दबा देनेका प्रयत्न करता है और अुसे शंकाकी दृष्टिसे देखता है।

१०. पुरुषमें पोषित श्रेष्ठताका झूठा अभिमान और स्त्रीमें पोषित हीनताकी झूठी भावना — ये दोनों संस्कार विघातक हैं, अिसलिअे अुन्हें दूर करना चाहिये।

वास्तवमें, कभी पुरुष बुद्धिशाली हो सकता है तो कभी स्त्री। अिसलिअे स्त्री जिस तरह अपने बुद्धिशाली पतिके लिअे गौरव अनुभव करती है, अुसी तरह पुरुषको भी अपनी पत्नीकी बुद्धिमत्ताके लिअे गौरव अनुभव करना चाहिये और अुसके सहायककी तरह काम करनेके लिअे तैयार रहना चाहिये।

कुछ संस्थायें अध्यक्षकी कुशलताकी वजहसे अच्छी तरह चलती हैं, कुछ मंत्रीकी कुशलताकी वजहसे; किसी समय अध्यक्ष कुशल मंत्रीके कहे अनुसार चलता है, तो किसी समय मंत्री अध्यक्षकी आज्ञामें रहकर काम करता है। यदि दोनोंमें से अेकको भी अपने पदका झूठा अभिमान न हो तो दोनोंके बीच ठीक मेल बैठता है और संस्था अच्छा काम कर सकती है। अिसी तरह :

११. पुरुष और स्त्रीके बीच आपसमें किसी संस्थाके अध्यक्ष और मंत्रीके जैसा सम्बन्ध होना चाहिये और दोनोंमें से जो अधिक कुशल हो अुसके कहे अनुसार काम करनेमें दूसरेको हीनताका अनुभव नहीं होना चाहिये। तालीमको अैसा संस्कार निर्माण करना चाहिये।

आज तक पुरुषोंके मनमें यह खयाल रहा है कि स्त्रियोंको दबानेका अुन्हें अधिकार है और दबकर रहना स्त्रियोंका कर्तव्य है। अिसलिअे जिसे दबा न सके अैसी अपनेसे अधिक कुशल स्त्रीसे विवाह करना पुरुष पसन्द नहीं करता। परन्तु यदि अूपर कहे अनुसार दोनोंके संस्कार बदलें और पुरुष या स्त्री अेक-दूसरेको धन, शारीरिक शक्ति या विद्यासे दबानेके बदले केवल अेक-दूसरेके प्रेमके वश रहनेमें ही सन्तोष मानें, तो स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें कम विद्या होनेसे वह पति बननेके

लिअे अयोग्य नहीं माना जायगा। स्त्री डॉक्टर हो और पति कम्पाअुण्डर हो, स्त्री अध्यक्ष हो और पति अुसका मंत्री हो, अिसमें कुछ अनुचित माननेका खास कारण नहीं है। पति-पत्नीमें दूसरे गुण हों तो अैसे सम्बन्धको बेजोड़ माननेका कोअी कारण नहीं है।

अितना पुरुष और स्त्रीकी समानताकी दृष्टिसे विचार हुआ। अब पुरुष और स्त्रीके बीचके नैसर्गिक भेदोंका तथा अुन भेदोंके कारण अुत्पन्न होनेवाले खास अलग कार्योंका विचार करें।

अिन नैसर्गिक भेदोंमें मुख्य भेद स्त्रीके मातृपदसे सम्बन्ध रखता है। अिसमें विशेषता यह है कि स्त्री चाहे तो मातृपदको टाल सकती है, परन्तु पुरुष अुसे स्वीकार नहीं कर सकता। अर्थात् पुरुष पूर्ण रूपसे स्त्री नहीं बन सकता, जब कि स्त्री पुरुषके जैसा जीवन व्यतीत कर सकती है। अिसलिअे :

१२. स्त्रीके लिअे पूर्णतया पुरुषके जैसा जीवन व्यतीत करना असंभव नहीं है; और अिसलिअे जो स्त्री पुरुषके ही कार्य करना चाहे अुसे वैसा करनेसे रोका नहीं जा सकता। अतः स्त्रीको पुरुषके जैसी तालीम लेनेकी स्वतंत्रता होनी चाहिये।

परन्तु अिस प्रकार स्वतंत्रता होते हुअे भी हमें यह समझ लेना चाहिये कि अैसी स्त्रियां अपवाद ही मानी जायंगी। ९५ प्रतिशत स्त्रियां तो मातृपद स्वीकार करनेवाली ही होंगी। अतः,

१३. स्त्रीको मातृपद ग्रहण करना है, अैसा मानकर ही स्त्रियोंकी तालीमकी योजना की जानी चाहिये।

परन्तु मातृपदके स्वीकारके साथ ही स्त्रीकी स्वतंत्रता कुछ हद तक मर्यादित हो जाती है और अुस पर कुछ विशेष कर्तव्य आ पड़ते हैं। अुदाहरणके लिअे, अुसकी गांव और समाजमें घूमने-फिरनेकी स्वतंत्रता कम होती है, अुसे गृह-व्यवस्था और बाल-संगोपन पर ध्यान देना पड़ता है। अिसलिअे सार्वजनिक कार्योंमें वह पुरुष जितना भाग नहीं ले सकती तथा अुसके लिअे पुरुषकी अपेक्षा कम श्रमका और घरमें ही या घरके समीप ही हो सके अैसा धन्धा करना आवश्यक

हो जाता है। फिर, सामान्यतः मातृपदका बोझ जल्दी आ जानेसे स्त्रीको पुरुषकी अपेक्षा शालाकी तालीमके लिअे कम समय मिलता है।

घरमें कम बन्द रहनेके कारण, सार्वजनिक कार्योंमें अधिक भाग ले सकनेके कारण, समाजमें अधिक घूमनेकी स्वतंत्रता मिलनेके कारण, तथा बड़ी अुम्र तक तालीम प्राप्त करनेकी सुविधा प्राप्त होनेके कारण विशाल दृष्टि बढ़ानेके लिअे पुरुषको जो अवसर मिलता है वह स्त्रीको नहीं मिलता। अिससे पुरुष और स्त्रीके बीच विचारोंका अन्तर बढ़ता है। परन्तु अिसके साथ ही मातृपद स्त्रीमें कर्तव्यका अेक अैसा भान जगाता है, जिसके कारण अुसका जीवन अधिक स्वार्थत्यागी और भावनापूर्ण बनता है। मातृपदके अिन दो अनिष्ट और अिष्ट परिणामोंका मेल बैठाया जा सके, तो पुरुषकी अपेक्षा स्त्री समाजमें हर तरहसे अूंचा स्थान प्राप्त कर सकती है। यह मेल बैठानेके लिअे नीचेकी परिस्थितियां अुत्पन्न करना मुझे आवश्यक मालूम होता है:

१४. विवाहकी आयुको काफी आगे बढ़ा देना चाहिये। (लगभग २०–२२ वर्ष तक, और १८ वर्षसे कम तो हरगिज नहीं।)

१५. दो सन्तानोंके बीच काफी अंतर रहे, अिस तरह संयमका पालन किया जाना चाहिये। (लगभग पांच वर्षका अन्तर रहना चाहिये, तीन वर्षसे कम तो कभी नहीं।)

१६. दो-तीन बालक हो जानेके बाद पूर्ण संयमका पालन करना चाहिये।

१७. पुरुषकी शिक्षामें भी बाल-संगोपन और गृह-व्यवस्थाके कुछ अंगोंका समावेश करना चाहिये, जिससे वह स्त्रीको अिस कार्यमें सहायता दे सके।

यदि अैसी परिस्थितियां अुत्पन्न की जायं, तो मुझे लगता है कि स्त्री किसी भी दृष्टिसे न केवल पुरुषके पीछे नहीं रहेगी, प्रत्युत अुससे आगे चलेगी। अिससे स्त्रीका जीवन कम झंझटोंवाला, कम क्षीण होनेवाला, अधिक सन्तुष्ट और अधिक सुखी बनेगा। नैतिक

और आध्यात्मिक दृष्टिसे ही नहीं, बल्कि आर्थिक दृष्टिसे भी ये परिस्थितियां पुरुष और स्त्री दोनोंके लिअे लाभदायक सिद्ध होंगी।

अिनमें से विवाहकी आयु बढ़ानेका और पुरुषको बाल-संगोपन तथा गृह-व्यवस्थाकी कुछ शिक्षा देनेका प्रबन्ध तो हो सकता है, परन्तु संयमका पालन बहुत हद तक स्त्री-पुरुष अपने विचारसे ही कर सकते हैं। तालीम देनेवाले केवल अैसे विचारोंका संस्कार डालनेका काम कर सकते हैं। वर्षों पूर्व संयुक्त परिवारकी जीवन-पद्धति तथा पत्नीको अुसके पिताके घर भेजने-लानेकी जो प्रथा प्रचलित थी, वह कुछ हद तक अैसे संयमका पोषण करनेवाली थी। परन्तु आज अुसका लोप हो जानेसे स्त्रीकी स्थिति अत्यन्त दयाजनक हो गअी है। सवा या डेढ़ वर्षके अन्तर पर बालक पैदा होते रहें, अेक भी बालककी अच्छी तरह सार-संभाल न हो सके, अैसे ६–७ बालकोंको जन्म देकर माता क्षीण होकर मर जाय, अथवा पिता मृत्युका शिकार हो जाय और माता विधवा हो जाय — यह स्थिति हृदयको चीर देनेवाली है। अिसे रोकनेके लिअे :

१८. स्त्रीको अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर पुरुषके अतिक्रमणके वश न होना सिखाना चाहिये, और यह अुसका कर्तव्य भी है। स्त्रियोंमें आयी हुअी जाग्रति पुरुषोंके अैसे अतिक्रमणके खिलाफ स्त्रियोंमें विद्रोह पैदा करे यह वांछनीय है।

परन्तु स्त्री-जातिमें पैदा हुअी यह जाग्रति अेक दूसरी बातका स्मरण कराती है। अूपर मैंने कहा है कि स्त्रियोंकी तालीम अैसी होनी चाहिये, जिससे स्त्री स्वयं अपना निर्वाह कर सके। आयी हुअी जाग्रतिके फलस्वरूप तथा अपना निर्वाह करनेकी शक्ति आ जानेके कारण आज दो प्रकारके विचार स्त्रियोंमें पैदा हुअे हैं :

(१) अविवाहित स्वतंत्र जीवन बितानेकी अिच्छा। और (२) स्वतंत्र कमाअी करनेकी अिच्छा।

ये दो विचार कहां तक ठीक हैं, अिसकी चर्चा करना आवश्यक है।

हम अूपर देख चुके हैं कि आम वर्गकी स्त्रियोंमें अपना निर्वाह करनेकी शक्ति होती है। फिर भी अुनमें अविवाहित स्वतंत्र जीवन बितानेकी अिच्छा नहीं दिखाअी देती। यह मनोदशा विशेष वर्गकी स्त्रियोंमें बढ़ती जाती है। ९५ प्रतिशत स्त्रियोंके लिअे यह मनोदशा प्रकृति-धर्मका परिणाम नहीं होती, बल्कि अुससे विपरीत होती है। किसी विशेष आदर्शसे प्रेरित होनेवाले २–४ प्रतिशत स्त्री-पुरुष अैसे हो सकते हैं, जिन्हें कौटुम्बिक जीवन बितानेकी लालसा न हो; प्रकृति-धर्म बताता है कि ९५ प्रतिशत मनुष्योंमें तो यह लालसा होती ही है। किसी विशेष कारणसे अिस लालसाका संयम करना पड़े यह दूसरी बात है। परन्तु यह संयम प्रयोजन तक ही सीमित रहता है। प्राणीमात्रमें सामान्यतः यह लालसा अितनी तीव्र होती है कि अिसके लिअे वे खतरेमें पड़ने, झंझटें मोल लेने और कड़ा परिश्रम करनेके लिअे तत्पर होते हैं। मानव-प्राणी अिसका अपवाद नहीं है। अपना कुटुम्ब बढ़ाना, कुटुम्बी-जनोंका पालन-पोषण करना, अुनके लिअे कड़ा परिश्रम करना, थोड़ी मुसीबतें भी झेलनी पड़ें तो अुसके लिअे तैयार रहना — अिस सबको अत्यन्त प्रतिकूल संयोग न हों तो सामान्यतः मनुष्योंका बड़ा भाग आफत नहीं मानता, बल्कि अुसमें अपने पुरुषार्थका विकास मानता है।

परन्तु मध्यमवर्गकी स्त्री यह बोझ अुठाना नापसंद करने लगी है। यह बताता है कि मध्यमवर्गके जीवनमें कोअी रोग घुस गया है। अुस वर्गमें स्त्री-जाति पर कौटुम्बिक जिम्मेदारियोंका बोझ अितना बढ़ गया है और विवाहित जीवनकी बेड़ी अितनी सख्त है कि अुसकी कल्पनासे ही स्त्री घबरा अुठती है और अुसकी कौटुम्बिक जीवन बितानेकी लालसा दब जाती है। अिससे यह भी मालूम होता है कि मध्यमवर्गमें पुरुषका जीवन कौटुम्बिक विषयोंमें अितना स्वार्थी और अविचारी होता है कि जिस कौटुम्बिक बोझको बढ़ानेमें वह नेतृत्व करता है, अुसके प्रति अपने कर्तव्योंका वह पूरा पालन नहीं करता। अिसके फलस्वरूप स्त्री अिस भारी बोझके नीचे दब जाती है।

विचारने पर मालूम होगा कि ये दोनों बातें सही हैं। अिसके लिअे पुरुषकी तालीममें सुधार करना चाहिये। पुरुष द्वारा कौटुम्बिक कर्तव्योंका पालन आजसे अधिक करानेकी और अुन कर्तव्योंका स्त्री पर जो अत्यधिक बोझ आज पड़ता है अुसे कम करनेकी आवश्यकता है। अैसा हो तो तालीम अथवा स्वनिर्वाहकी शक्तिका अर्थ कौटुम्बिक जीवनके प्रति घृणा नहीं होगा। *

स्त्री-जाग्रतिके फलस्वरूप स्वतंत्र अुपार्जन करनेकी अिच्छा मध्यम-वर्गमें बहुत प्रबल होती दिखाअी देती है। यह अिच्छा केवल नअी पीढ़ीकी बालाओंमें ही नहीं, परन्तु प्रौढ़ वयकी स्त्रियोंमें भी घर कर रही है।

स्त्रीमें स्वनिर्वाहकी शक्ति होना अेक बात है, और अपनी स्वतंत्र कमाअीका आग्रह रखना दूसरी बात है। पहली बात अुसे साधन-सम्पन्न रखती है, परन्तु अुस साधनका अनिवार्यतः अुपयोग करना अुसके लिअे सदा आवश्यक नहीं होता। जो पुरुष स्त्रीके साथ कुटुम्बका भार अुठाता है, अुस पुरुषकी कमाअीमें स्त्रीका हाथ होगा ही। अुसके सिवाय अुस स्त्रीके लिअे अैसा कोअी धंधा करना आवश्यक नहीं होना चाहिये, जिससे अुसकी अपनी कमाअी अलगसे दिखाअी दे।

परन्तु अिसमें भी दोष स्त्रियोंकी तालीमका नहीं, बल्कि पुरुषोंकी तालीमका है।

---

* कौटुम्बिक जीवनके प्रति घृणा और वैराग्य अिन दोके बीच गलतफहमी नहीं होनी चाहिये। संसारकी झंझटों और मुसीबतोंसे घबराकर संसारके प्रति अरुचि अुत्पन्न होना वैराग्य नहीं है; सांसारिक जीवनसे अधिक अूंचे जीवनमें रस मालूम होनेके कारण सांसारिक जीवनके प्रति अुत्पन्न होनेवाली अुदासीनता वैराग्य है। यह वैराग्य कौटुम्बिक जिम्मेदारियोंको घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखता। परन्तु अपना कुटुम्ब हो तो ही ये जिम्मेवारियां मैं अुठा सकता हूं — अितने संकुचित विचारोंका न होनेसे अैसा मनुष्य अपना घरबार और कुटुम्ब खड़ा करनेका प्रयत्न नहीं करता।

स्त्रियोंमें अैसी अिच्छा प्रबल होती जाती है, यह बताता है कि (१) स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध जितना हार्दिक और विश्वासपूर्ण होना चाहिये अुतना नहीं है; और (२) अुसमें पुरुषका जीवन अधिक स्वार्थी और कृतघ्नतापूर्ण है, अैसी स्त्रीको प्रतीति होती जाती है।

आज नीचेकी भावनायें स्त्री-समाजमें फैलती जा रही हैं, अिससे अिनकार नहीं किया जा सकता :

"हम लग्न-विडम्बनाके पंथ पर कभी हांकी नहीं जायंगी; हम गूंगी भेड़ोंकी तरह किसीके बताये रास्ते पर कभी नहीं चलेंगी। विवाहके जिस करारसे हमें रोटीके टुकड़ेसे थोड़ा भी ज्यादा नहीं मिला, अुस अनावश्यक करारमें हम कभी नहीं बंधेंगी। हम युगोंसे पुरुषोंके अधीन रही हैं, तो भी हमने पुरुषोंमें कृतघ्नताके सिवाय और कुछ नहीं देखा। हमने अुनकी सेवा की और अुन्हें प्यार किया, और अुनकी बहुत सहायता की। परन्तु हाय! पुरुषोंने अिन सबको धर्म और रूढ़िका रूप दे दिया और हमें गुलामीकी बेड़ियोंमें जकड़ दिया। *

कौटुम्बिक और सामाजिक जीवनके लिअे यह स्थिति स्वास्थ्यकी सूचक नहीं है। परन्तु अिस स्थितिको सुधारनेका अुपाय केवल स्त्रियोंमें 'सुसंस्कार' डालना और सीता, सावित्री जैसी महान सतियोंके स्वार्थ-त्यागी जीवनोंको आदर्शके रूपमें अुनके समक्ष रखना नहीं है। पुरुषको स्त्रीका विश्वास प्राप्त करनेके लिअे अपना जीवन सुधारना ही होगा और जब तक दोनोंके बीच हार्दिक सम्बन्ध स्थापित न हों तब तक अिस प्रश्नका अैसा निबटारा करना होगा जिससे स्त्रीको सन्तोष हो।

यह निबटारा कुछ हद तक नीचे बताये गये ढंगसे हो सकता है :

१९. जो स्त्री कौटुम्बिक सुविधाके लिअे स्वतंत्र आजीविका कमानेका परिश्रम न कर सके, अुसका कौटुम्बिक आयके अमुक भाग पर

---

* गुजरातीके 'अुषा' मासिकमें प्रकाशित अेक अंग्रेजी कविताके गुजराती अनुवादका हिन्दी रूपान्तर।

अधिकार स्वीकार करना चाहिये, और अमुक प्रसंगोंमें वह भाग अुसे अलगसे मिल सकना चाहिये। अिसकी व्यवस्था 'पल्लेकी रकम'* की तरह विवाह होनेसे पहले करारके द्वारा हो सकती है। अैसी व्यवस्था आग्रहपूर्वक करवानेके लिअे स्त्रीको सिखाना चाहिये।

अिस सुझावके खिलाफ कोअी यह आपत्ति अुठा सकते हैं कि हिन्दू धर्मकी विवाहकी आध्यात्मिक भावनामें अैसे आर्थिक विषयको मिला देनेसे वह आदर्श नीचे गिर जायगा। अभी तक तो केवल पुरुष ही लाभ-हानिका विचार करनेवाला बना है, अब स्त्रीमें भी यह वृत्ति पैदा करके अुसे आदर्शसे नीचे गिराना अुचित नहीं है।

परन्तु यह टीका ठीक नहीं है। जैसे ब्रिटिश सरकार हमसे कहे कि हमारी सज्जनता पर विश्वास रखो और लाभ-हानिका विचार करना छोड़ दो, तो अुनके आज तकके बरतावके कारण अुनकी बात पर हमारी श्रद्धा नहीं जमेगी, वैसे ही पुरुषकी सज्जनता पर विश्वास रखनेको स्त्रीसे कहा जाय तो अिस बात पर अुसकी श्रद्धा नहीं बैठेगी; और अिसमें दंभकी गंध आती है।

अिसके अलावा, यदि हिन्दू विवाहकी आध्यात्मिक भावना कन्या-विक्रय, वर-विक्रय और 'पल्लेकी रकम' के करारोंमें बाधक नहीं होती, तो अूपरकी व्यवस्था करनेमें कोअी विशेष नीचा करार किया जाता है यह नहीं कहा जा सकता। 'पल्लेकी प्रथा' के पीछे जो हेतु है, वही अिस व्यवस्थाके पीछे भी है।

अैसी व्यवस्था आध्यात्मिक भावनाके मार्गमें नहीं आती। यदि परिवारमें अेकता और हार्दिक सम्बन्ध बढ़े तो यह केवल कागज पर ही लिखी रहेगी। यदि हार्दिक सम्बन्ध न बढ़े तो अिस व्यवस्थाके रहनेसे स्त्रीके साथ अन्याय नहीं होगा और अुसे पुरुषकी दया पर नहीं जीना पड़ेगा।

---

* विवाहसे सम्बन्ध रखनेवाली गुजरातकी अेक प्रथा, जिसके अनुसार वरकी ओरसे वधूको स्त्री-धन दिया जाता है। अिसे वह संकटके समय खर्च कर सकती है।

यदि स्त्रीके लिअे अितनी सुविधा हो सके, तो कुटुम्बके बोझकी कल्पनामात्रसे आज अुसे जो घबराहट होती है वह घबराहट कम हो जायगी, पुरुषको भी गृह-व्यवस्थामें अधिक सहयोग देना पड़ेगा, अविचार-पूर्ण कुटुम्ब-वृत्ति पर संयम रखना पड़ेगा और संयुक्त कुटुम्बके लिअे आज सामान्यतः स्त्रीमें जो अरुचि पाअी जाती है अुसका भी अेक कारण कम होगा। अिस प्रकार स्वाधीनताके विश्वासवाली स्त्री ही यह कह सकेगी:

"अब तो नवयुवकों पर हमारी दृष्टि लगी हुअी है। हम दोनों कंधेसे कंधा मिलाकर साथ खड़े रहेंगे। यदि वे हमें गुलामीसे मुक्त कर दें तो हम अुनका अनोखा साथ देंगी। हम अुनके साथ रहकर समाजकी सहायता करेंगी, अुसकी सेवा करेंगी और अुस पर स्नेह बरसायेंगी। अिसे हम अपने जीवनका व्रत बना लेंगी और अपना धर्म मानकर अुसका पालन करेंगी। *

अब हम मध्यमवर्गकी स्त्रियोंके कुछ विशेष प्रश्नोंका विचार करें।

मैं कभी-कभी विनोदमें कहता हूं कि मर्यादी + वैष्णवके आचार अत्यन्त शुद्ध तो अवश्य होते हैं, परन्तु वह धर्म गरीबको नहीं पुसायेगा। अेक ही जोड़ कपड़ोंसे जिसका जीवन बीत रहा हो, वह दिनमें पांच बार स्नान करनेका धर्म कैसे पाल सकता है? वह भगवान्‌को मिश्री और दूधका भोग कैसे लगा सकता है? स्नान न कर सकने पर दूधकी ही पूड़ी खानेका धर्म वह कैसे निभा सकता है? जिसे आठ घंटे मजदूरी करनेके लिअे जाना पड़ता है, वह पांच-पांच मिनट पर हाथ धोनेका और आध घंटे तक नहानेका आचार कैसे पाल सकता है? परन्तु जिसके घरमें नौकर-चाकर हों, पैसा हो,

---

* अुपरोक्त अंग्रेजी कविताके अंतिम पदके गुजराती अनुवादका हिन्दी रूपान्तर।

+ आचरणकी शास्त्र, परम्परा आदि द्वारा निर्धारित मर्यादाका पालन करनेवाला।

जिसे समयका सदुपयोग करते न आता हो और दुरुपयोग करनेकी अिच्छा न हो, अुसे केवल दिन बितानेके लिअे 'मर्यादी' बन जाना चाहिये। अितना ही नहीं, बल्कि आधुनिक जन्तुशास्त्रका आश्रय लेकर प्राचीन 'मर्यादी' धर्ममें काफी वृद्धि भी करनी चाहिये।

परन्तु यदि आम वर्गके लोग 'मर्यादी' वैष्णवकी कंठी बांधें तो वे आफत ही मोल लेंगे।

मध्यमवर्गकी कुछ अैसी ही जान-बूझकर आफत मोल लेनेवालोंकी-सी स्थिति है। यह वर्ग अेंग्लो-अिण्डियनों जैसा है। अेंग्लो-अिण्डियन अंग्रेज बनना चाहते हैं, परन्तु अंग्रेज अुन्हें स्वीकार नहीं करते; और भारतीयोंको स्वयं अुन्होंने छोड़ दिया है। अुसी तरह मध्यमवर्गका अर्थ है धनिकोंके धर्मका अनुकरण करनेके प्रयत्नमें लगा हुआ आम वर्गका अलग पड़ा हुआ भाग।

जिस प्रकार 'मर्यादी' धर्म श्रीमानोंको ही पुसा सकता है, अुसी प्रकार कुलीनताके कुछ खयाल पैसेदारोंको ही पुसा सकते हैं। संसारके सारे देशोंमें अमीर या राजाकी विधवाको पुनर्विवाह करना अकुलीनता लगता है, क्योंकि विधवा रहनेसे अुसे पैसा, प्रतिष्ठा और कुलीनताका यश तीनों मिलते हैं और अिन तीनके आधार पर वह पतिका वियोग सह सकती है। विधवा-विवाहके अभावमें जो चिन्ता मध्यमवर्गको रहती है, वह श्रीमान वर्गको नहीं रहती।

मध्यमवर्ग श्रीमान लोगोंके धर्मका अनुकरण करनेमें 'लंबेके साथ जो बौना धाये, मरे नहीं तो मांदा हो जाये'की स्थितिमें आ पड़ा है। कुछ लोग शायद यह मानते हों कि आजका मध्यम-वर्ग अैसे धनिक वर्गका वंशज है, जिसकी आर्थिक दशा बिगड़ गअी है। परन्तु फिर भी मानव-प्रजाके बड़े भागका साथ छोड़कर अत्यन्त छोटेसे वर्गके धर्म स्वीकारनेमें और अुनसे चिपटे रहनेमें अुसने बुद्धिमानीका काम नहीं किया।

श्रीमंत स्त्रीको खुले बाजारमें निकलना, शरीर-श्रमके काम करना, बोझ अुठाना, खेतमें काम करने जाना आदि हीनताकी बात

लगे यह स्वाभाविक है। यह सब न करना अुसे पुसा सकता है। अैसा न करनेसे वह अपने धनका अुपभोग कर सकती है, दूसरोंको आश्रय दे सकती है और अुन पर अपनी सत्ता भी चला सकती है। अैसे जीवनको अपना आदर्श स्वीकार करनेसे मध्यमवर्गकी स्त्रीको पैसे-टके और शरीर-सम्पत्तिकी दृष्टिसे अधिक हानि अुठानी पड़ी है और बदलेमें लाभ अधिक नहीं हुआ है। बाहर निकलनेके लिअे सवारी मिल नहीं सकती और काम किये बिना छुटकारा नहीं है, अिसलिअे अुसके नसीबमें घरमें घुसे रहना और दरवाजा बन्द करके जितने काम किये जा सकें अुतने ही करना लिखा हुआ है।

अब वह घरसे बाहर तो निकल सकती है, परन्तु बैठकर किये जानेवाले काम करनेकी ही हिम्मत दिखा सकती है। लेकिन अैसे कामोंसे अधिक लोगोंका पोषण नहीं हो सकता।

मध्यमवर्गके स्त्री-पुरुष दोनोंके प्रश्नोंके पीछे वस्तुस्थिति यह है। अतः अुनके प्रश्नोंका विचार अैसे ही ढंगसे होना चाहिये कि वे अिस स्थितिसे बाहर निकल सकें। अर्थात् :

२०. पुनर्विवाह न करनेवाली स्त्री पुनर्विवाह करनेवाली स्त्रीसे अधिक कुलीनता दिखाती है, यह खयाल मनसे निकाल देना चाहिये।

और,

२१. खेतके, जंगलके और अन्य परिश्रमके धन्धोंमें मध्यमवर्गकी स्त्री धीरे-धीरे अभ्यस्त होकर जुड़ सके, अिस तरह अुसकी तालीमका प्रबन्ध करना चाहिये।

यदि ये विचार ठीक हों तो कहा जा सकता है कि :

२२. वनिता-विश्राम जैसी संस्थाकी कोअी स्त्री पुनर्विवाह करे तो वह संस्थाके लिअे बदनामीकी बात होगी, और अिसलिअे किसी स्त्रीकी पुनर्विवाह करनेकी स्पष्ट अिच्छाको दबा देनेका प्रयत्न करना चाहिये, तथा अपनी बहन या लड़की पुनर्विवाह करे तो कुलको बट्टा लगेगा — अिन विचारोंको गलत समझना चाहिये।

तथा,

२३. वनिता-विश्राम जैसी संस्थायें शहरके बाहर खेतों और जंगलोंके पास होनी चाहिये, अथवा यों कहा जाय कि खेतों और जंगलोंके पास भी अिन संस्थाओंकी शाखायें होनी चाहिये।

अन्तिम सूत्रमें विकल्प रखनेका कारण यह है कि शहरोंमें स्थित अैसी संस्थाओंकी अुपयोगिता होते हुअे भी, यदि गांवोंमें अुनकी शाखायें न हों तो वे पंगु जैसी रहेंगी, और मध्यमवर्गके प्रश्न हल करनेमें असमर्थ रहेंगी।

अब मैं शहरों और गांवों दोनोंमें शाखायें रखनेवाली अैसी संस्थाओंके कार्यक्षेत्रके बारेमें अपने विचार बताअूंगा।

२४. अैसी संस्थाकी प्रवृत्तियोंके दो विभाग होंगे : सामान्य और विशिष्ट।

सामान्य प्रवृत्तियां

१. गृह-अुद्योग : कताअी, पिंजाअी, सिलाअी, गुंथाअी आदि।
२. गृहकर्म : रसोअी-पानी, कलाअी, धुलाअी आदि।
३. गृह-मण्डन और स्वच्छता।

विशेष प्रवृत्तियां

१. बाल-संगोपन और कुमार-कुमारी छात्रालय।
२. बाल-मन्दिर और कुमार-मन्दिर।
३. स्त्रियों और बालकोंका शुश्रूषालय।
४. गोपालन।
५. बुनाअी, छपाअी आदि अुद्योग।
६. सामाजिक सार्वजनिक जीवनकी प्रवृत्तियां।

२५. सामान्य प्रवृत्तियोंमें हर स्त्री प्रत्येक कार्यमें अपने हिस्से आनेवाला काम नियमित रूपसे करे। विशेष प्रवृत्तियोंमें जिसे जिस प्रवृत्तिके लिअे तालीम देकर तैयार किया गया हो वह अुस प्रवृत्तिको संभाले।

२६. सामान्यतः प्रत्येक स्त्री पर अेक-दो बालकोंके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी रहे, और अिसके लिअे अुसे प्रोत्साहन दिया जाय।

सामाजिक सार्वजनिक जीवनकी प्रवृत्तियोंमें भाग लेनेका अुत्साह रखनेवाली स्त्रियोंमें सामान्य प्रवृत्तियोंमें बताये गये गृहकार्योंके लिअे तथा बाल-संगोपनके लिअे अरुचि होती है। मेरी दृष्टिसे यह वृत्ति पोषण करने लायक नहीं है।

साधारणतः असी स्त्रियोंके लिअे कायम की गअी विशेष संस्थाओंमें भी बच्चेवाली विधवाओंको शायद ही स्थान मिलता है। मेरी रायमें यदि २६ वें सूत्रमें बताया हुआ विचार ठीक हो तो:

२७. बच्चेवाली विधवाको — यदि वह और तरहसे योग्य हो — जरूर संस्थामें रखना चाहिये। वह अधिक स्थिरतासे काममें लगी रहेगी और मातृभावका अच्छा या बुरा अुदाहरण पेश करेगी। दूसरी दृष्टिसे भी बालक-रहित विधवाकी अपेक्षा छोटे बालकोंवाली निराधार विधवा अधिक दयापात्र है। अुसकी जातिमें पुनर्विवाह हो सके तो भी अैसी विधवाके लिअे वह द्वार खुला नहीं रहता, क्योंकि बालकोंको पाल-पोसकर बड़े करनेकी जिम्मेदारी अुसके सिर होती है।

अब अूपर मैंने जो विशेष प्रवृत्तियां बताअी हैं, अुनका समर्थन करनेवाले कारण यहां दे दूं।

बाल-संगोपन — मुझे लगता है कि स्त्रीमें रहे स्वाभाविक मातृ-भावके कारण बाल-संगोपन स्त्रीका विशेष कार्य है। जन्मसे ही अुसमें अिस कार्यके लिअे अुत्साह और अुमंग होती है। यह कार्य अुसकी अनेक कोमल वृत्तियोंका विकास करता है, अुससे स्वार्थत्याग कराता है और अुसे सन्तोष देता है। कोअी कहेंगे कि यह ठीक है, परन्तु अपना बालक हो तो ही स्त्रीमें अैसा भाव पैदा होता है; दूसरेके बालकोंके लिअे स्त्रियोंमें अैसा भाव नहीं पैदा हो सकता। मुझे लगता है कि यह कथन सही नहीं है। यदि संस्थाका यह नियम हो कि प्रत्येक स्त्रीको अेक या दो बालकोंका संगोपन करना ही चाहिये, तो अपनेको सौंपे

गये बालकके प्रति अुसमें ममता पैदा होगी और बढ़ेगी। मेरा यह कथन गलत भी हो सकता है, परन्तु मेरी यह मान्यता है कि बाल-संगोपनकी जिम्मेदारीके कारण सामान्यतः स्त्रीको अिसमें अपने जीवनकी अुपयोगिता महसूस होगी और स्थिरतासे काम करनेकी आदत पड़ेगी। अैसे बालक मिल जायेंगे, अिसमें शंका नहीं है। अिस तरह छोटे बच्चोंसे लेकर कुमारों और कुमारियोंके छात्रालय स्त्रियों द्वारा चलवाये जा सकते हैं।

प्राथमिक तालीम — भारतकी प्राथमिक तालीमका विचार करते हुअे मुझे लगा है कि हमारे गरीब देशमें यह प्रश्न अेक ही ढंगसे शीघ्र और कम खर्चमें हल हो सकता है। वह है मातामें प्राथमिक तालीम देनेकी शक्ति अुत्पन्न करना। लड़कों और लड़कियोंकी कुमार-मन्दिर तककी तालीमके लिअे संस्थाकी स्त्रियोंको तैयार करना हो, तो भी संस्थाके आश्रयमें बाल-मन्दिर या कुमार-मन्दिर चलने चाहिये।

शुश्रूषालय — शुश्रूषाका कार्य बाल-संगोपन जैसा ही है। और अिसके लिअे भी स्त्री पुरुषसे अधिक योग्य है। परन्तु अिसके साथ मैं यह भी मानता हूं कि स्त्रियोंके लिअे धन्धेके नाते नर्सका काम करना कुल मिलाकर अनुचित है और सेवा-शुश्रूषाके लिअे स्त्रियोंका ही होना आवश्यक नहीं है। अिस कारणसे पुरुषोंके अस्पतालोंमें शुश्रूषा करनेवाले पुरुष हों यह ज्यादा वांछनीय है। अतः अैसी संस्थाके साथ यदि स्त्रियों और बालकोंका शुश्रूषालय हो तो वह अेक अुपयोगी विभाग होगा और अुससे स्त्रियोंको अुचित तालीम भी मिलेगी। संस्थाकी स्त्रियोंको नर्सके धन्धेके लिअे तैयार करना मैं ठीक नहीं समझता, परन्तु अिस तरह तैयार हुअी स्त्रियां चाहें तो बाहर जाकर नर्सका धन्धा कर सकती हैं।

गोपालन — यह भी बाल-संगोपन जैसा ही काम है। मनुष्यका वात्सल्य अपने बालकसे दूसरे नम्बर पर अपने ढोरोंके लिअे होता है। आम वर्गमें यह धन्धा स्त्रियोंकी मेहनतसे ही चलता है, और अिसके लिअे आज काफी अवकाश है।

बुनाअी और छपाअीके अुद्योगके लिअे भी आज अवकाश है। ये धन्धे स्त्रियां अच्छी तरह कर सकती हैं और अुनसे अपना निर्वाह भी चला सकती हैं। ये धन्धे न तो कड़ी मेहनतके हैं और न बिलकुल बैठकके ही हैं।

सब कोअी यह आशा रखते हैं कि अैसी संस्थाओंसे सार्वजनिक जीवनमें भाग लेनेवाली और जनसेवाके लिअे अपना जीवन अर्पण करनेवाली स्त्रियां निकलें। समाजके कठिन और अधिक बलिदान चाहनेवाले कार्योंमें अिन स्त्रियोंका नेतृत्व होना चाहिये, और अिसके लिअे संस्थामें पूरी अनुकूलता और तालीमकी व्यवस्था होनी चाहिये।

अितना वनिता-विश्राम जैसी स्त्रियोंकी विशेष प्रकारकी संस्थाओंके लिअे। ये संस्थायें भले निराश्रित बनी हुअी स्त्रियोंके लिअे खोली गअी हों, परन्तु वे केवल रोटी और रहनेका आश्रय देनेवाली संस्थायें नहीं होनी चाहियें। अुनमें रहनेवाली स्त्रियोंमें अितनी शक्ति आनी चाहिये, जिससे अुन्हें अपने जीवनकी अुपयोगिता महसूस हो, समाज अुनकी अुपयोगिताको समझे और मौका आने पर संस्थासे स्वतंत्र रहकर वे अपना जीवन-निर्वाह कर सकें। अैसी शक्ति अुनमें पैदा हुअी है या नहीं, अिसकी अेक कसौटी यह मानी जायगी — किसी स्त्रीको संस्थामें तीव्र असन्तोष रहता हो, अथवा किसी विषयमें सैद्धान्तिक मतभेद मालूम होता हो, तो भी वह यदि अपनी संस्थाको छोड़नेका साहस न कर सके तो यह कहनेमें कोअी हर्ज नहीं कि अुसमें अैसी शक्ति नहीं आअी है।

संचालकोंको अैसी शक्ति अुत्पन्न करनेका सदा ध्यान रखना चाहिये। यह शक्ति केवल जीवन-निर्वाहके लिअे अुपयोगी कोअी धन्धा जाननेसे या सामान्य तालीम लेनेसे आती है अिस मान्यतामें भी थोड़ी भूल है; और अिन दो चीजोंका कोअी महत्व ही नहीं है अिस मान्यतामें भी थोड़ी भूल है। सच पूछा जाय तो मनुष्यको स्वावलम्बी बनानेमें चरित्रकी दृढ़ताका सबसे बड़ा हाथ है। फिर भी निर्वाहके लिअे

अुपयोगी धन्धेका ज्ञान तथा सामान्य तालीम अिसमें काफी सहायक होते हैं। चरित्रकी दृढ़ताके अभावमें धन्धेका शिक्षण और सामान्य तालीम भी आत्म-विश्वास अुत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं, अैसा विश्वास-पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

यहां चरित्रका अर्थ केवल शुद्ध, अकलंकित जीवन या शील नहीं है। मनुष्यमें आत्म-विश्वास अुत्पन्न करनेमें चरित्रके अनेक अंग कारणभूत होते हैं। अिस विश्वासके कारण अुसे अिस बातका बहुत भय नहीं लगता कि मेरा क्या होगा। अुसे अैसा विश्वास रहता है कि मैं अपनी समस्यायें स्वयं हल कर लूंगा अथवा अीश्वर मुझे अवश्य संभालेगा। चरित्रके ये अंग हैं: शुद्ध शील, अीश्वर-श्रद्धा, अुत्साह, (वीर्य), लगन, परिश्रमी स्वभाव, साहसी स्वभाव, सन्तोषी स्वभाव, सहनशीलता, हिलमिल कर रहनेकी कुशलता, परोपकार, निडरता आदि। अिनमें से अेकाध अंगका भी अतिशय विकास हुआ हो तो मनुष्यको पेटकी चिन्ता कम होती है। परन्तु किसी अंगकी अतिशयता न हो, दो-तीन अंगोंका ही अच्छा विकास हो गया हो, तो भी अुसे जीवनमें निष्फल होनेका अवसर नहीं आता। अिसके साथ यदि किसी धन्धेका शिक्षण और किसी विषयमें प्रवीणता हो, तो अुसे लगभग पूर्ण आत्म-विश्वास रहता है। परन्तु केवल धन्धेकी या विद्याकी तालीमसे आत्म-विश्वास नहीं आता। अिसलिअे मनुष्यके स्वभावमें अैसे अेक-दो गुणोंका विकास बहुत महत्त्वपूर्ण है।

२८. प्रत्येक मनुष्यमें चरित्रके आत्म-विश्वास पैदा करनेवाले अंगोंमें से अेक-दो गुणोंका बीज तो होता ही है। अिस बीजको खोज कर अुसका पोषण करना तालीमका काम है।

संस्थायें चलानेमें और खास करके स्त्रियोंकी संस्थायें चलानेमें बड़ीसे बड़ी कठिनाअी आपसके झगड़ोंके कारण पैदा होती है। स्त्री-जातिके विषयमें अनादर होनेके कारण नहीं, परन्तु अेक दुःखद सत्यके रूपमें ही मैं कहता हूं कि भारतकी स्त्रियोंमें स्वजाति-शत्रुत्व अधिक है। दूसरे देशोंके विषयमें मुझे ज्ञान नहीं है, अिसलिअे यहां मैं व्यापक भाषाका अुपयोग नहीं करता। अिसका अर्थ अितना ही

है कि स्त्रियोंके जीवनका निर्माण अिस प्रकार नहीं हुआ कि अुनका आपसमें मेल बैठ सके। पुरुषको ही आश्रयदाता मानकर, दासी जैसा जीवन हो तो भी, अुसीके साथ मेल रखने और अुसी पर विश्वास रखनेकी अुसे आदत पड़ी हुअी है।

अिसका अेक परिणाम यह भी आता है कि काम करनेकी अुमंग और अुत्साह रखनेवाली स्त्रियां जितना पुरुषोंका सहयोग खोजती हैं और जितना अुत्साह अुनसे प्राप्त करती मालूम होती हैं, अुतना सहयोग या अुत्साह अुन्हें अपने साथ काम करनेवाली स्त्रियोंसे नहीं प्राप्त होता।

यह सदियोंकी परतंत्र दशाका परिणाम है और मैं मानता हूं कि धीरे-धीरे स्त्रियोंके स्वभावमें से यह चीज निकल जायगी। परन्तु यदि स्त्रियां अिस ओर ध्यान दें तो वे अिस स्थितिमें से अधिक तेजीसे बाहर निकल सकती हैं।

अिसके लिअे स्त्री-कार्यकर्ताओंको मैं कुछ स्थूल नियम बता देता हूं। यह न माना जाय कि अिनसे सदा ही सफलता मिलेगी, परन्तु कलह या अीर्ष्याके कुछ कारण कम हो सकते हैं।

(क) यदि आप स्त्री-कार्यकर्ता हों और आपको अपने कार्यके संबंधमें किसी पुरुष-कार्यकर्ताके साथ सहयोग, सलाह-मशविरा वगैरा करना पड़े, तो आप अैसा व्यवहार न करें मानो आप अुस पुरुषसे ही परिचित हैं, परन्तु यथासंभव प्रयत्न करके अुसकी पत्नीसे भी मिलें और अुसके जरिये पुरुषकी सहायता प्राप्त करनेका प्रयत्न करें। यदि वह स्त्री केवल असंस्कारी और शंकाशील हो तो अुसे संस्कारी बनाना और अुसका विश्वास सम्पादन करना आपका अेक काम है; यदि वह अैसी न हो तो आपको अुसका थोड़ा सहयोग मिलेगा और आपका विरोध तो वह हरगिज नहीं करेगी। परन्तु यदि अुसकी अवगणना करके आप पुरुषसे मिलेंगी तो आप स्वजाति-शत्रुत्वको बढ़ायेंगी।

(ख) पुरुष-कार्यकर्ताओंमें यशकी, महत्ताकी या अैसी दूसरी अभिलाषायें नहीं होतीं, केवल स्त्रियोंमें ही होती हैं, अैसा मानकर

आपके साथ या आपके जैसा काम करनेवाली दूसरी स्त्रियोंके लिअे मनमें अनादरका भाव न रखें। मनुष्यमात्रमें कुछ गुण और कुछ दोष होते ही हैं। किसी पुरुष या स्त्रीके हाथों कोअी अुपयोगी काम होता हो और अुसके साथ अुसकी यशकी अभिलाषा भी पूरी होती हो, तो अुसमें आपका क्या बिगड़ता है? अेककी प्रशंसाका अर्थ दूसरेकी निन्दा अथवा अनादर मानकर व्यर्थ ही अीर्ष्या करनेसे कोअी लाभ नहीं होता। दुनियामें यशकी मात्रा अितनी अधिक है कि अेकको यश प्राप्त होनेसे दूसरेको यशसे वंचित रहना पड़ेगा, अैसा भय रखनेकी आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार कोअी स्त्री अपनी पुत्री या छोटी बहनके आगे बढ़ने, होशियार बनने या यश प्राप्त करनेके कारण अुससे अीर्ष्या नहीं करती बल्कि खुश होती है, अुसी प्रकार दूसरी स्त्रियोंकी अैसी स्थिति देखकर आप खुश हों। अुसकी होशियारी झूठी ही है, अुसे मिलनेवाला यश सर्वथा अनुचित ही है, अैसा खयाल न रखें। कभी-कभी अैसा भी हो सकता है; परन्तु यदि वह बिलकुल खोटा सिक्का होगी तो लम्बे समय तक टिक नहीं सकेगी, अैसा समझकर अुससे अीर्ष्या न करें, और न अुसकी प्रतिष्ठा कम हो जाने पर प्रसन्न हों।

(ग) अेक संस्थामें काम करनेवाली या रहनेवाली स्त्रियोंके बीच आध्यात्मिक दृष्टिसे सगी बहनों जैसा सम्बन्ध बढ़ानेका प्रयत्न करें। अैसे भ्रातृ-भाव या भगिनी-भावके बिना कोअी संस्था अूंची नहीं अुठ सकती।

अब शालाओं द्वारा दी जाती स्त्रियोंकी तालीमसे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ बातोंकी चर्चा करें।

श्रीमती शारदाबहनका यह कथन पूरी तरह सही है कि "आजकी गैर-जिम्मेदार तालीम स्त्रियोंके लिअे बिलकुल ठीक नहीं है, अिसलिअे अुनकी तालीमका कोअी नया मार्ग खोजना चाहिये।" सच पूछा जाय तो पुरुषोंके लिअे भी वह अुतनी ही अनुचित है, परन्तु यह विषय आज अप्रासंगिक है।

सुतारका अपढ़ लड़का बचपनसे ही यह जानता है कि अुसे अपने जीवनमें क्या करना है। और यह जाननेके कारण अुद्देश्य-

पूर्वक लकड़ीके टुकड़ों और पिताके औजारोंके साथ ही वह खेलता है। परन्तु अुसका पढ़ा-लिखा लड़का जैसे-जैसे अधिक पढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अुसकी यह सूझ कम होती जाती है कि अुसे जीवनमें क्या करना है। और शालामें अुसे जो-जो विषय पढ़ाये जाते हैं, अुनके प्रयोजनके विषयमें वह अधिकाधिक अनजान बनता जाता है। बहुत कम लड़के या लड़कियां यह जानती हैं कि वे अमुक विषय (परीक्षाके सिवाय) किस प्रयोजनसे सीखती हैं और अुन विषयोंको जानकर वे क्या करेंगी। अिसीका नाम है गैर-जिम्मेदार तालीम।

परन्तु अिस गैर-जिम्मेदारीका कारण शालायें ही हैं। सामान्य शिक्षणकी शालायें — आर्ट्स कालेज तक की — गैरजिम्मेदारीकी भावनाका पोषण कर सकें और लगभग २०–२१ वर्षकी अुम्र तक विद्यार्थियोंको अैसी शालाओंमें ही रहना पड़े, तो वे विद्यार्थियोंमें जीवनके बड़े भागमें गैर-जिम्मेदार बने रहनेकी ही आदत डालेंगी। अैसी शालायें आम जनता और गरीब मध्यमवर्गके लिअे अत्यन्त विघातक हैं।

गांधीजीको यह अुलाहना दिया जाता था कि वे सत्याग्रहाश्रम तथा गूजरात विद्यापीठकी राष्ट्रीय शालाओंमें वस्त्रसे सम्बन्ध रखनेवाले धन्धोंको छोड़कर दूसरे कोअी धन्धे सिखानेकी व्यवस्था नहीं करते। शिक्षाशास्त्री कहते थे कि विद्यार्थियोंको बुनकर बनाना है या चित्रकार, अिसका निर्णय आप न करें। आप तो अुनके सामने सारे साधन रख दें और अुन्हें पसंद कर लेने दें। गांधीजी कहते थे, सारे धन्धोंकी शिक्षा देना मुझे महंगा पड़ जायगा। मेरे यहां अभी ५० लड़के आते हैं, परन्तु मेरी दृष्टि तो देशके करोड़ों लड़के-लड़कियों पर है। अुनमें से अेक बिजलीका अिंजीनियर, दूसरा यंत्रोंका अिंजीनियर, तीसरा निर्माण-कलाका अिंजीनियर, चौथा रसायनशास्त्री, पांचवां डॉक्टर, छठा गायक, सातवां चित्रकार और आठवां अभिनेता बनना चाहे, तो अिन सबके लिअे अलग-अलग साधन अेकत्र करते करते मैं थक जाअूंगा। अिसलिअे मैंने अैसा धन्धा चुन लिया है, जो अधिकसे अधिक विद्यार्थियोंको सिखाया जा सके। और मैं विद्यार्थियोंके

माता-पिता तथा विद्यार्थियोंसे कहता हूं कि जिन्हें वस्त्रसे सम्बन्ध रखने-वाली किसी भी विद्यामें प्रवीणता प्राप्त करते हुअे दूसरा सामान्य शिक्षण लेना हो वे ही मेरी शालामें आयें।

अिस बारेमें गांधीजीका अितना दृढ़ आग्रह है कि जब आश्रमके कुछ विद्यार्थी विज्ञानकी पुस्तकें देखकर अपने प्रयत्नसे बिजलीके साधन जुटाने और टेलीफोन वगैरा खड़ा करने लगे तो गांधीजीने अुन्हें रोक दिया। अुस समय मुझे यह अच्छा नहीं लगा था। मैंने कहा था, हम तो यह विषय सिखाते नहीं, परन्तु यदि विद्यार्थी अपने-आप सीखते हैं तो हम अुन्हें क्यों रोकें? गांधीजीने कहा, आप समझते नहीं, अिससे तो आश्रमका खातमा हो जायगा। आश्रममें रहकर अिन विद्यार्थियोंको यदि मैं बिजलीके साधन अिकट्ठे करने दूं, तो दूसरोंको दूसरे प्रकारके साधन क्यों न अिकट्ठे करने दूं? मुझे अिनके कामसे कोअी द्वेष नहीं है, परन्तु वह आश्रममें शोभा नहीं देता। आश्रममें तो मैं यही चाहूंगा कि अिनकी यंत्रशास्त्रकी बुद्धिका अुपयोग वस्त्रविद्याके सम्बन्धमें ही हो। परन्तु वे अिससे बिलकुल भिन्न विषय पसन्द करते हों, तो भले वे बाहर जाकर अन्यत्र अपनी शक्तिका विकास करें। वहां जायंगे तो भी मैं अुन्हें आशीर्वाद ही दूंगा और कुछ कर दिखायेंगे तब अुनकी प्रशंसा भी करूंगा। परन्तु आश्रम तो केवल वस्त्रके पुनरुद्धारके लिअे ही है, अतः अुसके साथ सम्बन्ध न रखने-वाले कार्यके लिअे यहां स्थान नहीं हो सकता। गांधीजीकी यह बात मेरी समझमें आ गयी है।

२९. मैं मानता हूं कि धन्धेकी शिक्षाका आरंभ बचपनसे ही होना चाहिये, और प्रत्येक कुमार-मन्दिर या कुमारी-मन्दिरको अेक-दो धन्धे ही सिखानेकी जिम्मेदारी लेकर अुन्हें सीखनेकी अिच्छा रखनेवालोंको ही पढ़नेके लिअे बुलाना चाहिये, जिससे बालक छोटी अुम्रसे ही समझने लगें कि हमें यह धन्धा करना है। अुन धन्धोंके साथ दूसरी तालीम भी होनी चाहिये और अैसे अन्य विषयोंमें अुन धन्धोंके पोषक तत्त्व काफी मात्रामें होने चाहिये।

अिसी तरह मध्यमवर्गकी लड़कियोंकी शालायें भी अिस बातको दृष्टिमें रखकर कि अुस वर्गकी ८० या ९० प्रतिशत लड़कियोंको आगे कैसा जीवन बिताना पड़ेगा, तालीमके प्रत्येक विषयका विचार करें तथा अुनके लिअे अुपयोगी व्यावहारिक शिक्षणका ही प्रबंध करें, तो अुन पर गैर-जिम्मेदारीका आक्षेप न रहे।

अिस दृष्टिसे विचार करने पर कहा जा सकता है कि ८०–९० प्रतिशत लड़कियां बड़ी होकर विवाह करेंगी और मातायें बनेंगी। रसोअी बनाना, कातना, पींजना, सीना, घरका हिसाब रखना, छोटे बच्चोंको थोड़ा-बहुत पढ़ाना और अच्छी आदतें डालना, अुन्हें धर्म और भक्तिके संस्कार देना, घरको साफ-सुथरा, सुघड़ और व्यवस्थित रखना, बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषा करना, प्रसूति करना और कराना आदि काम तो वे करेंगी ही। अिसके अलावा, हम यह आशा रखेंगे कि वे समाजोपयोगी कोअी अैसा काम भी सीखेंगी, जो अुनकी आर्थिक स्थिति ठीक हो और वे पारिश्रमिक लिये बिना करें तो भी समाजके कामका हो और थोड़ा पारिश्रामिक लेकर करें तो भी कामका हो, जो अुनके घरमें भी अुपयोगी हो और शायद अुनके पतिके धन्धेमें भी अुपयोगी हो। अैसे विषयोंमें सामान्यतः नीचेके विषय अुपयोगी माने जा सकते हैं : शुद्ध भाषाज्ञान, सुन्दर हस्ताक्षर, बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषा और प्राथमिक तथा घरेलू अुपचार, घरमें किये जा सकनेवाले व्यायाम और प्राथमिक तालीम देनेकी योग्यता। अिसमें थोड़ा प्राथमिक, गरीबोंको पुसानेवाला और बिना खर्चके परिवारको आनन्द दे सके अैसा कलाज्ञान तथा दृष्टिको विशाल बनाये और अवलोकन शक्तिको बढ़ाये अिस ढंगसे दिया जानेवाला भूगोल, अितिहास और विज्ञानका शिक्षण जोड़ दें, तो कहा जायगा कि मध्यमवर्गकी सामान्य तालीम पूरी हो गअी। अितनेसे मध्यम वर्गकी अधिकतर बालाओंकी तालीम भी पूरी हुअी कही जायगी।

यदि अिस दृष्टिसे और अिस ढंगसे भलीभांति शिक्षा दी जाय, तो कदम-कदम पर मालूम पड़ेगा कि लड़की शालामें जो कुछ सीखकर

आती है वह घरके लिअे अुपयोगी है, और घरमें माता-पिताको अिस बातका भी पता चल जायगा कि लड़की पर शालाका क्या प्रभाव पड़ रहा है। आज तो शालामें पढ़नेवाली लड़की घरमें बोझ बन जाती है, और घरमें यदि माता-पिताका हृदय न हो तो दूसरे पालक यह बोझ अुठानेके लिअे शायद ही तैयार होते हैं।

अिसके पश्चात् अुच्च तालीम प्राप्त करनेकी अिच्छा रखनेवाली लड़कियोंके लिअे मेरे विचारसे तालीमका वही स्वरूप होना चाहिये, जो मैंने अूपर वनिता-विश्राम जैसी संस्थाओंके लिअे पेश किया है। जिन्हें डॉक्टरी, वकालत, साहित्य, विज्ञान आदि विषयोंमें ही पारंगत होना है, वे लड़कोंके लिअे चलनेवाले महाविद्यालयोंमें पढ़ें तो अुसमें मुझे कोअी दोष नहीं मालूम होता। अैसी तालीम लेनेवाली स्त्रियां कुछ प्रतिशत ही होंगी, अतः अुनसे समाजको कोअी नुकसान नहीं होगा। परन्तु दूसरोंका अनुकरण करके अथवा अैसी तालीम मूल्यवान या आदरकी पात्र है अैसा सोचकर लड़कियां या अुनके माता-पिता अुसके प्रति अधिक मोह रखें, तो मुझे लगता है कि अिसमें तालीम-संबंधी विचारोंकी मूल बुनियादमें ही दोष है। देशकी वर्तमान पराधीन स्थितिमें सार्वजनिक तंत्रोंको अैसी संस्थायें स्थापित करनेमें अपनी शक्ति और धन नहीं खर्च करना चाहिये, जो कुछ व्यक्तियोंके लिअे ही अुपयोगी सिद्ध हों। जनताके राज्यमें अैसी संस्थाओंकी स्थापना खानगी साहससे होगी और राज्यतंत्र अुन्हें थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता देगा। परन्तु अूपर बताअी गअी ८०–९० प्रतिशत स्त्रियोंके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली संस्थाअें राज्यके खर्चसे चलेंगी।

परन्तु अब शालाओंकी अपेक्षा छात्रालय तालीम देनेवालोंकी अधिक चिन्ताका विषय बनते जा रहे हैं। यह शुभचिह्न है। थोड़ेसे विषयोंकी परीक्षाके लिअे विद्यार्थियोंको तैयार करना तालीमका कम महत्त्वपूर्ण अंग है। अुसका अधिक महत्त्वपूर्ण अंग तो विद्यार्थियोंका चरित्र-निर्माण है, अिसकी शिक्षकोंको अधिकाधिक प्रतीति होती जा रही है। अिस कारणसे विद्यार्थियोंको रात-दिन अपनी निगाहमें और सहवासमें रखनेकी अिच्छा बढ़ती जा रही है।

अिसके अलावा छात्रालय-संबंधी कल्पना भी बदलती जाती है। छात्रालयका अर्थ विद्यार्थियोंके रहने-खानेकी 'सराय'—होटल—नहीं, परन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण शाला और व्यवस्थित घर है।

अिस विषयमें मेरा यह मत है:

३०. अच्छेसे अच्छा छात्रालय भी सुसंस्कारी माता-पिताके घरसे अधिक पसंद करने लायक नहीं माना जा सकता; सामान्य संस्कारी माता-पिताके घर और अच्छे छात्रालयके बीच भी अधिक पसंद करने लायक माता-पिताका घर ही माना जायगा, परन्तु अच्छे छात्रालयकी निन्दा नहीं की जा सकती। परन्तु जहां माता-पिता सुसंस्कार डालनेकी शक्ति, साहस या अुत्साह न रखते हों, वहां अच्छा छात्रालय घरकी अपेक्षा अधिक अच्छा निवासस्थान है।

३१. अैसे छात्रालयोंकी आज बड़ी आवश्यकता है। परन्तु साथ ही वे अितने सस्ते होने चाहिये कि मध्यमवर्गके गरीब लोग अुनमें अपने बालकोंको रख सकें।

छात्रालयमें घरसे अधिक सुविधायें भोगनेकी, कुटुम्बी जनों पर प्रेम कम हो जानेकी, खर्चीला जीवन बितानेकी और माता-पिताको छात्रालयका खर्च अुठानेमें कितनी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं अिसकी चिन्ता न करनेकी आदत बढ़ती है। यदि छात्रालयका थोड़ा खर्च संस्था अुठाती है, तो अुससे दानका अन्न खानेके लिअे मध्यमवर्गमें जो शर्म पाअी जाती थी वह नहीं रहती; साथ ही बिना मांगे जो सुविधायें मिलती हैं, अुन सुविधाओंमें मिली हुअी तालीम पूरी तरह सफल नहीं होती। बिना मांगे मिले हुअे दानके लिअे मनमें कृतज्ञता पैदा नहीं होती, बल्कि यह वृत्ति रहती है कि हमारा भाग्य हमें देता है। अिससे तालीम प्राप्त करनेकी लगन और अुत्साह भी कम रहते हैं। अिसलिअे:

३२. छात्रालय यथासंभव गरीबीके स्तर पर चलने चाहिये। गरीब परिवारोंमें बालकोंको बचपनमें जैसा परिश्रमी जीवन बिताना पड़ता है, वैसा जीवन बिताना छात्रालयमें सारे विद्यार्थियोंके लिअे

अनिवार्य होना चाहिये। छात्रालयका अितना खर्च भी जो न दे सकें, अुनसे थोड़ा अधिक परिश्रम कराकर मेहनताना देनेकी पद्धति रखी जा सकती है। यह मेहनताना देनेमें थोड़ी अुदारता भी दिखाओी जा सकती है, परन्तु जहां तक बने छात्रालयका नित्य खर्च चन्दों और दानोंसे नहीं चलना चाहिये।

३३. जिस विद्यार्थीका पोषण माता-पिता करते हों, अुसे निजी पैसा कमानेके लिअे छात्रालयमें काम नहीं मिलना चाहिये।

मैं जानता हूं कि ये दोनों बातें स्वीकार करना संचालकोंको कठिन मालूम होगा। परन्तु संस्थाओंके विषयमें अपने अनुभव परसे मुझे अैसा लगता है कि कभी न कभी छात्रालयोंको अैसे निर्णय पर आना ही पड़ेगा। अैसे नियमोंसे रहित तालीम खर्चके अनुपातमें कम फलदायी होगी। विद्यार्थीको अैसा लगना चाहिये कि तालीम आसानीसे मिल सकनेवाली चीज नहीं है। अुसे प्राप्त करनेके लिअे कीमत चुकानी ही चाहिये। यह कीमत परिश्रमके रूपमें ही चुकानी चाहिये।

अूपरके विचारोंके परिणाम-स्वरूप ही यह कहा जा सकता है कि:

३४. छात्रालयोंमें नौकर न होने चाहिये।

मेरा बहुत बड़े भोजनालयमें विश्वास नहीं है। बहुत बड़े भोजनालयमें स्वच्छता कम रहती है, लापरवाही और बिगाड़ अधिक होता है, कामका बोझ आवश्यकतासे अधिक रहता है और अुस कारणसे असन्तोष भी अधिक रहता है। भोजनालयकी अुचित मर्यादा सामान्यतः १०–१२ विद्यार्थियों तक ही रहनी चाहिये। अिसका अर्थ यह नहीं कि किसी मौके पर सारे भोजनालय अेक नहीं हो सकते। १०–१२ आदमियोंका भोजनालय हो तो मिट्टीके तेलके डिब्बेमें थोड़ा पानी भरकर अेक पर अेक रखी जा सकें अैसी दो-तीन पतीलियां जमाकर आसानीसे सबके लिअे दाल-भात-साग पकाया जा सकता है; और ये चीजें पक रही हों अुस बीच दूसरी तरफ चपातियां, भाखरियां आदि बनाओी जा सकती हैं। अथवा अैसा कूकर चढ़ाकर

विद्यार्थी दूसरे काम कर सकते हैं और घंटेभर बाद कूकरको संभाल सकते हैं।

परन्तु यह मेरी केवल राय ही है। अिसे सिद्धान्तका महत्त्व देना आवश्यक नहीं है।

अिस प्रकार तालीमका अर्थ है जीवनका निर्माण — अिस तात्त्विक व्याख्यासे आरम्भ करके मैं कूकर पर रसोअी बनानेकी पद्धति तक आ पहुंचा। अधिक ब्योरेमें न जानेसे शोभा रहेगी, अैसा सोचकर यह निबन्ध मैं पूरा करता हूं।

आशा है स्त्रियोंकी तालीमके कार्यमें जीवन बितानेवाले भाअी-बहनोंको अिससे विचार करनेमें थोड़ी सहायता मिलेगी और अुनकी चर्चासे मुझे भी लाभ होगा।

स्त्री-जाति अपने बल और अपने कार्यक्षेत्रकी दिशा अच्छी तरह समझे, पुरुषोंका तथा अुनके कार्योंका अनुकरण करनेका ही आदर्श अपने समक्ष न रखे, अपनेको पुरुषोंकी आश्रित और अधीन न माने, पुरुषोंको गलत ढंगसे रिझानेका भी प्रयत्न न करे और फिर भी स्त्री-पुरुष दोनोंसे बना हुआ संसार अेक-दूसरेके मेलसे रचा जाय — अैसी स्थितिकी कामना करता हुआ मैं अपना निबन्ध समाप्त करता हूं।

८

अंक सिखानेके बारेमें सूचना

हमारे यहां ११से १०० तक के अंक 'अेक पर अेक ग्यारह, अेक पर दो बारह, दो पर सुन बीस' वगैरा बोलनेकी आदत है। यह आदत गलत है। यह आदत 'ग्यारह, बारह . . .' लिखनेकी यांत्रिक पद्धति सूचित करती है, परन्तु यह नहीं बताती कि वह संख्या क्या है। अिसके बजाय बालकको अैसा बोलकर लिखना सिखाना चाहिये —'दस और अेक ग्यारह, दस और दो बारह, दस और तीन तेरह, . . . दस और दस बीस, बीस और अेक अिक्कीस, बीस और दस तीस' वगैरा। ये अंक लिखनेकी रीति भी नीचे लिखे अनुसार तख्ते पर या अंकपोथीमें बतायी जानी चाहिये :

१० + १ = ११	२० + १ = २१
१० + २ = १२	२० + २ = २२
१० + ३ = १३	२० + ३ = २३
१० +१०= २०	२० +१०= ३०

अिस तरह बोलने और देखनेसे बालकको अिस बातका खयाल जल्दी आने लगता है कि बाअीं ओरकी संख्या दहाअीकी है।

गुणाकारके पहाड़ोंमें नीचे बताये अनुसार तख्ते या पट्टी पर लिखकर बालकको आरंभमें पहाड़े बनानेकी रीतिका खयाल कराना चाहिये। अुदाहरणके लिअे छहका पहाड़ा :

। । । । । ।	१	६
। । । । । ।	२	१२
। । । । । ।	३	१८

अिस रीतिसे बालक गिनकर पहाड़ा तैयार कर सकता है। अिसलिअे अुसे यह मालूम पड़ता है कि बार-बार किये जानेवाले जोड़

ही पहाड़ेमें याद रखने होते हैं, और गुणाकारका अर्थ अुसकी समझमें आता है। अिसके अलावा, अेक पहाड़ा मुंहसे याद हो जानेके बाद दूसरा पहाड़ा शिक्षक लिख दे अिसके बजाय बालक खुद ही बना सकता है।

ये विचार बालकोंको अंक और पहाड़े सिखानेके प्रयत्नमें से ही मुझे सूझे हैं और मैंने अिनका अनुभव भी किया है। आशा है ये अुपयोगी सिद्ध होंगे।*

---

* मुझे यह भी लगता है कि अुन्नीस, अुनतीस, अुनचालीस आदि शब्दोंको हम बदल दें तो ठीक होगा। अिनके लिअे क्रमशः नीचेके शब्दोंका अुपयोग होना चाहिये :

गुजराती	हिन्दी	मराठी
१९ नवार	नौरह	नौरा
२९ नव्वीस	नौअीस	नव्वीस
३९ नवत्रीस	नौतीस	नौतीस
४९ नवताळीस	नौतालीस	नवेचाळीस
५९ नवावन	नौवन	नवावन
६९ नवसठ	नौसठ	नौसठ
७९ नवतेर	नवत्तर	नव्हत्तर
८९ नेव्याशी	नवस्सी	नव्वायशी
९९ नव्वाणुं	निन्यानवे	नव्याणु

जड़मूलसे क्रान्ति

लेखक : **कि० घ० मशरूवाला**
अनु० **रामचन्द्र बिल्लोरे**

धर्म, समाज, अर्थशास्त्र, राजनीति, शिक्षा — सामाजिक जीवनके अिन सब अंगोंके प्रचलित व्यवहारमें जड़मूलसे क्रान्ति कैसे हो सकती है और कैसे करना चाहिये, अिसकी विस्तृत चर्चा अिस पुस्तकमें की गअी है।

की० १–८–०   डाकखर्च ०–६–०

संसार और धर्म

लेखक : **कि० घ० मशरूवाला**
अनु० **महेन्द्रकुमार जैन**

अिस पुस्तकमें श्री किशोरलाल मशरूवालाने अपने मार्मिक और मौलिक ढंगसे जिन विषयोंकी चर्चा की है, वे मुख्यतः ये हैं : १. धर्म और तत्त्व-चिन्तनकी दिशा अेक हो तभी दोनों सार्थक बनते हैं; २. कर्म और अुसके फलका नियम केवल वैयक्तिक नहीं, बल्कि सामूहिक भी है; ३. मुक्ति कर्मके विच्छेदमें या चित्तके विलयमें नहीं, परन्तु दोनोंकी अुत्तरोत्तर शुद्धिमें है; ४. मानवताके सद्गुणोंकी रक्षा, पुष्टि और वृद्धि ही जीवनका परम ध्येय है। पुस्तकके आरंभमें प्रसिद्ध तत्त्वचिन्तक पंडित सुखलालजीकी 'विचार-कणिका' तथा अन्तमें श्री केदारनाथजी जैसे साधु-पुरुषकी 'पूर्ति' ने पुस्तककी अुपयोगितामें और भी वृद्धि कर दी है।

की० २–८–०   डाकखर्च १–०–०

शिक्षाका विकास

लेखक : कि० घ० मशरूवाला; अनु० रामनारायण चौधरी

बुनियादी तालीमका धीरे-धीरे कैसे विकास हुआ, यह बतानेवाले तथा बुनियादी शिक्षाके आधारभूत सिद्धान्तोंकी गहरी और विशद चर्चा करनेवाले लेखोंका अिस पुस्तकमें संग्रह किया गया है। साथमें श्री नरहरि परीखकी भूमिका भी दी गअी है, जो पाठकोंको आगे आनेवाले लेखोंके लिअे तैयार करती है। भूमिकाके दो प्रकरणोंमें बुनियादी शिक्षाके मुद्दों, अुसकी कठिनाअियों और अुनके अुपायों तथा अितिहासके शिक्षणके बारेमें विस्तृत चर्चा की गअी है।

कीमत १–४–०　　　　　डाकखर्च ०–५–०

शिक्षामें विवेक

लेखक : कि० घ० मशरूवाला; अनु० खुशालसिंह चौहान

अिस पुस्तकमें लेखकने शिक्षासे सम्बन्ध रखनेवाले विभिन्न सिद्धान्तोंकी गहराअीसे विशद चर्चा की है। पुस्तक तीन भागोंमें बांटी गअी है : तत्त्व-विवेक, प्रवृत्ति-विवेक और प्रश्न-चर्चा। देशके बालकोंकी शिक्षा और अुसके शास्त्रमें दिलचस्पी रखनेवाले लोगोंको अिससे शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने और अुन्हें समझनेकी सही दिशा और प्रेरणा मिलेगी।

कीमत १–८–०　　　　　डाकखर्च ०–५–०